

श्री विखनस आश्रमम्, तिरुमल ,

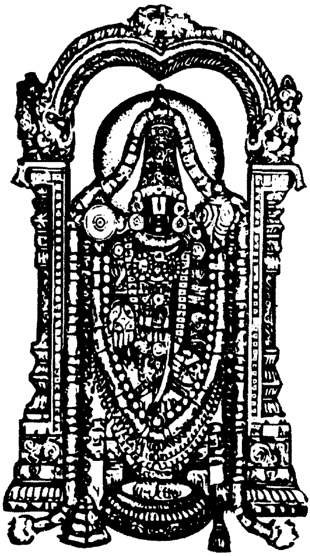
श्री वैखानस दिव्य सिध्दान्त विवर्धिनी सभा

वैखानस सिद्धान्त और सम्प्रदाय

प्रथम भाग

रचयिता :

दे. सत्यनारायण



मरीचि ग्रन्थमाला

श्री वैखानस दिव्य सिद्धान्त विवर्द्धिनी सभा

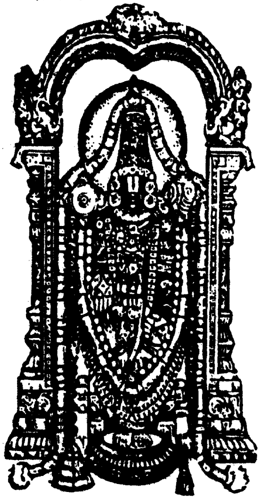
तिरुमल,

२०००.

मरीचि ग्रन्थमाला संख्या : ११.

प्रधान सम्पादक :
दीवि विखनसाचार्य

श्री वैखानस दिव्य सिद्धान्त विवर्द्धिनी सभा
तिरुमल,
२०००.



This book is published with the Financial Assistance of
TIRUMALA TIRUPATI DEVASTHANAMS, TIRUPATI.

मरीचि ग्रन्थमाला संख्या : ११

प्रतियां : १,०००.

मूल्य : पचास रुपये.

Copies can be had from :
THE SECRETARY,
S.V.D.S.V.Sabha,
Sri Vikhanasa Ashramam,
Ring Road, TIRUMALA.(A.P.)
Pin : 517 504

Copies can be had from :
SRI VAIKHANASA SAMAJAM,
29-1-19, Seshadri Sastry St.,
Governorpet,
VIJAYAWADA. (A.P.)
Pin : 520 002.

डि.टि.पि. : ✆ : 30807
श्री सत्यसाई ग्राफिक्स,
के.टि.रोड, तिरुपति.

Printers : ✆ : 435393
THE VANI PRESS,
VIJAYAWADA.

OM NAMO VENKATESAYA
OM VIKHANASAYA NAMAHA

Foreward

This is a book which represents our efforts to introduce the Vaikhanasa religion and philosophy to the people. This is not obscure in the sense that there is no material but is less known to common man. Even the scholars are not fully aware of the contribution of the Vaikhanasa system in the totality of the indological literature particularly the religious one. The Vaikhanasa system has an unbroken continuity from the times immemorial. During the middle ages also the Archakas following the Vaikhanasa religion were administering the temple services particularly in the South. Vedic traditions were kept alive throughout that turpulents period. This small community of the Vaikhanas is responsible for keeping the institution of puja in all the temples throughout India by using Vedic mantras. Vernacularism in the temple administration was not allowed to replace the Devavani. Tradition of temple worship as an institution was strengthened in spite of onslaught by muslim invaders and personal rivalry of the kings or chieftains of the small principalities patronising a particular religious teacher.

Vaikhanasa Agama deals with worship in Vishnu temples according to Vedic tradion. Sage Sri Vikhanasacharya is the founder teacher of this system. He came to Naimisaranya and taught this Agama to four disciples. They are Sages Bhrugu, Mareechi, Atri and Kasyapa. These sages have written twenty eight books and they are known as Vaikhanasa Bhagavat Sastra or Sri Sastra. These texts explain in detail about the construction of temples, preparation of Icons, installation of Icons, Daily worship and Utsavas etc. They also explain Ashtanga Yoga and Archana i.e. Bhakti Marga.

The author Sri Devarakonda Satyanarayana garu of Tirupati has taken great pains to compile a book of this nature. The book has been written through a historical perceptive. This is the first

attempt to write any book on this subject in Hindi. We are very much thankful to the author.

The book presses into service the available literature in the field and draws from Bhuddism, Nath system and many other small religious groups who do not claim to have any text except folk religion living only in tradition without any written document.

The author has made special studies of early and medieval Vaisnavism and his labours are before the scholars to judge.

When we intend to publish this book, we have approached T.T. Devasthanams for financial aid. They have supported our request and granted the aid. We are thankful to Sri I.V. Subba Rao, I.A.S., Executive Officer, for this timely help and support. We are also thnakful to Sri N.S. Rama Murthy, M.A., Editor, T.T. Devasthanams for his timely action and good offices to get the financial aid granted.

We are also thankful to Sri Vaikhanasa Samaj, Vijayawada for their voluntary co-operation to involve in this project. We cannot forget the help given by Sri Suresh Kumar Gupta, S/o Sri Hari Ram Gupta, New Delhi who are very generous in supplying the paper required for this project with the good offices of Dr. Brijendra Kumar Sharma, New Delhi.

Last but not least, we thank M/s. Sri Satya Sai Graphics, Tirupati for DTP composing of the book neatly within the time. We also thank M/s. The Vani Press, Vijayawada for printing the book.

D. Vikhanasa Chary,
Secretary
S.V.D.S.V.Sabha, Tirumala.

Tirumala,
21-6-2000.

वैखानस सिद्धान्त और सम्प्रदाय

विषयसूची

आमुख

अनेक पुराणों में कलि का प्रादुर्भाव या कलिका वर्णन प्राप्त है। यह वर्णन बौद्ध जातकों तथा जैन वाङ्मय से पुष्ट होता है। वेदकालीन समाज में तथा स्मृतिकालीन समाज में यदि यह अन्तर देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि हिन्दु समाज में भी वर्णाश्रम धर्म के प्रति लोगों की आस्था में ह्रास आया है। मोक्ष में शूद्रों का, स्त्रियों का अधिकार वैष्णव तथा पाशुपत शैव धर्म ने मान लिया। बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के एक स्थान पर न रहने के धार्मिक रिवाज से पाप कृत्यों में वृद्धि हुई क्यों कि समाज उन्हें पहचानकर दण्डित न कर सकता। स्त्रियों की उच्छ्रंखलता भी बढी वे भी वैष्णवी, साध्वी या भिक्षुणियां बनकर स्वतन्त्र रूप से घूमने लगीं। प्रथम आश्रम के पश्चात् ही बौद्ध भिक्षु हो जाते और घूमते रहते द्वितीय तृतीय आश्रम को लांघ कर भगुवा रंग के वस्त्र पहिन लेते और देह धर्म से परवश होकर स्वेच्छाचार में लिप्त होते। नैतिक आचार का लोप होने लगा।

वैष्णव सम्प्रदाय भी इस बदलते परिवेश से अछूता न रह सका। स्त्रियों को शूद्रों को मोक्ष का अधिकार दे दिया गया। वेद की परवाह न की। यज्ञ और यज्ञीय कर्मकाण्ड को हटा कर पूजा के मार्ग का लोक में प्रचार किया। वेदों के स्थान पर पौराणिक या आगम के मन्त्रों का या श्लोकों का धार्मिक कार्यों में विनियोग धडल्ले से होने लगा। देव दर्शन में किसी पुजारी या पुरोहित की मध्यस्थता की आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मण का प्रभाव अत: न्यून हो गया। ब्राह्मणेतर भी धार्मिक कृत्यों का स्वयं निर्वाह करने लगे। शूद्र एवं यवन राजाओं ने भी बडे बडे यज्ञ किये निश्चय ही इन में ब्राह्मण वेदपारायण अध्वर्यू ऋत्विक् आये होंगे अर्थात् ब्राह्मणों ने भी शूद्र को वेद न सुनाना इस स्मृति वचन को भुला दिया। पञ्चम अनुलोम प्रतिलोम पतित या व्रात्यों का स्मृतियों में उल्लेख इसका प्रमाण है। ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में शक हूण सीथियन आये और दसवीं शती से मुसलमान आक्रामक आते रहे और सत्रहवीं अट्ठारवीं शताब्दी में तो अंग्रेजों का राज ही हो गया और स्वातन्त्र्योत्तर भारत में कलिकाल का जो वर्णन पुराणों में प्राप्त है वह और भी विजृम्भित होकर सामने आ रहा है। स्त्रियों शूद्रों के लिए आरक्षण नीति इतिहास की वही पुरानी परम्परा दोहराई जा रही है। पहिले सामान्र जनता बौद्ध या आजीवक सम्प्रदाय में दीक्षित होती थी आज मुसलमान या ईसाई बनते हैं अन्तर केवल इतना ही है कि पहिले भारत में उत्पन्न धर्म में परिवर्तन करते थे आज विदेशी धर्म में

परिवर्तित हो रहे हैं। इससे भारतीय आचार विचार बहुत प्रभावित हुआ है जीवन का परम पुरुषार्थ अब मोक्ष न होकर अर्थ - काम हो गया है।

भारत के धार्मिक इतिहास को मोटा मोटी तीन धाराओं में देखा जा सकता है-- १) वैदिक २) वेदानुकूल तथा ३) वेदविरुद्ध। आज के प्रचलित हिन्दुधर्मको स्मार्त धर्म कहें तो अधिक उपयुक्त नाम होगा जिसमें देवी देवताओं का प्राधान्य न होकर वर्णाश्रमाचार का प्राधान्य है। इस उक्ति की व्याप्ति सार्वत्रिक हो ऐसा नहीं है। सभी प्रकार के जन मिलेंगे पर अधिक लोग इस प्रकार का वर्ण आचार प्रधान ज़ीवन जीते हैं। शाक्त शैव वैष्णव ऐसे भेदों से सभी परिचित हैं।

वैदिक समाज ने सारी महत्ता एकत्र नहीं समेटी। ज्ञानबल ब्राह्मण को, बाहुबल क्षत्रिय को, धनबल वैश्य को, और श्रमबल शूद्रको देकर समाज के सभी वर्गों को बराबरी का दर्जा दिया। चारों वर्ण विराट् पुरुष के अभिन्न अंग है चाहे मुखज हो या पादज।

राजनैतिक उथल पुथल, भूगौलिक सीमाओं का विस्तार, विदेशियों का आक्रमण जन सञ्चार का प्रसार सबने मिलकर समाज के अनेक वर्गों को जिनका आचार - विचार समान न था लाकर एक दूसरे के सामने बैठा दिया। अनेक प्रसङ्गों में रोटी-बेटी के नियमों को तोडने पर मजबूर किया और फिर वर्णसंकर जातियों का उद्भव उससे नये समाज की व्यवस्था वृत्तिगत समस्यायें सामने आयीं। पातक और प्रायश्चित्त स्मृतिग्रन्थों में गुप्त साम्राज्य के पतन के अनन्तर ही आया होगा ऐसा विद्वानों का मत हैं।

बौद्ध और जैन आदि वेद विरुद्ध धर्म ईसापूर्व पांचवी छठी शती में ही प्रबल हो गये थे। भारतीय दर्शनों का भेद वैदिक अवैदिक ऐसा ही किया जाता है। बौद्ध जैन के साथ लोकायत चार्वाक आदि सम्प्रदायों को गिना जाता है। वैसे पाञ्चरात्रादिकों को भी वेदबाह्य कहकर हेय कहा जाता है। सुत्तनिपात के महावग्ग में ६ ३ सम्प्रदायों का नाम दिया है। जैन सम्प्रदाय में इससे अधिक नाम होंगे। आजीवक सम्प्रदाय में जो उत्तर भारत में था, संस्कृत में कुछ प्राप्त नहीं है इसके सिवाय कि आजीवक सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य मक्कलिगोसाल को मस्करिन् कहते थे और नाम मात्र के लिए महाभारत में नाम पढा गया है। हां तामिल में तीन ग्रन्थों में कुछ विवरण प्राप्त है।* (*मणिमेखलै, नीलकेशी, शिवज्ञानचिट्टियार) ईसा पूर्व द्वितीयशती से कुशान शासन के अन्त तक मथुरा के आसपास जैनों का बोलबाला था और इसकी पुष्टि वहां प्राप्त अनेकों शिलालेख और

प्रस्तर मूर्तियों से होती है।

भागवत या वैष्णव सम्प्रदाय का उल्लेख *महाभारत* में प्राप्त है। वैसे ऋग्वेद में भी विष्णु देवतापरक स्तुतियां है पर आगम प्रयुक्त पाञ्चरात्र वैखानसादि वैष्णव सम्प्रदाय का उससे प्राचीन कोई सन्दर्भ प्राप्त नहीं है। शायद शाक्त शैव और वैष्णव आगमानुकूल धर्म वेद से पुराने हों पर इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। परवर्तीकाल के आगमग्रन्थों में मूल खोजना कठिन है क्यों कि वैखानस सम्प्रदाय ने शुद्ध वैदिक सम्प्रदाय और वर्णाश्रमाचार को स्वीकार कर लिया है। वैखानस का बुद्ध से शास्त्रार्थ बौद्ध वाङ्मय में नाम सहित प्राप्त है अत: वैखानस बुद्ध पूर्व होंगें और दक्षिण के न होकर उत्तर पूर्व के होंगे पूर्वी उत्तर प्रदेश या बिहार के। तभी बुद्ध से शास्त्रार्थ सम्भव है। वैसे नैमिषारण्य और बदरिकाश्रम का भी महत्त्व है।

महाभारत शान्ति ३३५-३५१ नारायणीय में चित्रशिखण्डियों नाम आया है। बुद्ध ने भी दस नाम गिनाये हैं जो इनसे बहुत मिलते जुलते नाम है। निश्चय ही तब पाञ्चरात्र के प्रतिष्ठापक भी बुद्ध पूर्व के होंगे। स्त्री शूद्रों को मोक्ष का अधिकार 'हरिको भजै सो हरि का होई' मन्त्र से वर्णाश्रम पर आघात इन संहिताओं में उत्तरोत्तर कम होता आया है। और रामानुजाचार्य के आने के बाद तो संस्कृत का बोलबाला हो गया और तामिल भाषा के प्रबन्ध गौण हो गये। पालि और अर्द्ध मागधी अब धर्म मात्र की भाषा रह गयी और दर्शन की भाषा संस्कृत हो गयी। शैली को न्याय के अवच्छेदवाद ने समेट लिया। किरात हूणान्ध्र सब वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गये और स्वयं पूजा करने का अधिकार भी इन विदेशियों ने प्राप्त कर लिया और स्वयं को परम भागवत कहने लगे।

शैव सम्प्रदाय जिसको पाशुपत भी कहते हैं। उनकी अवस्था भी ऐसा ही थी-

बौद्धान् पाशुपतान् जैनान् लोकयतिककापिलान् ।
विकर्मस्थान् द्विजान् स्पृष्ट्वा सचेलो जलमाविशेत् ।
कापालिकांस्तु संस्पृश्य प्राणायामोधिकोमतः।।

स्मृति चन्द्रिका.२.३१०.

बौद्धों को, पाशुपतों को, जैनों को, लोकायतों को कपिलके सम्प्रदायवालों को विकर्मस्थद्विज - वे ब्राह्मण जिन्होंने अपना कर्म छोड दिया है उनको स्पर्श करने पर सचैल जलमें प्रवेश करें। और कापालिकों को छूकर तो प्राणायाम सचैल स्नान के अतिरिक्त करना चाहिए।

महाभारत में शिव का और दक्ष का संवाद दिखाया गया है।

वेदात् षडङ्गात् उद्धृत्य सांख्ययोगाच्च युक्तितः

... ...

अपूर्वं सर्वतोभद्रं विश्वतोमुखमव्ययम्
अब्दैर्दशार्द्धे - संयुक्तं गूढं अप्राज्ञनिन्दितम्
वर्णाश्रमकृतैः धर्मैः विपरीतं क्वचित् समम्
गतां तैरध्यवसितमत्याश्रममिदं व्रतम्
मया पाशुपतं दक्ष शुभमुत्पादितं पुरा ।।

महा.शान्ति २८४.१२१-१२४.

ऐसे ही श्लोक लिंग२.२०.९.-११. वायु ३०.२९३-९५. ब्रह्मपुराण ४०.१०८-११० प्राप्त हैं। इन शैवों का वर्णाश्रम धर्म में बिल्कुल विश्वास न था। शूद्र स्त्री और विदेशियों को दीक्षित करते और उन्हें पूजा का पूरा अधिकार देते। पाणिनिसूत्र ५.२.७६. पर महाभाष्य में शिव भागवतों का सन्दर्भ प्राप्त है।

इतिहास की पुनरावृत्ति होती रहती है। हिन्दूधर्म का पुनः जागरण हुआ। दक्षिण में मुसलमानों के पैर कभी नहीं जमें। कुछ दिन के लिए किसी प्रदेश पर शासन किया और फिर उनकी सन्तति काल कवलित हो गयी। अशोक, चन्द्रगुप्त के पश्चात् दसवीं शताब्दी से ही दक्षिण में हिन्दुओं का शासन तन्त्र प्रबल और दृढ हुआ। वेदाध्ययन को पुनः प्रधानता दी जाने लगी। जीवन यापन के समस्त आयामों में वेदानुकूलता का स्वर गूंजने लगा।

संहिता एवं ब्राह्मण युग तक यज्ञोंका बोलबाला रहा। मन्त्र एवं मन्त्रों के उपयोग व प्रयोग में विद्वत् वर्ग लगा रहा। आरण्यक काल में गृहस्थाश्रम से दूर वनप्रान्तों में तत्त्व जिज्ञासा की ओर लोक कल्याण की औत्साहिकता में वृद्धि हुई और उपनिषत् काल में तो परमतत्त्व की खोज ही चिन्तन का प्रमुख केन्द्रबिन्दु बना रहा। इसी काल से यज्ञानुष्ठान के प्रति लोगों के उत्साह में शिथिलता आई। राजनैतिक उथल पुथल भी इसका एक कारण हो सकता है। विदेशियों के भारत पर आक्रमण और उनके सम्पर्क से परम तत्त्व के चिन्तनकी दिशा में विद्वद्वर्ग नया मार्ग खोजने लगा यद्यपि परम्परा में विश्वास शिथिल न हुआ। यज्ञ के प्रति लोगों की आस्था कम न हुई पर विदेशियों के आने से बडे बडे यज्ञों का निर्वाह कम अवश्य हुआ। इसी काल में आगम आये।

आगम वेदों को महत्त्वपूर्ण स्थान से हटातो न सके पर सामान्य जनता में अपना स्थान अवश्य बना लिया। शैवागम वैष्णवागम और शाक्तागम प्रसिद्ध ही हैं। गाणपत्य सौर स्कान्द के नाम भी लिए जाते हैं। शैवागम शैव,पाशुपत, लकुलीश, फिर काश्मीर और दक्षिण भेद भी है। शाक्तागम जिनकी तन्त्र नाम से भी प्रसिद्धि है वाम एवं दक्षिण इस प्रकार दो प्रमुख भेद हैं। वैष्णवागम पाञ्चरात्र और वैखानस इस भेद से दो प्रकार का है। इनमें मन्दिर मूर्ति निर्माण (वास्तुस्थापत्य प्रधान, मूर्ति प्रतिष्ठा, उपदेवता, परिवार देवता का स्थान तथा पूजा विधान मुख्य हैं। भूपरीक्षा, मन्दिर का निर्माण, उपादान, बालालय, भित्तियों का मूल और वैशाल्य यागशाला का स्थान, मण्डप, गोपुर का निर्माण आदि शामिल हैं। ये सब कार्य आज की दृष्टि से लौकिक कार्य हैं पर आगम की दृष्टि से धार्मिक और आज जिन को हम शुद्ध धार्मिक कहते हैं जैसे मूर्ति, मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा वास्तु पूजन, यागशाला में सम्पाद्यमान यज्ञादि पूजा विधान ये सब इन लौकिक कार्यों में ऐसे मिला दिये गये है जिससे लौकिक एवं लौकिकेतर भेद ही सन्देहास्पद हो गया है।

वैखानस सम्प्रदाय में यज्ञादि कार्य सूत्रों के अनुसार तथा पूजा, मन्दिर निर्माण अंग उपांगों की व्यवस्था जैसे गर्भगृह, मण्डप, अर्धमण्डप आदि कहां स्थित होंगे, आगमों के अनुसार चलाने का विधान है। तीन प्रकरण मुख्य हैं -- १)पूजा, २)मन्दिर-मूर्ति का निर्माण, ३) निर्माण के लिए की जानेवाली व्यवस्था शायद इसमें सञ्चालन व्यवस्था भी शामिल है।

वैखानस सम्प्रदाय आगम सञ्चालित होने के बावजूद वैदिक या वेदानुकूल अवश्य है। मरीचि ने तो स्पष्ट ही कहा है कि जो सूत्रों में सूक्ष्म रूप से प्रतिपादित है उसको विस्तार रूप से बताया है नया कुछ नहीं है। संस्कृतेतर किसी अन्य भाषा का प्रयोग स्वीकृत नहीं है। समाज और परिवार के नियमों के कारण बाहरी सम्पर्क अत्यन्त स्वल्प ही रहे। संस्कार पदे पदे परिवार परम्परा का पालन करने पर विशेष बल देते रहे अत: आज भी वैखानस सम्प्रदाय जन संख्या में स्वल्प होने पर भी भारतीय धर्म एवं समाज में अपने योगदान के लिए सबका प्रशंसा पात्र है।

भूत हमारा बन्धन है। हमारी नियति है। हम वर्तमान में क्या करेंगे यह हमको भूत ही निर्दिष्ट करता है। कर्मबन्ध से नहीं आकांक्षाओं की प्रवृत्ति से। ये आकांक्षायें क्या हैं? भूत में जो न प्राप्त कर सके -- या प्राप्त करके जिसका संरक्षण न कर सके। वह

भय। वह आशंका हमे प्रेरित करती रहती है एक दिशा की ओर। यह आशंका प्रवृत्त कर्म की नहीं वरन् प्रवृत्त कर्म फल की है। वह फल जिससे हम परिचित है भूत काल में हम उसी का संरक्षण करना चाहते हैं। उससे अच्छी स्थिति का हमें ज्ञान नहीं अत: उस ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती। तब हमें उस भय से निर्मुक्त होना है जो हमारे कर्मों के प्रति नहीं कर्मफल के प्रति आबद्ध किये है। इसी का नाम है लोकेषणा - लोक की उन सभी वस्तुओं के प्रति आकांक्षा उसे पाने का प्रयत्न - पाकर संरक्षण करने का यत्न खो न जाय इसकी चिन्ता उसके बचाने के लिए प्रयत्न।

इस भय से मुक्ति पानी है। इस आशंका से मुक्ति पानी है। अत: भगवद्गीता में लिखा है 'कुरु कर्मेव तस्मात्त्वं' ४.१५ 'मा फलेषु कदाचन' २.४७ कर्म के फलों की चिन्ता न करो। यही अनासक्ति है। यही कर्मयोग है।

*　　　*　　　*

चोलकाल ९५०-१२५० ई. से ही हिन्दु धर्मका अभ्युत्थान का समय या युग मानना कोई भूल न होगी। नायनार और आल्वार सन्तों की भक्ति स्रवन्ती का वेग बलवत्तर हो गया था।

राजराजचोल प्रथम ९८५-१०१४ ई. के समसामयिक नम्बी आण्डार नम्बी ने शैवसिद्धान्त के मुख्य गीतों का प्रथम बार संकलन किया। उमापति शिवाचार्य ने उनकी जीवनी लिखी है।

धार्मिक गीत गाने की प्रथा सारे भारत में है। बाउल सम्प्रदाय के लोग बंगाल और उसके परिसर प्रान्तों में आज भी देखे जा सकते हैं। पञ्जाब और उससे लगे प्रान्तों में भी ऐसी ही एक उपसम्प्रदाय की शाखा है। वैसे हर गुरुद्वारे में भजन गाने की धार्मिक प्रथा अभी भी विद्यमान है।

औरङ्गजेब ने संगीत पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। अत: जहां जहां मुगल साम्राज्य के विरोधी थे वहां वहां संगीत का प्रचार हुआ। संगीत का धार्मिक परिवेश में गाया जाना एक धार्मिक कृत्य माना जाने लगा। गीत-गोविन्द का भारत के सारे मन्दिरों में प्रचार इसी दिशा में एक प्रयत्न था मानों संगीत इस्लाम को हेय कहने का एक तरीका हो।

आल्वार और नायनार के गीतों का पारायण शायद मन्दिरों में इसके पूर्व भी

होता था। गीतगोविन्द के पदों का सारे भारत में गाया जाना प्रसिद्ध ही है। मन्दिरों में गीत गाये जाने की पद्धति शिलालेखों से भी पुष्ट है। इन गीतों की धर्म पुण्य वाहकता में लोगों का बढता विश्वास इसका कारण है। मन्दिरों में भजन गाने की व्यवस्था के लिए न्यास के सन्दर्भ भी शिलालेखों में प्राप्त हैं।

राजराज प्रथम के समय में ही एक अन्य पद प्रयुक्त मिलता है। यह पद है 'देवरनामकम्' यह पद किस किस उत्तरदायित्व का कार्य निर्वाह करता होगा इसका विशद विवरण तो प्राप्त नहीं पर यह निर्विवाद है कि यह पद मन्दिरों के व्यवस्था से सम्बन्धित होगा। धार्मिक विवाद भी निपटाता हो। इस उत्तरदायित्व का निर्वाह कैसे होता होगा-- मन्दिरों के धार्मिक-धर्मेतर कार्यों की विभाजन रेखा कहां और किसने खींची होगी?

कुलोत्तुंग द्वितीय के ११३३ - ५० ई. के समकालिक सेकिल्लार ने पेरिय पुराण की रचना की। इसी काल में वैष्णव धर्म का भी विकास हुआ। नाथ मुनि ने वैष्णव गीतों का संकलन किया। इन गीतों को सामूहिक रूप से 'प्रबन्धम्' भी कहते हैं। अनविल ताम्रफलक में सुन्दर चोल के शासन काल ९५६-९७३ ई. में एक श्रीनाथ का सन्दर्भ प्राप्त है। शायद ये वैष्णव सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य नाथमुनि ही होंगे। नाथमुनि प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने वैष्णव आल्वार या भक्तों के गीतों का संकलन किया। एक अन्य शिलालेख १२४२ई. से ज्ञात होता है कि काञ्चीपुरम् के मन्दिर में ५० ब्राह्मण तिरुवायमौलि का पारायण करते थे। नाथमुनि ने स्व्यं गीतों की रचना की और भक्ति का प्रचार किया। इनके पौत्र यामुनाचार्य या आलवन्दार एक महान् सन्त हुए हैं। इनके प्रयत्न से ही विष्णु-भक्ति का दार्शनिक रूप दृढ हुआ। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के दृढ स्तम्भ रामानुजाचार्य आपसे अत्यन्त प्रभावित थे। अपने ग्रन्थों में इनका उद्धरण आपने किया है।

इस काल में (९५०-१२५० ई.) भारत का बाहर देशों से सम्पर्क बढा। धार्मिक विश्वास में वृद्धि हुई। अन्य मतावलम्बियों के साथ सौमनस्य बढा। उप सम्प्रदायों में समरसता वृद्धिंगत हुई। रामानुजाचार्यको देश छोडकर मैसूर जाना पडा यह धार्मिक विषय नहीं है। राजेन्द्र प्रथम ने १०१४-१०४२ ई. में आचार्यभोग के लिए तञ्जोर मन्दिर में भोग और पूजा के लिए दान दिया। बनारस में कोल्लामठ तथा भिक्षा मठ की स्थापना भी उपशाखा के रूप में की गयी। ऐसी भी वदन्ती है कि राजेन्द्र प्रथम ने उत्तर

के अनेक ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया और चोल साम्राज्य के अनेक प्रान्तों में बसाया।

पाशुपत सम्प्रदाय भी पनपा। काशीविलास क्रियाशक्ति भी इसी सम्प्रदाय का सन्त था जो इस काल में बडा प्रसिद्ध हुआ। इसे जनादर भी अत्यधिक प्राप्त था।

देवराय द्वितीय १४२२-४६ ई. ने अपने मुसलमान सैनिकों और सिपाहियों के लिए एक मस्जिद का भी निर्माण करवाया। यह सर्व विदित तथ्य है कि पडोसी मुसलमान शासक हिन्दुओं पर अत्याचार करते थे और उस समय मे भी करते रहे।

कृष्णदेवराय ने तिरुवण्णामलै, चिदम्बरम्, श्रीकालहस्ती, श्रीशैलम् और अमरावती आदि शैव मन्दिरों को पुश्कल धन राशि दान में दी। तिरुपति बालाजी के मन्दिर के लिए दिये गये दानों पर तो एक ग्रन्थ ही लिखा जा सकता है। कृष्णदेवराय के दानों से सम्बन्धित प्राय: ५० शिलालेख प्राप्त हैं जिसमें स्वयं कृष्णदेवराय तथा उनकी रानियों के प्रदत्त दानों का साक्ष्य प्रस्तुत है। इनकी राज सेवा में सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग थे। द्वार्तेबारबोसा Duarte Barbosa ने अपने भ्रमण वृत्तान्त में कृष्णदेवराय की धार्मिक सहिष्णुता तथा समभाव की बडी प्रशंसा की है। मुस्लिम दरगाहों को भी दान दिया। पेनुकोण्डा के बाबय्या दरगाह के लिए वेङ्कट द्वितीय ने १६३८-३९ ई. में प्रभूत धनराशि दी। देवराय द्वितीय १४४५ई. में ही इनके राज्य का दीवान एक ईसाई था।

कोइल ओलुवु, रंगनाथ के मन्दिर का उस समय का इतिहास है। इससे पता चलता है कि रंगनाथ का मन्दिर दो बार आक्रान्त हुआ। १३१०-११ई. में मालिक काफूर द्वारा तथा १३२७-२८ई. में तुगलक द्वारा। मन्दिर की रक्षा में अनेक लोगों ने अपनी जान दे दी। अपार सम्पत्ति लूट ली गयी। मूल मूर्तियों को छिपाने के लिए बाहर ले जाया गया।

कुमार कम्पन ने मदुरा सुल्तान के पराजय के पश्चात् उनके सेनापति गोपन्ना ने मन्दिर पुन: स्थापित कराया। गिञ्ची के समीप सिंगवरम् तथा तिरुपति से मूलमूर्तियों को वापस लाकर पुन: १३७०-७१ई. में प्रतिष्ठित कराया। मदुरा के सुल्तान की पराजय गाथा कुमार कम्पन की पत्नी गंगा देवी ने अपने संस्कृत काव्य मदुराविजयम् में अमर कर दी है। श्रीरंगम् के इस मन्दिर के पुन: प्रतिष्ठित होने से हिन्दूधर्म का विशेषत: वैष्णव धर्मका अभ्युत्थान हुआ। विजयनगर साम्राज्य को इसी लिए धर्म-प्रतिष्ठापक के नाम से लोग आज भी याद करते हैं। धर्म का पुनरुत्थान बडे मनोयोग और उत्साह के साथ

हुआ। वेदों पर भाष्य प्रथम बार लिखे गये। विजयनगर साम्राज्य ने विद्वन्मण्डली का समादर किया। फलत: धार्मिक ग्रन्थों का पठन पाठन वेग से बढा। सायण, वेद के प्रमुख भाष्यकर्ता इसी काल के हैं। सायण के भाष्य आज के विद्वानों के लिए मूलाधार हैं। सुल्तानों की नजर जैसे जैसे दिल्ली से दक्षिण की ओर तिरछी और तीखी होने लगी वैसे धार्मिक उत्साह हिन्दू समाज में बढने लगा।

इसी काल में माधव भी हुए। वे सायण के भाई थे। पाराशरमाधवीयम् उनका अति प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ यद्यपि एक टीका ग्रन्थ है तथापि उसमें अनेक मूल विषयों पर विशद चर्चा है। आज भी व्यवहार पर आपका मत अन्तिम और निर्णायक माना जाता है। जैमिनिन्यायमालाविस्तर आपका पूर्वमीमांसा पर प्रौढ ग्रन्थ है। आपका सर्वदर्शनसंग्रह भारतीय दर्शनों के समन्वय का एक पाण्डित्य पूर्ण ग्रन्थ है। धातुवृत्ति अपने विषय पर एक आधिकारिक और विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ है।

विजयनगर काल वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान का काल कहा जायगा। राजा प्राय: वैष्णव थे। पर प्रजा को समान दृष्टि से देखते थे। अत्यन्त उदारवादी थे। उनकी धर्मसहिष्णुता अति प्रशंसनीय थी। किसी भी धार्मिक प्रश्न को पूरी तरह छान बीन किये बिना नहीं छोडते। आवश्यकता पडने पर धर्म-सभाओं को बुलाते थे। वल्लभाचार्य, पुष्टिमार्ग के प्रतिष्ठाता ने आप की ही धर्मसभा में स्मार्तों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। वैष्णव मन्दिरों को आपने अमित उत्साह से दान दिया विशेषकर तिरुपति, सिंहाचल अहोबिल के मन्दिरों को। अहोबिल के मठ के जीयर या धर्मशास्ता वणशठकोप जीयर थे। आपने वैष्णव धर्म का प्रचार बडे लगन और परिश्रम से किया।

पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ। इनकी इमारतें बढाई गयीं। नित्य पूजा की विधिमें विकास हुआ पूजा के तत्त्व और प्रक्रिया पर बडे बडे ग्रन्थ लिखे गये। निर्माण और ग्रन्थलेखन कार्य से समाज में अधिक लोगों को रोजी रोटी का सहारा मिला। व्यापारियों को अधिक लाभ और कारीगरों को काम करने तथा अपनी प्रतिभा दिखाने के अधिक अवकाश।

वेङ्कट द्वितीय ने चन्द्रगिरि और वेल्लूर के चर्च के लिए सालाना एक हजार स्वर्णमुद्रायें दी जिससे मिशन का कार्य चलाया जाता था।

विजयनगर कालीन प्रस्तरशिल्प का विशेष स्थान है। विजयनगर कला पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं। मुसलमानों के दक्षिण की ओर बढते कदमों को रोक कर

विजयनगर साम्राज्य ने हिन्दू समाज की एक नई चेतना दी। इसी के फल स्वरूप मराठा साम्राज्य राजस्थान में राणा प्रताप उत्तर भारत में अनेक हिन्दू सामन्तों का विद्रोह राष्ट्रीय चेतना ने अपना बढता प्रभाव दिखाया। मुगल साम्राज्य के पैर जो उखड गये सो उखड गये फिर न जम सके। इसका सारा श्रेय विजयनगर साम्राज्य को जाता है।

अध्याय एक

जीवन के प्रति दृष्टिकोण :

भारत की अखण्डता के लिए भौगोलिक परिभाषायें असम्पूर्ण हैं। परम पुरुषार्थ की कल्पना, जीवन के प्रति दृष्टि की, मानव के मुख्य-लक्ष्य के रूप में सर्वस्वीकृत सिद्धान्त के रूप में, उभर कर सामने आयी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, दार्शनिक और धार्मिक उग्र मत भेद के रहने पर भी साधना में आश्चर्य जनक रूप से एकता दृष्टिगोचर होती हैं।

जीवन के चरम लक्ष्य और उसके प्राप्त करने के उपाय अर्थात् साध्य-साधन की एकता ने समाज को एक समग्रता प्रदान की।

साधन की समग्रता अनन्य या एक नहीं है। अनेक मत की साधन-प्रक्रियाओं में भारी अन्तर हो सकता है पर मौलिक तत्त्व एक ही है। सूत्र और स्मृतियां जीवन के वैभिन्य के बावजूद एकता स्थिर रखने में सफल हुई हैं।

अनेक सिद्धान्तों में कर्म सिद्धान्त सर्वोपरि है। उसी कर्म सिद्धान्त से जुडा है पुनर्जन्म। पुनर्जन्म से जुडा है जन्म-मृत्यु का रहस्य योनि का रहस्य।

त्वं स्त्री त्वं पु मानसि त्वं कुमार उत कुमारी
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः
उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठत्र उत वा कनिष्ठः
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ।।

अथर्व १०.२७-२८.

तू कभी स्त्री का रूप धारण करता है। कभी पुरुष का कभी कुमार तो कभी कुमारी। कभी जीर्ण शरीर दण्डे के सहारे चलता है और कभी तू अपरिच्छिन्न होकर हर जगह पैदा होता है अर्थात् अनेक जन्म लेता है कभी यहां तो कभी वहां।

कभी पिता बन जाता है कभी पुत्र कभी कनिष्ठ और कभी ज्येष्ठ। जो यह एक देव मन में प्रविष्ट है वही गर्भ में भी प्रवेश करता है।

क्यों मानवी के गर्भ से हाथी पैदा नहीं होता? रीछ से बन्दर क्यों नहीं? जब जड जगत् और जीव जगत् एक ही मूल श्रोत से उत्पन्न हैं? गर्भस्थावस्था क्या है? गर्भस्थ

अवस्था में यह पूर्व जन्मार्जित कर्म जिस शिशु-शावक गदहा, शूकर और मानवी के डिम्भ के पास कैसे संलग्न होता है? डाक्टर का बच्चा डाक्टर क्यों नहीं पैदा होता। कुष्ठ रोगी का कुष्ठ या क्षयरोगग्रस्त का क्षयी? पण्डितपुत्रः शुण्ठः कहावत प्रसिद्ध है। ऐसा क्यों? इस प्रश्न पर सांख्य योग, आयुर्वेद, न्यायवैशेषिक, बौद्ध अद्वैतियों ने सबने विचार किया है। सबके पास अपना अपना जवाप्र है। पुंसवनादि आचार क्या लिंग निर्धारण में सहायक हो सकते हैं। क्या किसी रसायनिक प्रक्रिया से या धार्मिक कर्म कृत्य से? क्या पुत्रेष्टि यज्ञ पुत्र पैदाकर सकता है?

संसृतिशील जगत् की स्थिरता की कर्म एक गति है। गोली बन्दूक की नली से बाहर निकलने पर वेग के साथ जाती है पर उस गमन क्रिया में आकाश गमन के समय एक शब्द भी प्रसूत होता है। गोली का उद्देश्य लक्ष्यभेद है। पर शब्द की उत्पत्ति? तालाब में पत्थर फेंकने पर पत्थर तो नीचे चला जाता है पर पानी की सतह पर तरंग उभरती है। पत्थर के तालाब के नीचे चले जाने पर भी ये तरङ्ग की मृदु हलकोरें तालाब के तीर तक आती हैं और घट्ट सम्मर्दन पर शान्त होती हैं। यह सम्मर्दन तरंग गति शान्ति का कारणान्तर हो का सकता है। पर पत्थर के नीचे जाने के बाद भो तरंग अनुतरंग उठती है। ताम्बे से सोना बनाते हैं, लोहे से बन्दूक। कारण से कार्य तक की फल-परिणति प्रक्रिया सद्यः फलदायिनी या विलम्ब्र से फलदायिनी हो सकती है पर फल परिणति शून्य नहीं है। यज्ञों के सम्पादन से अभिवाञ्छित फल प्राप्त होते रहे। वरुण जप से वर्षा। दान व्रत जप अनुष्ठानादि से फलप्राप्ति साधारण विश्वास है, सब आचरण करते भी हैं पर दृष्टरूप से कारण कार्य सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। इस प्रसंग में दो पद मुख्य रूप से विदित हैं। अपूर्व और वासना। अपूर्व को ही अदृष्ट भी कहते हैं जिसको साधारण बोलचाल में भाग्य या तकदीर कहते हैं।

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति।।

जैसे हजारों गायों में बछडा अपनी मां के बिना किसी गलती के पहचनता है वैसे ही पूर्वकृत कर्म कर्ता का अनुगमन करते हैं। कैसे? यह प्रक्रिया देखी नहीं गयी है देखी नहीं जा सकती। साधारणतया ज्ञात कारण - कार्य नियमों के परे हैं। दूसरा शब्द है वासना। वास गन्ध को कहते हैं। कुत्ते गन्ध को पहचान कर दुष्टों को पकडते हैं। सिंह रिंरिसा होने पर एक प्रकार का गन्ध छोडता है जिससे शेरनी आकृष्ट होती है। हाथियों

के गण्डस्थल से निकलनेवाले मदजल में एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है जो करिणी को यभन के लिए परवश करती है। मधुकर गन्ध से आकृष्ट होकर एक फूल से दूसरे फूल कर बैठकर सृष्टि प्रक्रिया में सहायक होता है। गन्ध गुलाब, चम्पा, चमेली और जुही में कहां से ओर कैसे आती है यह प्रकृति का रहस्य है। यह गन्ध-चित्र ऐसे ही हैं जैसे रसिकोत्तम अपनी प्रेमिका के साथ किए गये विलास-बिब्बोक का चित्र अपने मन में खींचकर आनन्द सागर में डूबता है। मानव स्त्री-पुरुष लिंग-प्रसूत गन्ध - ग्राहिता को विस्मृत कर चुके हैं जिसे जानवर अभी तक भूलें नहीं हैं उससे बहुत पूर्व नैतिकाचरण जन्य वास को ग्रहण करना भूल गये दूरात् गन्धो वाति सुकृतस्य कर्मण:। यद्यपि वैष्णव समुदाय सब कुछ भगवदनुग्रह से प्राप्त करा सकता है पर प्रारब्धकर्म को 'अनुभवादेव क्षीयते' ऐसा मानते हैं।

क्रियमाण संसार अनादि है। अत: मानव और मानव द्वारा अनुभूयमान कर्म भी। अत: किस क्रूर कर्म का कितने विलम्ब के साथ फल मिलेगा कह नहीं सकते। अरबों आदमियों के कर्म फलों का मिलाना और बुद्धि को कर्मानुसारिणी बनाना, फिर जड जगत् वनस्पति और पशु जगत् अण्डज उद्भिज आदि सहित सब का फलभोग एक विशाल कम्प्यूटर ही कर सकता है। भूत और वर्तमान में एक रेखा नहीं खींची जा सकती। कब १२ बजा यह बताना कठिन है क्यों कि १२ बज ने पर-परवर्ती क्षण आ जाता है। उस अर्थ में कर्म मानव का प्रतिप्रबन्धक ढांचा है जो उसे कर्म करने लिए पूर्वकृत कर्मों के आधार पर उकसाता है।

कर्म स्वाधीनेच्छा का भी पर्याय हैं। अपने कर्मों से अपने भविष्य को बना सकता है। यह कर्मवशानुगा है। संस्कारों से धर्मिक नैतिक सामाजिक राष्ट्रीय आदि बाध्यताओं से क्रान्त है। कर्म करने में समर्थ होते हुए भी कर्म फल भोगने में स्वतन्त्र नहीं हैं। यदि कर्म किया गया है तो उसका फल भी अवश्य भोगना पडेगा इससे यानि कर्मफल से छुटकारा नहीं है।

देवेच्छा बलीयसी यह विश्वास भारत में सार्वत्रिक है। इस अर्थ में मानव जो भी कर्म करता है वह तो ईश्वर की प्रेरणा से ही करता है। अत: ईश्वर ही कर्म का कर्ता है। मानव तो निमित्तमात्र है। उस अर्थ में कर्म देव पूजा हैं।

निष्काम कर्म का क्या अर्थ है यह अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार स्थिर है। पालि मे निष्काम और निष्कर्म का एक ही रूप होता है। आगे चलकर इसके कारण काम

और कर्म को एक मानने की प्रवृत्ति बढी नैष्कर्म्य सिद्धि तथा निष्काम कर्म ऐसे वाद भारतीय दर्शन में उपलब्ध हैं। सब का फल का भोग एक विशाल कम्प्यूटर ही कर सकता है।

कार्य-कलाप का कोटा-परमिट द्वारा संघटन केवल सरकार ही कर सकती है, ऐसा नहीं है। किस व्यक्ति को कितने पूर्व जन्माश्रित कर्मों के फल भुगतने हैं, वे क्या क्या हैं, उनके सुखद और दु:खद अनुभवों के लिए कैसी परिस्थितियां इस जन्म में बनाना सम्भव नहीं तो अगले जन्म पर टालना तो सम्भव है। योग वासिष्ठ में महानियति जैसे पद भी प्रयुक्त हैं। शायद भूकम्प, बाढ, ट्रेन या वायुयान-दुर्घटना आदि ऐसी महानियति के उदाहरण होंगे जहां अनेक व्यक्तियों को एक ही प्रकार के फल एक ही समय में भोगने पडते हों, क्यों कि सब का अदृष्ट फलवत्ता के लिए काल अभी पक्व हुआ है।

प्राय: सारे सम्प्रदाय नैतिक आचरण या आचरण की शुद्धता पर जोर देते हैं। इसके लिए क्या कर्म करें कैसे करें यह बताते हैं। यदि वैष्णव जन एकादशी का व्रत अवश्य कर्तव्य कहते हैं तो स्मार्त भी शिव चतुर्दशी को उतना ही महत्त्व देते हैं। फिर रमजान का महत्त्व क्या कम है? शिव गायत्री विष्णु गायत्री समान रूप से प्रचलित है। शिवाला शब्द शिव के आलय और विष्णु के मन्दिर दोनों के लिए समान रूप से प्रयुक्त है। मुक्तों की क्या गति है। आगामी, सञ्चित और प्रारब्ध कर्मों का उन पर क्या प्रभाव पडता है इत्यादि मूल प्रश्नों पर प्राय: सभी सम्प्रदायों ने विचार किया है।

अन्ततः कर्मबन्ध प्रहाण ही गति है; जन्म बन्ध से मुक्ति। भगवद्गीता में निष्काम कर्म को कहा है। कर्म से सब बन्धे हैं। जीव, ईश्वर पशु पक्षी वनस्पति इत्यादि। कर्म का फल क्योंकि अवश्य भोगना पडता है और इसी फल भोग के लिए जन्म मरण है अत: यदि जन्ममरण के चक्कर से बचना है तो कर्म करना ही बन्दकर देना पडेगा। पर कर्म तो बन्द नहीं किया जा सकता पर कर्म फल रोका जा सकता है।

मोक्ष

कर्म अनादि है क्यों कि जीव अनादि है पर अनादि होने मात्र से उसे अनन्त नहीं मान सकते। कहीं न कहीं, कभी न कभी इस जन्म - मृत्यु के चक्र का छेदन करना ही पडेगा। अत: इसे सान्त माना है। यह कर्म-बन्ध ही जन्म-मृत्यु का चक्र है। यही जरा - रोग का कारण है। यही दारिद्र्य स्वजन विरह का कारण है। जननी जठर में मलमूत्र से लिप्त होने के अनुभव से अधिक घिनौना अनुभव और क्या हो सकता है?

अत: कर्म को बन्द करो कर्म-फल को बन्द करो, कर्म त्याग, कर्म फलत्याग दोनों का गीता में सन्दर्भ है। अहमस्मि इदं मम मैं और यह मेरा है दोनों में अन्तर है। घटमहं जानामि घटज्ञानवान् अहं के समान। यह कहना कठिन है कि कर्मों के फल स्वरूप जन्म प्राप्त होता है या जीवन यापन से कर्म उद्भूत होते हैं? वासना अनादि है। और इस वासना के फल स्वरूप मानव जन्म मृत्यु का बन्ध अपने गले में फांस लेता है। चन्द्रमा अपनी चांदनी छिटकाता है। पर चन्द्र के अस्त होते ही चान्दनी स्वयं लुप्त हो जाती है। चांदनी के उपसंहार के लिए किसी अलग प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। चित्त ही अनेक विकल्पों की सृष्टिकर भव जाल का ताना बाना बुनता है। अस्तं गते चन्द्रमसीव नूनं नीरेन्दव: संहरणं प्रयान्ति चित्तं हि तद्वत् सहजे विलीने नश्यत्यमी सर्वविकल्पदोषा: और चित्त के प्रशमन के पश्चात् यह ताना बाना स्वयं लुप्त हो जाता है।

चित्त के प्रशमन का क्या अर्थ है? वृत्तियों का इधर उधर दौडने से बचाना। संयम करना था। कमसे कम देवचिन्तन में बांध लेना देवार्चा इस चित्तनिरोध में सहायक और उपासक है।

कर्म फलों को कैसे बन्द करें? कर्म कौन करता है ? बीमार पडने पर मलमूत्रादि विसर्जन के लिए एक परिचारक की आवश्यकता पडती है, ऐसा क्यों ? वह शक्ति कहां गयी? मरने के पश्चात् तो देह को चितासमर्पित कर देते हैं तब कर्म फल किसको मिलता है। अन्ध -पंगु - विकलांग, दरिद्र - धनी, स्थूल - कृश कौन होता है?

इन सब प्रश्नों के अनुचिन्तन के फल - स्वरूप भारतीय चिन्तन - धारा ने समाधान के रूप में एक अनुस्यूतता खोज निकाली - वह है आत्मा। यद्यपि बौद्ध दर्शन आत्मा को नहीं मानता तब भी मोक्ष या निर्वाण को मानते हैं। दु:ख को, दु:ख क्षय को मानते हैं। यदि आत्मा को इस संसार चक्र के भ्रमण से उबारना है तो कर्म का विनाश करना है। कर्म - विनाश दग्ध बीज की भांति फलनिष्पादन में असमर्थ हो। उसके लिए प्रयत्न करना है। मोक्ष की रूप परिकल्पना भिन्न होने पर भी कर्म नाश पर सब सम्प्रदाय एकमत हैं। सब का उद्घोष है-- उस आत्मा को पहचानो बाहर निकालो जो पाप-पुण्य से परे, कर्म जाल से अतिदूर, माया मोह से अस्पृष्ट है। जिसके साधने से जगज्जाल से, सांसारिक विषमताओं से मुक्ति मिल सकती है। निश्चय ही आत्मा निर्लिप्त है। विषयोत्थ और मोहदैन्योत्थ सुखक्षणभंगुर है--

एको देवः सर्वभूतेषुगूढः सर्वव्यापी भूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।

श्वेताश्वतर ६.११.

वही प्रेरक है। जगद्बीज होने के कारण कर्माध्यक्ष भी वही है। सब कर्मों का मालिक और सर्व भूताधिवास, समस्त जीवों में रहनेवाला है अत: उस व्यक्ति का उस व्यक्ति में संकर नहीं हो सकता। कर्म प्रवृत्तिचैतन्य के बिना सम्भव नहीं है। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण नदी जल की निम्नगामिता प्राणिमात्र की जरामृत्यु की कालगति की ओर उन्मुखता इन सब कर्मों का प्रवर्तयिता उत्तेजक सर्वत्र समस्त जीवराशि में अत: वही कर्माध्यक्ष है।

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि
न नभो घटयोगेन सुरागन्धेन लिप्यते
तथात्मोपाधियोगेन तद्धर्मै नैव लिप्यते।

जैसे शराब से भरे घडे से घटाकाश सुरा की गन्ध से लिप्त नहीं होता वैसे ही उपाधि या उसके धर्मों के योग से आत्मा लिप्त नहीं होती।

आत्मा की इस चिन्मय स्थिति ने ही सबका यह विश्वास दृढ किया कि आत्म साक्षात्कार से, जन्ममृत्यु की शृंखला से, छुटकारा पाया जा सकता है। आत्म शुद्धबुद्ध है। और प्रकृति के किसी भी कर्म से अछूती। यह सत् चित् आनन्द है। आत्मा के ये गुण प्राय: सब मानते हैं यद्यपि आत्मा के स्वरूप निर्धारण में आपस में मत भेद है यद्यपि न्याय के अनुसार निर्गुण अर्थात् शरीर से बद्ध होने की ग्रन्थि से बाहर (गुण का अर्थ रस्सी भी है) जा आत्मा को शरीर से बांधे रखे वह वही गुण है। सांख्य के अनुसार शुद्ध संवित् और वेदान्त चिदेकरूप मानता है। वैखानस निरुपचरित भेदवादी हैं।

सारे दर्शन सम्प्रदाय इस संसार को दु:खमय मानते हैं। और इस संसार से छुटकारा चाहते हैं। इस संसार में कैसे रहा जाय इसके लिए वर्णाश्रम धर्म बनाये गये हैं जिनका पालन सब लोग करते हैं। पाप रहित जीवन बिताते हैं। धर्म भीरुता सबका साधारण गुण है। शरीर शुद्धि, मन का परिष्कार आवश्यक है अत: योग क्रियाओं की आवश्यकता पर सब लोग विश्वास करते हैं।

वर्णाश्रम धर्म :

वेद को लेकर वेद की स्वत: प्रामाणिकता या वेद के समान मान्यता को लेकर

समाज में अनेक वर्ग बने। वेद को न माननेवालों की संख्या तब भी कम न थी। पर इस्लाम के भारत में प्रवेश के पश्चात् ऐसे धार्मिक समुदायों का जिनके पास अपना कोई राजनैतिक आधार न था, वर्णाश्रम व्यवस्था में रहना कठिन हो गया। कन्यों के लिए सुयोग्य सजातीय वर जन्म-मृत्यु के संस्कार के लिए ब्राह्मण पुरोहित प्राप्त नहीं होते अत: अन्ततो गत्वा ऐसे समुदाय के परिवार वे सब क्रमश: मुसलमान हो गये। और क्यों कि हिन्दू धर्म मत परिवर्तन की आज्ञा नहीं देता अत: वहीं रह गये। ब्रिटिश काल में भी इसी कारण से ब्राह्म समाज, आर्य समाज उत्पन्न हुए। मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व बौद्धों के आक्रमण के पश्चात् वर्णाश्रम व्यवस्था सर्वजनीनतया सादर स्वीकृत व्यवस्था थी। 'मुंडे सन्यासी की जात क्या' ऐसी परिहासोक्तियां समाज में प्रचलन में आयीं पर, वर्णाश्रम व्यवस्था समग्र भारत को एक सूत्र में बांधे रखने में सफल रही। सारा पण्डित समाज स्मृतियों के अध्ययन परिमार्जन के क्राम में जुट गया, बडे बडे आकर ग्रन्थ लिखे गये, नयी टीका उपटाकाओं के समसामयिक सामाजिक प्रश्नों का उत्तर खोज निकालने का प्रयत्न किया गया पर इस्लाम के तलवार हाथमें लेकर आगमन से एवं राजपोषत्व के अभाव से हिन्दू समाज की वर्णाश्रम व्यवस्था चरमरा गयी। पढें फारसी बेचें तेल। ये देखो कुदरत का खेल जैसी उक्तियां समाज में व्याप्त नये उथल-पुथल का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने लगी।

साधना की एकता :

भारत का विशेष अनुदान है जिज्ञासा। जिज्ञासा सार्वत्रिक हे। ब्रह्मसूत्रों में ब्रह्म की जिज्ञासा सामान्य है। सारे सम्प्रदायों के अपने अपने भाष्य हैं पर सब ब्रह्मसूत्र को आकर या मूल स्रोत मानते है। मूल से बंधे है शाखा पल्लवों में स्वतन्त्र--

ब्रह्म सत्य और जगन्मिथ्या साधारण विश्वास है। कोई सम्प्रदाय विशेष मात्र सत्य हैं ऐसा नहीं है। तत्त्व सत्य है। इसमें एकता है उस तत्त्व को कैसे प्राप्त किया जाय इसमें ऐकमत्य नहीं है। तत्त्व का स्वरूप कैसा है इसमें भी मतपार्थक्य हो सकता है।

देश काल अनन्त है। अभी समाप्त नहीं हुए हैं। कब पुन: नया अवतार आ जाय किस देश में प्रकट हो कौनसा तत्त्व तब प्रकटित हो अत: आज के ज्ञान के सीमित साधनों के कारण अन्तिम इदमित्थम् नहीं कह सकते।

धर्म अति को सर्वत्र वर्जित करता है नैतिक परिसीमन कर बलवान के ऊपर

नियन्त्रण स्थापन करता है। अत: अशक्त औ, सशक्त समान बलवाले हैं। मोक्ष में समानाधिकार है। आचरण में स्वतन्त्र है पर कर्मफल भोगी है यही कर्म या प्रारब्ध उच्छृंखलता को नियन्त्रित करता है। समाज में स्थिरता पैदा करता है। कर्म सिद्धान्त सर्व स्वीकृत सिद्धान्त है।

इस लोक से परलोक प्रशस्ततर हैं। उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए यह सब लोग मानते हैं चार्वाक आदि भौतिक वादियों को छोडकर इसकी प्राप्ति परम पुरुषार्थ है।

इस परमप्राप्तव्य के लिए साधन शुचिता चाहिए। देह मन आत्मा तीनों मिलकर जीव को समन्वित करते हैं। तीनों की शुद्धि शुद्ध आचार योग तथा परमतत्त्व जिज्ञासा है।

शुद्ध आचार के लिए वर्णाश्रम धर्म नियम मन की शुद्धि के लिए योग प्रयुक्त अहिंसा सत्य अस्तेय यम नियम ध्यान धारणा आत्मा की शुद्धि के लिए स्वाध्याय। पहिले तो स्वाध्याय वेद मात्र था पर बाद में उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और साम्प्रदायिक साहित्य जैसे तामिल प्रबन्ध आदि भी जोड दिये गये।

मध्यकाल में भक्ति भी सर्व स्वीकृत सिद्धान्त के रूप में उभरी आज भी लोक में जनादर प्राप्त है।

हमारे मानसिक संस्थान में एक वासना या संस्कार बना है। जिसको समय भी परिवर्तित नहीं कर सकता। 'मांस भक्षी कुतो दया, बाह्मनका बच्चा, पढा अच्छा या मरा अच्छा, ...स्थ का बच्चा, कभी न सच्चा' ऐसी प्रौढोक्तियां वर्ण विशेष की जन्मजात संस्कार की अतिशायिता का वर्णन हैं। भारतीय सेना में जाट रेजीमेन्ट है सिक्ख रेजीमेन्ट है पर ब्राह्मण रेजीमेन्ट नहीं है।

आज कल सेना में भर्ती के लिए 'साइकोलोजिकल टेस्ट' या संस्कार परीक्षण होता है। परिस्थिति विशेष में व्यक्ति क्या करेगा-- अथवा व्यक्ति का संस्कार कैसा है? ब्राह्मण पुत्र क्यों कि दया, करुणा, मैत्री के संस्कारों में पला है अत: सेना के लिए क्रूरतायुक्त प्रत्युत्तर देना मानसिक संस्कार के बाहर है, अत: आवश्यक और अपेक्षित प्रत्युत्तर नहीं दे सकता। प्रत्युत्तर की अबाधता, या औचित्य परिस्थिति - वश स्थिर होती है। पुष्ट होती है। अत: सैनिक नौकरी के अयोग्य ठहरा दिया जाता है। महाभारत में कर्ण की कथा आयी है। परशुराम के आश्रम में कर्ण शिक्षाभ्यास कर रहे थे। एक दिन परिश्रान्त गुरु कर्ण की जंघा पर सिर रख सोये थे तब किसी जानवर ने आकर कर्ण की

जंघा को डस लिया और रक्त का फौव्वारा छूट पडा। पर गुरु के निद्राभंग की भीति से कर्ण अविचलित रहा। पर रक्त के आर्द्र औष्ण्य प्रवाह के कारण निद्रा व्याघात होने पर रक्त से लथपथ होने पर भी अचंचल बैठा रहा अत: ब्राह्मण नहीं है, ऐसा निश्चय कर उसको शिक्षा देने से इन्कार कर दिया और धोखा देने के अपराध में सीखी शस्त्र विद्या ठीक समय पर काम न आयेगी ऐसी शाप भी दिया। आज का विज्ञान भी आनुवांशिकता को मानता है। DNA जैसा कोई तत्त्व है जो पितृ पितामह आदि गुणों को, रोग आदियों को भी स्वीकार करता है।

व्यूह :

कुछ लोगों का मानना है कि व्यूह - प्रस्थान वैखानस सम्प्रदाय में नहीं है क्यों कि मरीचि संहिता में इसका सन्दर्भ प्राप्त नहीं है। पर भृगुसंहिता में उपलब्ध है।

पञ्चधातु पुनर्व्यूहः प्रोच्यते श्रुतिसम्मतः ।
देवो विष्ण्वादिभेदेन पञ्चधा व्यवतिष्ठते ।। पृ. ३८६.७.

जिसके अंश हैं - पुरुष, सत्य, अच्युत, अनिरुद्ध और आदिमूर्ति मरीचि में भी सन्दर्भ प्राप्त है पृ.५०७-०८.धर्म - ज्ञान - ऐश्वर्य - वैराग्य एक एक व्यूक का विशिष्टगुण है। वैखानसों का मानना है कि अर्चा मूर्ति के निरन्तर पूजन से जीव की संसार के प्रति आसक्ति क्षीण हो जाती है। और तब भगवद्दर्शन प्राप्त करता है।* (*शरीर पुरुषस्कन्द पुरुषो वेद पुरुषो महापुरुष *ऐतरेय आरण्यक* ३.४.२.) जब जीव दिव्यलोक में पहुंचता है तो भगवान की चार प्रकारसे सेवा कर सकता है। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। आमोद प्रमोद सम्मोद और वैकुण्ठ ये एक दूसरे के ऊपर हैं।* (*चतुर्व्यूहधरो विष्णुरव्यूहः प्रोच्यते स्वयम्। कूर्म २२.७७) अत: आमोदलोक में मुक्त जीवात्मा सालोक्य अवस्था को पहुंच जाता है। यहां अंश पुरुष की सेवा में रहता है। पुरुष का गुण धर्म है। यही जीवात्मा का विषयगुण बनता है। सम्मोद लोक में सारूप्य स्थिति में विष्णु के अंश अच्युत की सेवा करता है। ब्रह्मगुण ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य ही अच्युत का गुण है। और यही जीवात्मा का गुण बनता है। चतुर्थ वैकुण्ठ में जीवात्मा सायुज्य स्थिति को प्राप्र करता है। अनिरुद्ध यहां का व्यापी नारायण का अंश है। इनका गुण वैराग्य है। नारायण के अतिरिक्त अन्य समस्त विषयों से विरक्ति उस लोक का प्रधान गुण है। इस प्रकार धर्म ज्ञान ऐश्वर्य तथा वैराग्य परमात्मा के गुण हैं।* (*चतुमूर्तिश्चतुर्बाहुर्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः। पटल ८७ मरीचि.)

गरुड ने अनेक व्यूहों की चर्चा की है।* (*नवव्यूहार्चनं वक्ष्ये युदुक्तं कश्यपादिभि: गरुड ११.१.) कश्यप वैखानस सम्प्रदाय के चार प्रतिष्ठापकों में अन्यतम हैं। विष्णुसहस्रनाम में चतुर्व्यूह भगवान के नामों में अन्यतम है।* (*विष्णु सहस्रनाम ९५) कूर्मपुराम में विष्णु स्वयं तो व्यूहरहित हैं पर चतुर्व्यूहधर हैं।* (*नित्य मुक्त शुद्ध स्वभाव पुरुषैरनुभूयमान वैष्णवाण्ड तत्र विष्णुलोकाश्चत्वार: आमोद: प्रमोद: सम्मोद: वैकुण्ठ इत्येकैकस्योपरि यथाक्रमेण भवन्ति मरीचि ८७ पटल) चतुर्व्यूहकी व्याख्यामें शंकर ने एक उद्धरण बह्वृबचोपनिषद् से प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार शरीर - पुरुष, छन्दपुरुष, वेद पुरुष और महापुरुष ये चार भगवान के व्यूह हैं, अत: भगवान चतुर्व्यूह है।* (*तदाराधनेन संसारार्णवनिमग्नो जीवात्मा परमात्मानं नारायणं पश्यति मरीचि १४ पटल) पर पाञ्चरात्र या वैखानस सम्प्रदाय के व्यूहका जिक्र नहीं किया। भागवत में प्रति नौवर्ष में भगवान पुन: व्यूह में उपस्थित होते हैं* (*नवस्वपि वर्षेषु भगवन्नारायणो महापुरुष: पुरुषाणां तदनुग्राहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाद्यापि सन्निधीयते भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मन: संकर्षण संज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधायति भागवत ४.१७.१४-६.) श्रीधर ने व्यूहेन का अर्थ स्वमूर्तिसमूहेन किया है। पुन:

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ।।

भागवत. १०.४०.२१.

तत्त्वत्रयमें व्यूहों की स्थिति सृष्टिपालन संहार संरक्षण और उपासकों पर अनुग्रह करना है। विष्णुपुराण में सृष्टिपालन और संहार से सम्बद्ध ब्रह्मा विष्णु महेश की चार चार अंशों में स्थिति बताई गयी है पर वासुदेव व्यूह से इनका कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया गया है।* (* विष्णु पुराण १.२२.२३-२९.) गोपालोत्तरतापनीयोपनिषत् में वासुदेव व्यूह का सम्बन्ध जाग्रत स्वप्न आदि अवस्थाओं से और ॐकार आदि मन्त्रों से किया गया है।* (*गोपालोत्तरतापनीय ५५-५८)

वैखानस सम्प्रदाय में पुरुष सत्य अच्युत अनिरुद्ध ये चार व्यूह पुरुष हैं। व्यूहका अर्थ है विन्यास - या विशेष प्रकार की रचना। सैन्य विन्यास के अर्थ में अभिमन्यु के वध केलिए तैयार की गयी रचना का नाम चक्र व्यूह सबको विदित है। मनु ने दण्ड व्यूह, शकट व्यूह, वराहव्यूह, गरुड व्यूह, मकर व्यूह, सूची व्यूह, आदि पदों

का प्रयोग किया हैं।* (*मनुस्मृति ७.१८७. और ७.१८८.) में पद्म व्यूह का भी जिक्र किया है। ये सब तो सैनिक अवस्थान हैं। टीकाकार ने इनका स्वरूप वर्णन भी किया है।

धार्मिक क्षेत्र में भगवान भक्तों के सुख के लिए अपनी ही संरचना करते हैं। इस नयी संरचना को व्यूह कहते हैं। यह अभिव्यक्तीकरण है। इस अभिव्यक्तीकरण का अर्थ बताते हुए महाभारत मोक्ष धर्म पर्व में वासुदेव शब्द को - वासनात् देवनाच्चैव वासुदेव ततो विदु: इसमें सब बसते है अत: वासु है तथा द्योतन के कारण से देव है। द्योतनका अर्थ है प्रकाशित होना। प्रकाशित होने का अर्थ है इन व्यूहरूपों में इच्छागृहीत रूप स्वीकार करना।

समस्तकल्याणगुणात्मको हि स्वशक्तिलेशावृतभूतवर्गः।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ ।।

विष्णुपुराण.६.५.८४.

अशेष जगत् का हित करने के लिए यह इच्छाशक्ति से प्रकटित देह है। इसका उदाहरण निग्रह है। जब तक प्रस्तररूप में रहता है तब तक उसमें कोई आकृति नहीं पर जब छैनीसे संगतराश उसमें रूप भर देता है तो वही राम कृष्ण की लावण्यमयी मूर्ति बनजाती है। जो उसी पत्थर में थी उभार दी गया है। व्यूह भी एक ऐसा ही उभार है। भगवान की अनन्त शक्ति है --

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रतानित्यमलुप्तशक्तिः।
अकुण्ठशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरगांनि महेश्वरस्य ।।

व्यूहवाद की विकास की दृष्टि से ऋग्वेद १०.९०.२-४. अथर्व १०.१०.२९. तैत्तरीय आरण्यक ३.१२.२. छान्दोग्य ४.५-९ श्वेताश्वतर २.१६.१ द्रष्टव्य हैं।

संस्कार

संस्कार एक परिष्क्रिया है एक शुद्धिकरण है । जिस के बिना व्यक्ति समाज के उपयोग का नहीं रहता। जैसे बर्तन खरीद कर लाने के बाद तुरंत काम में नहीं लाया जा सकता उसे इमली आदि की सहायता से संस्कृत कर परिष्कृत किया जाता है ठीक उसी प्रकार व्यक्ति की सत्ता का परिष्कार किया जाता है जिससे वह व्यक्ति जो अभी तक समाज के किसी काम का न था अब समाज में उसकी उपयोगिता आ गयी । समाज में उसका

स्थान स्थिर हो गया। उस पर अब समाज के नियम लागू हो गये। ऋणत्रय का अपाकरण उसका दायित्व हो गया।

उपनयन संस्कार सम्भवतः सब से महत्व पूर्ण संस्कार है । यह संस्कार द्विजमात्र को प्राप्त है । सामाजिक ज्ञान भण्डार उसके लिए खोल दिये गये। उसके शाखा-गोत्र ऋषि-सूत्र यह सब उसको बताते है दायित्व कैसे निभाना चाहिए देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण। पितृऋण में उसे बताया जाता है कि जानवरों की तरह मैथुन करना काम-निर्वाह नहीं है । पितृऋण मैथुन मात्र से निवृत्त नहीं होता। यह एक संस्कार है - पुंसवन। देव इस संस्कार को नहीं कर सकते क्यों कि उनका मैथुन पुत्रोत्पादन नहीं कर सकता। अतः उनको यह संस्कार प्राप्त नहीं है। और पशु तो किसी भी संस्कार के बिना पशु ही रहता है। स्वर्ग के लिए, मोक्ष के लिए प्रयत्न नहीं कर सकता। श्रवण मनन नहीं कर सकता। केवल मानव व्यक्ति ही जिस की सत्ता समाज ने स्वीकार कर ली है पतित नहीं हुआ है, वही वैदिक यज्ञ याग कर सकता है। पितृऋण से विमुक्त हो सकता हैं।

जब तक बच्चे का संस्कार नहीं होता है कुछ भी खा सकता है। अभक्ष्य को छोड कर। कहीं भी जा सकता है। गावों में ब्राह्मण वंशज भी बच्चे उपनयन पूर्व अनाश्रम अवस्था में शूद्रों के घर जाकर कुछ खा लेते हैं पर उपनयन के पश्चात् न तो शूद्र के घर जाना ही सम्भव है, न खाना ही। क्यों कि समाज ने उसे अपने समाज का एक व्यक्ति स्वीकार कर लिया है। अतः समाज के सारे नियम खानपान के भी परस्पर मिलने के भी उस व्यक्ति पर लागू होते हैं ।

ऋषिऋण अपाकरण अध्ययन से हैं। जो वेदबाह्य हैं वे भी पारायण करते हैं। हनुमान चालीसा या दिव्य प्रबन्ध वेद बाह्य दोनों परिस्थितियों हैं अनाश्रमी जिसने अभी ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश नहीं किया है द्विज नहीं हुआ है। 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते' संस्कार होने तक शूद्र ही रहता हैं। और दूसरी कोटि शूद्र पञ्चम और पतित की हैं। ये भी अनाश्रमी है। वेदाधिकार से वञ्चित।

घर में रहकर बच्चा वेद सुनता है । उत्तम वृद्ध और मध्यम वृद्ध द्वारा क्रियमाण यज्ञ याग पूजा आदि देखता है । शायद वस्तुओं के लाने ले जाने में दूरात् उपकारक भी हो। निरर्गल बहती चित्त चपलता को एक दिशा मिलती है । क्रियमाण कर्मों के प्रति एक आस्था जाग्रत होती है और उन कर्मों में एक सप्रयोजनता। गृहस्थाश्रम में प्रवेश के समय

यही आस्था पूर्ण मनोयोग से प्रवृत्त होने के लिए प्रेरणा देती है । उत्तर आश्रम में प्रवेश तक।

समाज एक शृंखलता के समान है। असगोत्रीय कन्या से विवाह कर इस शृंखला को समान्तर रूप से दृढ करता हैं । जबकि पितृऋण द्वारा ऊर्ध्वाध: शृंखला की एक कडी बनता है । ऊपर से नीचे और समानान्तर रूप से मेकानो के पुरजों की तरह द्विधा बद्ध पुरुष समष्टि में व्यष्टि नहीं तिलतण्डुल के समान पर शृंखला के अनेक कुन्दों में एक कुन्दा हैं । एक कडी हैं । यदि एक कडी भी टूट जाय कमजोर पड जाय तो सारी की सारी शृंखला का कार्यनिर्वाहक धर्म लुप्त हो जाता हैं । अकार्यकर। अत: भारत में वर्ण व्यवस्था में उस व्यक्ति का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बहुत से लोग वर्णाचार परिपालन को ही हिन्दू धर्म कहते हैं । ईश्वर के प्रति आस्था धर्म नहीं है। इस अर्थ में समाज ही ईश्वर का सर्वव्यापक रूप है। इसीलिए पुरुष परम पुरुष भी है । व्यक्ति पुरुष भी।

प्रापञ्चिक सत्ता भूलोक तक सीमित हो ऐसा नहीं हैं । ब्रह्माण्डीय एकता को पहचानता हैं । बताता है और प्रामाणित करता और तदनुकूल वासना जाग्रत कर आचरण को नियमित करता है ।

और देवलोक में भी सहायक है। सूर्योपस्थान द्वारा सूर्योदय को सरल बनाता है। सुखद बनाता है । सूर्य को अर्घ्य कब दिया जाय- इस पर शास्त्रार्थ है। सूर्योदय के पूर्व या सूर्योदय के पश्चात् पर वेद वचन उद्यन्तं सूर्यमुपासीत है। पूर्व और पश्चात्। दोनों अवस्थाओं में अतिथि के आगमन के पूर्व आतिथेय या खाने का सामान तैयार करना या घर छोडकर चले जाने के बाद खाना तैयार करने के बराबर कहा है। तब गृस्थाश्रमी भूलोक द्युलोक पितृलोक तीनों लोकों का समन्वय कर आचरण करता है। न केवल तीनों लोकों की एकता वरन् तीनों प्रकार के देव पितृ मानव की एकता का बोध जाग्रत करता है।

भगवद उपासना के अनेक प्रकार है। ध्यान मननादि को साधन माना है।

दो प्रकार मुख्यत: भारतीय परस्परा में प्रमुखतया सामने आये हैं । निर्गुण और सगुण। निर्गुण ब्रह्म मुख्यतया सम्बन्ध को बताता हैं जो हजार प्रयत्न करने पर भी ध्यान का विषय नहीं हो सकता। हम उसके बारे में सोच नहीं सकते। अहं ब्रह्मास्मि या तत्त्वमसि ये वाक्य या महावाक्य व्यावहारिक अवस्था में निर्देशन या संकेत वाक्य है। यह संकेत के वाक्यार्थ या शब्दार्थ। तब वह अवस्था अनुभव की अवस्था है । शीतादि ज्ञान

की अवस्था नहीं। शायद उसे हम स्मृति या प्रत्यभिज्ञा कहें।

सगुण का ज्ञान, सम्बन्धों पर निर्भर है। यह ब्रह्म अनन्त कल्याणगुण गण धारी हैं । अनेक सम्बन्धो वाला हैं। पिता है। माता है। भाई है। सखा है। पुत्र है। प्रेमी है। (राधा का) भक्त और भगवान का सम्बन्ध है। शरणागत और प्रतिपालक का सम्बन्ध हैं। अन्य अनेक प्रकार के सम्बन्ध है सभी सम्बन्ध समान है। कोई भी श्रेष्ठ नहीं है।

वैष्णव सम्प्रदायों में लीन नहीं होता एकात्मभाव नहीं हैं । जीव ब्रह्मके साथ है। तब सारूप्य सामीप्य आदि सम्बन्ध से रहता है।

श्री वैष्णव, वैष्णव पुष्टिमार्गियों का अपना अपना सम्बन्ध प्रकार है। अन्य वैष्णव सम्प्रदाय भी सम्बन्धों के ऊपर ही जोर देते है जैसे दाता -ग्रहीता इत्यादि। अनुग्रही-अनुग्राहक शरणागत वत्सल-शरणागत आदि।

वैखानस सम्प्रदाय में सम्बन्धों की भी एकता नहीं है । वे भी अनेक है । हुत-होता जप-जपी अर्चा- भक्तदर्शनार्थी ध्यान ध्येय ध्याता जप - हुत अर्चना - ध्यान भक्त भगवान के बीच सम्बन्धों की परिकल्पना उसमें अर्चा-अर्चक सम्बन्ध प्रधान है ।

भागवत सम्प्रदाय अनेक नामों का एक समवेत नाम हैं । बलदेव उपाध्याय की पुस्तक भागवत सम्प्रदाय इस अर्थ में भागवत पदका प्रयोग हैं । पर प्राचीन काल में भी पाञ्चरात्र एकान्तिक सात्वत नारायणीय और वासुदेव सम्प्रदाय के लिए भागवत पद का प्रयोग प्राप्त हैं।

नूनमेकान्तधर्मोयं श्रेष्ठो नारायणप्रियः ।।४
परस्पराङ्गन्येतानि पाञ्चरात्रं च कथ्यते ।
एष एकान्तिनां धर्मो नारायणपरात्मकः ।।८२
एष ते कथितोधर्मः सात्वतः कुरूनन्दन ।।८४

महाभारत ३.४८.

यह सम्बन्ध हमारी साधना का विषय हैं । वैखानस के बारे में तनिक भी जानते हैं वे जानते हैं कि वैखानस मन्दिर और मूर्ति निर्माण को कितना महत्त्व देता हैं। इस महत्त्व का साक्षात् सम्बन्ध उस नाते पर है जिसका वैखानस मुख्यतया प्रतिपादन करते हैं।

बात इतनी सरल भी नहीं है । स्थापत्य और शिल्पशास्त्र में भक्ति और कला दोनों का मिश्रण हैं । मूर्ति में भक्त की आत्मा भी है और सौन्दर्य बोध भी। वैसे तो सिन्दूर पोतकर किसी भी टेढे मेढे पत्थर को देव या देवी बनाने की क्षमता भारतीयों में है। वह गजलक्ष्मी, सीतलामाई , आलयलक्ष्मी, दूध विनायक किसी भी नाम से पुकारी जा सकती है। श्रद्धा, स्वरूप की मोहताज नहीं पर सुन्दर कला तो हृदय को आवर्जित करने के लिए है क्यों कि धर्म विश्वास भी है। कर्मकाण्ड भी। अत: किस स्थिति में श्रद्धा है और अभिधेय है। उभयत्र धर्म समान है। कर्मकण्ड का स्वरूप भी संप्रदाय-संप्रदाय में भिन्न है। अत: कौनसा कर्मकाण्ड आत्म-परमात्म सम्बन्धों को स्थिर और प्रगाढ करने में सहायक होगा नहीं कह सकते, पर है वह भी धर्म ही। सम्बन्धों को स्थिर करने की दिशा भारत की मौलिक धार्मिक एकता एक और परिच्छेद है। अनेक जन जातियों का होना और उनका वर्गकुल तक परिमित विश्वास। और उसके अनेक विदेशियों का आक्रामक रूप से भारत में आना। सब का आचार और कर्मकाण्ड प्रथक् भारत ने सबको अपने में समेट लिया।

हिन्दु धर्म केथोलिक या इस्लाम या माध्व सम्प्रदाय के समान किसी सम्प्रदाय विशेष का नाम नहीं है पर भौगोलिक स्थान विशेष में प्रचलित सभी धर्मों का सामूहिक नाम है अत: सम्प्राप्त साम्प्रदायिक विशेषण नहीं है अत: सभी सम्प्रदायों का सम्मिलित नाम है। भारतीय भूमि पर बसनेवाले सभी जनों का परमात्म विषयक अनुसन्धान के प्रयत्न का नाम है। अत: सारे प्रयत्नों की एकता को भी हिन्दू पद बताता है। अनेक उपसन्धान, प्रयत्न, स्तर प्रयत्न, स्तर उपस्तर वैभिन्य उन सबकी एकता को बतानेवाला एक पद। अनुसन्धान प्रयत्न स्तर।

अनुभव तर्क से बढकर हैं। तर्क भावात्मक एकता को ग्रहण नहीं कर सकता। साम्प्रदायिक हठवाद श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा के लिए विश्वास चाहिए। श्रद्धा चाहिए परमात्मा की लोकोत्तरता में। क्या हम धार्मिक अनुभव को तर्क से प्रमाणित कर सकते हैं। श्रद्धा -धार्मिक अनुभूति है। सम्प्रदायों का मठ ज्येष्ठ की आज्ञाकारिता, धार्मिक-अनुभव नहीं है। धार्मिक अनुभव सत्य-जिज्ञासा और सत्यानुभव है। तर्क से अनुभव की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं की जा सकती। अननुभव क्या है। समग्रता किस को कहते हैं। गीता में कहा है - स्थितप्रज्ञस्य का भाषा स्थितप्रज्ञ की क्या भाषा है। परिभाषा के वजाय भाषा पदका प्रयोग है।

विश्वास और श्रद्धा के रूप हो सकते हैं। उन रूपों को हम पहचान सकते हैं --- जैसे साहित्य में अलंकार को धातुरूप में उत्तम पुरुष मध्यम पुरुष को गणितीय चिह्नों को परिमल को, सत्य ज्ञान अनन्त यही उसका त्रि अयामीय रूप है जैसे पालि में चतुर्थी षष्ठी का रूप एक ही जैसे दीखता है वास्तव में है अलग --

जहां पर पाश्चात्य धर्म और दर्शन स्थूल प्रवृत्ति तक आकर रुक जाते हैं वहीं भारतीय दर्शन और धर्म दोनों प्रकृति के नियमों से ऊपर उठकर जीव और प्रकृति दोनों का समन्वित प्रयत्न स्वाश्रय की ओर आगे बढना है अपनत्व खोकर उसमें मिल जाना हैं। तर्क और तर्क का रूप दोनों बुद्धि तक सीमित है। और चैतन्यांश प्राकृतिक नियमों से नियंत्रित नहीं है क्यों कि वृत्ति वहां नहीं है। वहां ज्ञान या ज्ञान का साधन नहीं है अनुभव है । मात्र अनुभव ज्ञेय ज्ञाता का अद्वय।

बाह्य संसार हमारे ऊपर प्रभाव डालता है। जैसे पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण आदि। यह प्रभाव सब पर समानरूप से नहीं पडता। प्रभाव को कम या अधिक कर सकते हैं। योगी आकाशगमन करते हैं। पक्षी भी आकाश में उडते हैं। अर्थात् गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के विकल्प की स्वतन्त्रता है। धूप शीत वर्षा इनका प्रभाव भी पडता है और पक्षी घोंसला बनाते हैं। जानवर दोपहर को पेड के नीचे जाकर विश्राम करते हैं! हाथी भैंस तो किसी पोखरे में घुस जाते हैं। पर कुछ मानव है जो इसकी कोई परवाह नहीं करते। वानप्रस्थों की वैखानसों की एक श्रेणी है। सामान्यतया उन्हें तितिक्षु कहते हैं। तितिक्षा बाह्य स्वातन्त्र्य है। हम बाहर से पडने वाली सर्दीगर्मी का कोई प्रतिकार नहीं करते। सहन कर लेते हैं। शीतताप नियन्त्रक मशीनों के प्रति दौडते नहीं हैं।

सहनशीलता ही तितिक्षा है। कष्टोंको ससन्तोष सहन करना। परवशता का सहन है तितिक्षा नहीं है। पति की मृत्यु, बाढ से घर का बह जाना, ये अवश्यम्भावी हैं उनका सहन करने के अलावा कोई उपायान्तर नहीं है। तांस्तितिक्षस्व भारत गीता २.१४ में भगवान का वचन है। न व्यथयन्त्येते इत्यादि। कैसे सहन किया जाय उनको आगमापायी समझो और सहन करो अपनी स्व की निष्क्रियता से। मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुख दुःखदाः स्व के ऊपर इस शीतोष्ण सुखदुःख का कोई प्रभाव नहीं पडता यह अनवबोध अज्ञान नहीं है या कर्मरहितता नहीं है वरन् स्व-भावकी अनुरूपता है।

तब आगमापायी और नित्य के बीच के अन्तर को जानने का प्रयास और इस प्रकार के अशाश्वत को सहन करने के लिए अपने आप को सन्नद्ध करना समदुःख

सुखंधीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते *गीता* २.१५ अर्थात् अमृतत्त्व के लिए तैयार हो जाना। शाश्वत जीवन के लिए सन्नद्ध। गीता २.१६ पर टीका में शंकर ने कहा है -- सर्वत्र-बुद्धि द्वयोपलब्धे: सद्बुद्धि: असद्बुद्धि: इति' तितिक्षा आत्म अनात्म या देह देही के विवेचन से प्रारम्भ होती है। अत: तितिक्षा शरीर का धर्म ही नहीं वरन् देही का एक गुण भी है। मधुसूदन सरस्वतीने यह श्लोक उद्धृत किया है गीता २.१५. पर

तथा चोक्तम्--

आत्मा कर्त्रादि रूपपश्येन्मा कांक्षीस्तर्हि मुक्तताम्।
न हि स्वभावो भावानां व्यावर्तेतौष्ण्यवद्रवेः।।

वैशेषिकमत के अनुसार --

बुद्धिसुखदु:खेच्छाद्वेष प्रयत्नधर्माधर्मभावनाख्य नव विशेषगुणवन्त: प्रतिदेहं भिन्ना एव नित्याविभवश्चात्मन: कठ २.२५ मृत्यर्यस्य उपसेचनम्। सुख से सुखी और दु:ख से दु:खी होने का संसार का नियम है। समसुख दु:ख कोई कैसे हो सकता है? संसार के उस आचार ने एक नियम ही बना डाला है। दु:ख न होते हुए भी स्वजन की मृत्यु पर लोग रोते हैं क्यों कि रोना एक आचार है। यह तो देहाभिमान का आचार है स्व का नहीं जैसे हमारे देश प्रेम का स्वभाव संस्कृति का गर्व हमको सही दिशा में सोचने नहीं देता वैसे ही बहिर्मुख संसार से समान रूप से तटस्थता की प्रतिक्रिया होने नहीं देती तितिक्षा ही मन और शरीर में एक भेद बुद्धि पैदा करती है। मन शरीर और आत्मा के बीच की कडी है। जहां जहां मन जाता है वहां वहां शरीर भी। इसीलिए मन की प्रति क्रिया शरीर में प्रकट होती है। वैसे सुख दु:ख का वास मन में ही है।

'मन एव मनुष्याणां कारणं सुखदु:खयोः।'

अत: यदि सुख दु:ख के ऊपर विजय प्राप्त करना है तो मन के ऊपर नियन्त्रण आवश्यक है। वृत्तिनिरोध के ऊपर इसीलिए बल दिया गया है।

भुक्ति - मुक्ति का समन्वित सिद्धान्त मानने वाले वैखानसों के लिए जीवन धर्म आत्म पीडन नहीं है। तितिक्षा हमको सानन्द अनुभव के साथ जीने की एक दिशा प्रदान करती है। यह दिशा इस विषय में शिक्षित करती है कि हम सभी अवस्थाओं में समान रूप से आनन्द का अनुभव कर सकें। मन के पूर्वाग्रह या संस्कारों से अप्रभावित रह कर अत: तितिक्षा वह संस्कार है जो हमें जीवन के नियम तो पालन करने देती है पर

परम्परा के नियमों को परम्परा या आचार की जडबद्धता से स्वतन्त्र रहना या अप्रभावित रहना सिखाती है।

'सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत्'

स्वत: प्रमाण हम किसी को नहीं मानते। प्रातिभ ज्ञान या ईश्वरीय अनुभव जब तक सत्यापित नहीं हो जाता है तब तक हम मानने को तैयार नहीं। क्या तर्क सत्यापित करने का एक मात्र उपाय है? क्या स्वत: सिद्ध और स्वत: - प्रमाणित में भेद है? मीमांसा में स्वत: प्रमाण और परत: प्रमाण पर विशद चर्चा है।

अन्य धर्मों में एक ही प्रयत्न हुआ है। वह प्रयत्न ही सत्य है। तदेतर प्रयत्न झूठे हैं। इतर प्रयत्नों से प्राप्त धार्मिक अनुभवों को मानने वाला व्यक्ति जीने का अधिकारी नहीं है क्यों कि वह हमारे द्वारा स्वीकृत श्रद्धा के स्वरूप को सम्बन्ध को अनुभव को विकृत कर सकता है। स्वीकार नहीं करता अत:, नास्तिक है, काफिर है। जीकर हमारे धार्मिक अनुभव को स्वीकार करना ही आस्तिकता है, अन्यथा नास्तिक। नास्तिकता की इस परिभाषा के कारण योरोप आदि देशों में जहाद ७०० वर्षों तक चला। मुसलमान और ईसाई दोनों इस आग्रह के पक्षपाती हैं कि हमारा मत मानना ही धर्म है। यही मानव नियति है। ईसा मसीह या पैगम्बर मोहम्मद साहब का अनुभव ही अनुभव है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति धार्मिक अनुभव, ईश्वर सन्निधान आत्म परमात्म मिलन निर्वाण न तो प्राप्त कर सकता है और न वह इसका अधिकारी है।

भारतीय परम्परा इसके विपरीत है। वैखानस के १०० ऋषियों ने मिलकर एक मन्त्रका दर्शन किया। मरीचि, भृगु, काश्यप, और अत्रि चारों ने प्रयत्न किये और अर्चा को भगवदनुभव का अव्यर्थ अनुभव माना। अर्चा विधान एक होने पर भी प्रक्रिया वैभिन्य को माना। चारों की अपनी अपनी विशेषता को सम्प्रदाय-स्वीकृत रूप से माना।

सारे मानव ईश्वर के बच्चे हैं। अत: सब धर्मों के बच्चों को ईश्वरीय प्रेम पाने का अधिकार है। सब धर्मों का ईश्वर परम पिता है। सब मानव उसके बच्चे हैं। अत: सब को प्यार करता है। यह ज्येष्ठ है, यह कनिष्ठ है ऐसा भेद नहीं है। यह काला है, यह गोरा हैं ऐसा भेद नहीं है। कोई पिता अपने बच्चे को इसलिए कम प्यार नहीं करता कि वह देह से पंगु है। इसी प्रकार भगवान के सारे बच्चों को अपने पिता के पास जाने का अधिकार है। बडा प्रौढ लडका तेजी से दौड सकता है तो छोटा सरक कर पिता के

पास जाता है कदाचित पंगु या अन्य प्रकार से गात्रासौख्य वाला पुत्र और भी विलम्ब से पहुंचे। पर पिता के लिए सब बच्चे हैं। उनको अपनी गति से भगवान के पास जाने का तथा भगवान का परिपूर्ण प्रेम पाने का संपूर्ण अधिकार है। वह चाहे ईसाई हो या हिन्दु।

भारत ने सत्यं ज्ञानं अनन्तं ऐसे तीन लक्षण माने हैं। ज्ञान, भगवान के लक्षणों में अन्यतम है। ज्ञान सांस्कृतिक धरोहर के रूप में उभर कर सामने आता है। और वर्ग विशेष को उनकी सत्ता की पहचान प्रदान करती है। शिया-अहमदिया, कैथोलिक-प्रोटे-स्टेन्ट, श्रीवैष्णव- वैखानस आदि एक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं। जो दूसरे से भिन्न है पर गलत नहीं। कूटस्थ सत्य की परिभाषा में शायद मतभेद हो। सत्य के अभिव्यक्तीकरण का माध्यम अनुभव है। पर यह अनुभव सब प्राप्त करें यह आवश्यक नहीं। हमारे पूज्य ऋषियों द्वारा प्राप्त अनुभव की सत्यता को हम स्वीकार करें उनकी बात मान कर। शब्द प्रमाण सर्वत्र प्रमाण है चाहे बाइबिल हो या कुरान। भारत में न केवल वेद प्रमाण है पर इस अर्थ में आगम, तन्त्र, पुराण, महाभारत और स्मृति ग्रन्थ भी वेदाविरुद्ध होने पर प्रमाण हैं। पर वेदों की प्रामाणिकता अधिक है क्यों कि वे साक्षात् अनुभव को मुखरित करते हैं।

ईश्वर के समीप पहुंचने की प्रक्रिया में बराबर विस्तार हो रहा है। महामनीषी पुरुष सदा पैदा होते किसी न किसी सारल्य को जन्मा कर प्रस्तुत विद्यमान प्रक्रिया में जोडने का प्रयत्न करते रहेंगे। कुछ सम्प्रदायों में ध्यान ही काफी है कुछ में योग। भागवत सम्प्रदायों में सेवा तत्त्व तत्तत् वर्गीय सम्प्रदाय और आचार संहिता धर्म के अभिव्यक्तीकरण का प्रधान स्रोत है। इस सम्प्रदाय को सत्यसमन्वित रखने का काम तर्क शास्त्र करते हैं। और सारे अनुभव का मूल वेद ही है। अत: अनुभव की समग्रता या सत्यता उस अनुभव को मानव को समझाने के लिए उपस्कर ग्रन्थ और अनुवचन की प्रामाणिकता के लिए तर्क प्रस्थान। यह हमारे धर्म दार्शनिक वाङ्मय का त्रिस्रोतस् है। त्रिवेणी है।

सत् का या सत्ता का वर्णन सजातीय या विजातीय रूप से किया जाता है। जैसे टमाटर को विलायती वैंगन कहते हैं यहां विलायत और टमाटर दोनों का बोध श्रोता और प्रयोक्ता को है अत: समझने में आसानी होती है। उपनिषदों में 'नेतिनेति' का प्रयोग हुआ है। अर्थात् यह नहीं है। अभाव बोध भारत की विशेषता है। पदार्थों की गणना में न्याय-वैशेषिक ने अभाव को भी एक (सत्) पदार्थ माना है। अद्वैत प्रक्रिया में भी अविद्या को

व्यावहारिक सत् माना है। अर्थात् अभाव की भी सत्ता है। परमसत् मौन व्याख्या प्रकटित है। अर्थात् स्वरूप, शब्द सामर्थ्य के परे है। केन.३.

इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति, और क्रिया शक्ति गुण कहे जाते हैं। ये ही परम पिता के गुण हैं। गुण का अर्थ परिच्छिन्न करना नहीं है। शक्ति वैभव ऐश्वर्य आदि पद भी प्रयोग में हैं। लक्षण पद का प्रयोग किया जाता है। शाखा चन्द्र का उपमान दिया जाता है शाखा चन्द्र का अर्थ है -- शाखाओं के बीच से दिखाई देने वाला चन्द्र -- क्यों कि चन्द्र एक ही है अत: अनेक चन्द्रों से परिच्छिन्न या व्यतिरिक्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

तब परमेश्वर के लक्षण दो प्रकार के हैं। मौन-शब्द से अवाच्य तथा नेति नेति पद व्याप्त यह नहीं है यह नहीं -- इदमित्थम् तया अवाच्य। यह, यह है, ऐसा प्रतिपाद्य। यह पांच नहीं है, चार नहीं है, तीन नहीं है, दो नहीं है, तब एक होगा ऐसा अनुमापक ज्ञान होता है साक्षात् नहीं। अनुमान स्मृति है या प्रातिपदिक या प्रत्यक्ष ज्ञान, यह ज्ञान की कोटि विशेष पर निर्भर करता है।

यह सत् है, चित् है, आनन्द है, यह निर्गुण है, यह सगुण है ये सब उपाधिभेद हो सकते हैं इनका परस्पर विरोध वर्णन-विषयक हो सकता है वस्तुनिष्ठ निराकरण नहीं है। कोई भी धर्म हो परमात्मा है। कैसा है, इस पर मतभेद हो सकता है पर परमात्मा की सत्ता में कोई मत भेद नहीं है। इसीलिए उपकथाओं द्वारा परमेश्वर को बताया जाता है। गंगा पूर्व वाहिनी है पर वाराणसी के पास उत्तर वाहिनी में दिक् विषयक मतविभेद हो सकता है गंगा के अस्तित्व विषयक मतभेद का कोई अवसर नहीं है । प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनंत हैं। उनका परस्पर सम्पर्क भी अनन्तविध है। सम्पर्क और सम्पर्क विधि दोनों की प्रणालियां समान हो ऐसा नहीं है। रातका विरोधी दिन, माता का विरोधी पिता या एक का विरोधी दो या घोडे का विरोधी गदहा यह कल्पना भारतीय नहीं है।

जीव और माया का या प्रकृति का सम्बन्ध सत् असत् के सम्बन्ध के समान है। सजातीय ही मिल सकते हैं। विजातीय नहीं। कुर्सी और दूध नहीं मिल सकते। दूध पानी से ही मिल सकता है। जीव ब्रह्म से मिल सकता प्रकृति से नहीं वैष्णव सम्प्रदायों में जीव ईश्वर को पृथक् तत्त्व ही मानते हैं। कोई भी पदार्थ अपने लिए है पर केलिए नहीं आत्मन: कामाय प्रियं भवति अत: हम ईश्वर को नहीं जानना चाहते पर हमारे ईश्वर के सम्बन्ध को जानना चाहते हैं। उनमें एक सत्य हो ऐसा नहीं है। सम्पूर्ण वृक्ष हरे पत्ते

और लाल फूलों सहित सत्य है।

सत्य की अनेक कोटियां हैं। हिन्दु मत समाज के उन्नत अनुन्नत सभी वर्गों के लिए एक ही ईश्वर हो ऐसा नहीं मानते। ब्राह्मण शैव और वैश्य वैष्णव हो सकते हैं। 'अन्त: शाक्ता: बहिश्शैवा: हो सकते हैं। यौवन में एक और वार्द्धक्य में अपर धर्मावलम्बी हो सकते हैं। पर एतावता श्रद्धा कालुष्य उत्पन्न नहीं होता।

हम एक नमस्कार १०८ नमस्कार ११०८ नमस्कार भी कर सकते हैं संख्यागत वैशिष्ट्य तत्त्वजिज्ञासा में उपकारक नहीं है।

धर्म किसी तत्त्व में या प्रणाली विशेष में आस्था का नाम नहीं है वह तो जीवन यापन का अनुभव है। यही तत्त्व का स्वरूप या स्व - अनुभव है। यह अनुभव ही मानव धर्म है। यह चिदनुभव कैसे प्राप्त होता है यह सम्प्रदाय विशेष पर निर्भर करता है। यह धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष की वैधता पर विश्वास का पर्याय नहीं है। चिदनुभव ही धर्म है।

चिद्विलास के सामने जब अहंकार (जीव) विगलित मूल हो जाता है तो रस्सी से बन्धे कूपस्थ घट के समान स्वयं ऊपर उठने लगता है। 'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया' नीचे जाने का जीव प्रयत्न नहीं करता - कर नहीं सकता क्यों कि संसार का भार लुप्त हो गया है सत्त्व गुण (रस्सी) का बन्धन दृढतर रूप से उसे बांधे है। राजस, तामस, वृत्तियों की ओर फिसलने नहीं देता। यही है आत्म-हा[illegible] निर्वाण - प्रपत्ति। स्व-का लोप। एक बार जब स्व का लोप हो गया तो फिर करने क[illegible] कुछ रह नहीं जाता।

धर्म नैतिक आचरण का स्रोत या मूल नहीं हैं केवल सहायक है। नैतिक मूल्य धर्म के बिना भी सम्भवत: रह सकते है। धर्म का नैतिक कर्तव्य या प्राप्तव्य वर्तमान मूल्यों प्राय: सामाजिक मूल्यों में समाज के मानव की आस्था दृढ करना है। नये मूल्यों की सृष्टि नहीं।

धर्म समाज में विश्वास की एकता को उद्बुद्ध करता है। नैतिक आचरण और मूल्यों की एकता को दृढमूल करता है।

ऋत

ऋत एक नियम है। सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सार्वभौम। सूर्योदय - सूर्यास्त, ऋतु - चक्र, कालचक्र, प्रलय-महाप्रलय धर्म-चक्र तथा नीति-धर्म नियमों की

विधि है। जगन्नियन्ता की आचार संहिता है। परवर्ती वाङ्मय में इसी को धर्म कहा है। अग्नि का धर्म दाहकत्व, नदियों का धर्म निम्नगामिता, फूलों का फलों में परिणमन, चुम्बकीय और वैद्युतीय आकर्षण विकर्षण। नवजात स्त्रीशिशु की काल क्रमेण गर्भधारणार्हता। यही रूप है। अंगों की पारस्परिकता है। शरीर का अंग बाहु है। प्रकृति का अंग पर्वत नदियां बन आदि है। पारस्परिकता नियम ही ऋत है। जब सरकस में शेर के ऊपर बकरी को बैठी दिखाया जाता है तो दर्शक आश्चर्य से स्तब्ध रह जाते हैं। बकरी सबने देखी है। शेर भी प्राय: सबने देखा होगा। पर शेर का बकरी को देखते ही खाने के लिए झपटने का स्वभाव, और बकरी का शेर को देखते ही दूर से ही भाग जाने का स्वभाव, इन दोनों पशुओं के मूलभूत प्राणपरिरक्षण स्वभाव को नियन्त्रित कर सकने की क्षमता (साधारणतया असम्भव समझे जानेवाली) जो अन्यत्र दुर्लभ है उस नियम की अव्यभिचरित नियामकता का लोप ही प्रदर्शनीयांश है।

जैसे अनेक प्रकार की घडियां कुछ भारतीय समय बतानेवाली कुछ अमेरीका का, कुछ वातावरण वर्षा-वात-आतप योरोप और भारत का, कुछ सोने का भाव बताने वाली ८०० और १८०० में १९३० में १९९९ में मानव घडी जिसको दिल्ली दूरदर्शन प्रतिदिन दिखाता है ये सब एकत्र रहें और केन्द्रीय शक्ति - बैटरी या बिजली से चले। ऋत भी एक ऐसा ही केन्द्रीय नियम है। मानव का पैदा होना, जवान होना, वृद्ध होना, और मर जाना; फूल का खिलना, फल में परिणत होना, बीज छोडना पुन: वृक्ष रूप [illegible]। यह सब जैवीय नियम है। इसी जैवीय नियम के साथ बंधा है पशु कृषि संसार। जंगल में कितने हिरन रहें और कितने शेर ये एक स्वजीविता के नियम पर आधारित है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शूद्र तथा उनकी पारस्परिकता एक सामाजिक नियम से निगडित है। शूद्र को संस्कार के लिए ब्राह्मण की आवश्यकता है ब्राह्मण को प्रजा रक्षण के लिए क्षत्रिय की, चोरी न करना पर स्त्री लोभ न करना ये नैतिक हैं। इसी प्रकार गणितीय नियम, भौतिक, रासायनिक, और यान्त्रिक आदि नियम अपने अपने क्षेत्र में काम करते हैं पर सारे नियम एक सर्वातिशायी नियम के अधीन काम करते हैं। यह सर्वातिशायी नियम ही ऋत नियम है। सब नियमों का नियम।

जैसे अन्य विषयों की जिज्ञासा के लिए अनेक शास्त्र है पर जिन विषयों की जिज्ञासा कोई शास्त्र नहीं करता उन विषयों की जिज्ञासा धर्म विज्ञान करता है। सृष्टि का क्या प्रयोजन है? ईश्वर का यदि कोई स्वार्थ नहीं है तो क्यों पैदा करता है? यदि पैदा

ही करता है तो सबको समान क्यों नहीं पैदा करता? पाप पुण्य क्या है इत्यादि। मानव की भौतिक नियति एवं आध्यात्मिक नियति क्या है? क्या अर्थ शास्त्र किसी नैतिक नियामक तत्त्व का पालन करता है? क्या व्यक्ति एंव समाज के मूल्यों में, मूल्यों के साधन के उपायों में ईश्वरीय अनुबन्ध उपस्थित है क्या हमारी प्रेरणायें मानव समाज की संस्कृति से अनुप्राणित या नियमित हैं। व्यक्ति स्वातन्त्रय का क्या अर्थ है? व्यक्ति अपने प्राण क्यों निछावर्स्कर देतै हैं? क्या कोई दैवीय या सामाजिक या सांस्कृतिक पराधीनता या परवशता हैं।

ऋत एक ऐसा नियम है जो कभी बाधित नहीं होता, अनुल्लंघ्य है। समस्त ब्रह्माण्ड को नियम निगडित रखता है। वह तराजू है, जो मूल्यों का मूल्य परख कर उसका समतोलन कर व्यवस्था बैठाता है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प या स्वर्णपूर्ण भूगर्भ, पर्वत खण्ड स्खलन या मरुभूमि की पुरोगामिता, ये सब उस समतोलन प्रक्रिया के समता समन्वय स्थिति--- स्थापन नियम के अंग प्रत्यंग है। एक रूप-वपुता की कल्पना, जैसे नर्तकी हस्तांगुलियों की मुद्राओं से एक रूप की कल्पना प्रस्तुत करती है एक मान परिणति की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। यह रूपरेखा न केवल प्रकृति में, वरन् मानव, मानवसमाज को भी उपस्थित प्रस्तुत और विधिप्रयुक्त करती है। नैतिक आचार, जैसे वृक्ष के सींचने पर फल तो मिलता ही है पर साथ में छाया गन्धादि भी बिना किसी प्रयत्न के प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार धर्म का आचरण करने वालों के लिए अर्थ अनायास ही प्राप्त होते हैं। आपस्तम्ब धर्म सूत्र में लिखा भी है, उसी की टीका करते हुए हरदत्त ने यह श्लोक पढा है --

यथेक्षुहेतोः सलिलं प्रसेचयन् तृणानि वल्लीरपि च प्रसिञ्चति।
तथा नरो धर्मपथेन वर्तयन् यशश्च कामांश्च वसूनि चाश्नुते ।।

जैसे ईख की पुष्टि के लिए किसान जल सींचता है। उसी जल से पास में स्थित तृण लता भी सिञ्चित हो जाती है। उसी प्रकार यदि मानव धर्म पथ पर आरूढ रहे तो यश: काम और धन सब प्राप्त करता है।

अत: ईश्वर की प्रीति के लिए फलाभिसन्धि के बिना धर्म का आचरण करना चाहिए।

धर्म सम्यक् आचार है। ऋत विश्व का निजी क्रम है। ऋत पद सत्य-(वस्तुगत) या वस्तुनिष्ठ धर्म का अर्थ है वस्तु के विकास का क्रम। जो सत्य के विपरीत है वही

अधर्म है।

मानव के कुछ मूल भूत संस्कार हैं। कुछ कमजोरियां भी। मानव काम के वशी भूत है। काम माने कोई भी इच्छा। इच्छाके प्रवृद्ध होने पर तदनुकूल व्यापार करता है। उसे पाने की चेष्टा करता है। मानव की इच्छा का स्वरूप बडा ही जटिल होता है। मानों वह अपनी पत्नीको देखना चाहता है- पूजा में साथ देने के लिए, साथ में बैठकर चाय पीने केलिए, सिनेमा जाने के लिए उस समय की कैसी वेशभूषा हो और तदनुकूल यदि पत्नी परिधान गृहण न करे तो पारस्परिक कलह पैदा हो सकते हैं उस कलह का सामाजिक रूप, धार्मिक रूप, पारिवारिक रूप आदि अनेक वर्ग हो सकते हैं तब छोटी सी इच्छा भी अनेक वर्गों में फैली हैं निश्चय ही मानव इतना सरल नहीं है। स्त्री को किस समय के लिए किस अवसर के लिए स्त्री परिधान चाहिए यह जानकारी अवश्य होनी चाहिए क्या वस्त्र और तदनुकूल वस्त्रधारण भी करना चाहिए नहीं तो पति क्रोधित होकर मार भी सकता है। रेणुका की कथा से सब परिचित हैं। पति पितागृह के बीच युद्ध होने पर दो वर्गों में युद्ध। दीर्घदीर्घतर व्यापार अत: मानव की इच्छा सरल नहीं है। मानव की इच्छा पूर्ति और भी जटिल है अत: एक पुरुषार्थ में चारों पुरुषार्थ व्याप्त रहते हैं कम वेसी रूप से। व्यक्ति समाज के बीच भी सीमा रेखा नहीं खीचीं जा करने परिस्थितियों के परवश होने के कारण प्रतिक्रिया सर्वत्र समान नहीं हो सकती। और इच्छा एकीकृत हो या एक ही या अनेक एक से एक सम्बद्ध हो तब तो परिस्थिति और भी जटिल हो सकती है। आश्रमोचित व्यवहार समाज संगठन के लिए अन्य आवश्यक उपचार ऋत के अनुवर्तन से ही संभव है। वात्सल्य छलकता माता का रूप परिवार परवरिश में चुचका पुरुष, उस सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति हैं जो समाज के प्रकृति के अनुरूप है। प्रकृति सर्जनशीलता के सहकार में अपने सर्वसम्मोहक यौवन को निछावरकर देनेवाली माता ही सौन्दर्य-लावण्य राशि है जैसे फूल मुरझाकर, रंग से बदरंग होकर बीज को उत्पन्न करता है, पुन: प्ररोह-परिणति के लिए, यही सृष्टि का नियम है, ऋत की परिभाषा में नियन्त्रित। यही वह शक्ति है जिससे 'बालस्तावत् क्रीडासक्त: तरुणस्तावत् तरुणीरक्त: वृद्धस्तावत् चिन्ताग्रस्त:' बच्चा ही क्यों खेलता है, तरुण ही क्यों जोरु का गुलाम बनता है, सारी दुनिया की चिन्ता वृद्ध को ही क्यों खाये जाती है अनादिकाल से और सार्वदेशिक रूप से यही ऋत की नियामकता है। पृथ्वी और आकाश यदि अपने अपने स्थान पर हैं तो ऋत के ही कारण। विष्णु ऋत के ही शिशु हैं ऋ १.१५६.३ सारा संसार ऋत में ही

निगडित है। इसी से नियन्त्रित पथका अनुसरण करता है। ऋ.४.२३.९ तपका बल कम नहीं है । तपस्या के द्वारा ही ऋत और सत्य की उत्पत्ति हुई है।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोध्यजायत् ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोर्णवः ऋ.१.१९०.१. 'सत्यमेव जयते' या 'धर्मो रक्षति रक्षितः' यहां धर्म पद का अर्थ ऋत पद का पर्याय वाची है। सचाई छिप नहीं सकती बनावट के वसूलों से । खुशबू आ नहीं सकती कागज के फूलों से। 'अन्त में सत्य की विजय होगी यह धारणा समाज में इतनी दृढतया स्थिर मूल हो गयी है कि अन्तिम विजय सत्य की होगी इस आशा से व्यक्ति अनेक दुःख झेलता है। 'उसके यहां देर है अन्धेर नहीं' यह उक्ति आपामर की जुबान पर सुन सकते हैं। ऋत का नियम अवश्यम्भाविता को अपने गर्भ में छिपाये है। नियम में किसी प्रकार को ढील की गुञ्जाइश नहीं है। हां, विलम्ब हो सकता है। ऋत के नियम में इस विश्वास ने समाज में एक दृढता, स्थिरता उत्पन्न की जिससे नैतिक आचरण के प्रति लोग हतोत्साह या शिथिलोत्साह न हों।

झूठ को अनृत कहते हैं। अन्+ऋत, जो ऋत नहीं है। सत्य जो सत्य का सत्य है ,वस्तु का सत्य है मूल्यका सत्य है, वस्तुस्थिति का सत्य है। उसके पूर्व मूल्य का सत्य और वस्तु का सत्य ऐसा भेद प्रदर्शित किया गया है। साडी खरीदते समय पूछते हैं -रंग पक्का है न? सूत और बनावट की सत्यता शायद चक्षु गोचर है पर रूप के बाद गुण अर्थात् रंग की सचाई -पक्का होना वस्त्रपर स्थिर रहना- सत्य रूप से स्थिर रहना। रंग का पक्का होना ही उसका सत्य है कच्चा होना नहीं जैसे मानव का नैतिक आचरण, अनैतिक होना नहीं। देवताओं की प्रार्थना करो, उनके सान्निध्य में रहो। उस सर्व व्यापक के सामने अनैतिक आचरग की हिम्मत ही न होगी। पुण्य क्या है - देवत्व की ओर प्रस्थान के प्रति किया गया प्रयत्न है। उसका अननुरोध पाप। देव सब कुछ देखते हैं। पापपुण्य दूर-समीप - ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः गीता १५.७.

समाज सेवाः

समाजसेवा का नारा आजकल जोरों पर है। अपने लिए जीना भी तो क्या जीना। परजनहिताय परजनसुखाय या बहुजनसुखाय बहुजनहिताय। आश्रम व्यवस्था ने कर्म को पहले ही दो वर्गों में बांट दिया है। द्वितीय आश्रम में क्रियमाण कर्म अर्थकारी कर्म हैं और चतुर्थ आश्रम में क्रियमाणकर्म समाज सेवा प्रयुक्त कर्म हैं। ये कर्म अर्थ

सम्पादन के लिए नहीं हैं। पर आजकल रिटायर्ड लाईफ या सांसारिक बन्धनों से अवकाश प्राप्त जीवन की कल्पना ही लुप्त हो रही है और चतुर्थ आश्रम की कल्पना तो कलिवर्ज्य हो गयी है । अत: वह राजतन्त्र जो समाज के हर व्यक्ति के नैतिक आचरण के लिए उत्तरदायी है उस समाज के ज्येष्ठतम नेता नाना प्रकार के पाप पङ्क से लिप्त उत्कोच आदि के अभियोग में कारागार यात्रा कर चुके हैं। 'सम्भावितस्य चाकीर्ति: मरणादतिरिच्यते' यह गीता वचन उन्होने कभी नहीं सुना या समझा उल्टे कृष्ण जन्मस्थान कह कर जेल यात्रा को प्रशंसार्ह बना दिया है। ईशोपनिषत् का यह वचन --

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।१।।
कुर्वन्निवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यर्थतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।२।।

कर्म भूतकाल में किये गये कर्मों के प्रति आत्मसमर्पण है, पर आगामी कर्मों के लिए एक दृढ आशा है अधिक ज्योतिर्मय बनाने की व्यक्ति को अपने आप के प्रति आधिक उत्तरदायी बनाने का एक प्रयास है मानव सामाजिक प्राणि हैं। समाज के नियमों से बन्धा है। पर स्वतन्त्र व्यक्ति है। अपना निस्श्रेयस् खोजना उसका प्रथम कर्त्तव्य है पर समाज की अभ्युन्नति से निरपेक्ष नहीं रहा जा सकता। आश्रमव्यवस्था ने मानवकी आकांक्षाओं को परखा। बच्चा क्या चाहता है। जवान क्या चाहता है उसका अध्ययनकर पुरुषार्थ की दृढ परिकल्पना प्रस्तुत की। उसकी भौतिक आवश्यकताओं को मानसिक आवश्यकताओं और आत्मिक आवश्यकताओं का ध्यान रखकर एक आचार संहिता बनाई।

सामाजिक परिप्राप्तियों में एवं व्यक्तिगत आध्यात्मिक लक्ष्य में कोई वैरुध्य नहीं हैं। व्यक्ति दोनों लक्ष्यों को साध सकता है। सम्पूर्ण विकास उसका आदर्श है -- शरीर, मन, तथा आत्मा। निश्चय ही आत्मा शरीर मन की अपेक्षा श्रेष्ठ है अत: आत्मा के विकास के लिए व्यक्ति कार्यरत रहता हैं।

कर्म वह वैज्ञानिक सिद्धान्त है जिसने उस अवधारणा का मूलोच्छद किया कि हम यज्ञ से कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं। पुरुष-प्रयत्न के प्रति उत्साह-शैथिल्य को विगलित कर दिया। पुरुष भाग्य के पराधीन है, यह विश्वास खोखला है, उसको प्रमाणित कर दिया। बृहदारण्यक ३.८.९ ने स्पष्ट ही कहा है कि सूर्य चन्द्र प्रतिदिन प्रति निशा गगनपंथ पर संचार करते है। बिना किसी क्रम भंग के तो अपना इच्छा से नहीं

पर एक नियम से निगडित होकर।

कर्म न केवल भौतिक जगत् का नियामक है वरन् नैतिक जगत् का भी। जन्म-मृत्यु का नियम जैव नियम है। दया करुणा दान अपरिग्रह सामाजिक नियम है। गणितीय नियम रासायनिक नियम राजनीति के नियम अर्थ नीति के नियम ये सब नियम अपने अपने क्षेत्र में कारगर है'। पर धार्मिक नियम इन सब का समन्वित नियम है। धर्म माने क्रूरपशु का हिस्रंत्व स्वभाव, जल का शैत्य। श्वेताश्वतर ने ६.११ तो परमेश्वर को कर्माध्यक्ष कहा हैं। सारे कर्मजाल का समन्वितरूप न्याय का सत्य-स्वरूप। इस दृष्टि से मानव का कोई भी प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता। छोटा बडा सब का प्रतिफल अब या बाद में अवश्य प्राप्त होता है। यह कर्मका लेखा हमारे साथ बंधा है हमारा पूर्व इतिहास है। उसको समय न तो धूमिल कर सकता है और न मृत्यु परिमार्जित। कर्म फल तो 'अनुभवादेव क्षीयते' है। उपायान्तर नहीं हैं। क्यों कि जैसे श्वास -प्रश्वास की प्रक्रिया हमारे साथ बंधी हैं। वैसे ही कर्मफल और उसका प्रतिफल कतृत्व भोक्तृत्व हमारे साथ बंधे हैं। कोई बाह्य शक्ति हमसे डण्डे के जोर पर कोई कर्म करावे यह सम्भव नहीं हम स्वयं प्रवृत्त होते हैं उस काम को करने के लिए चाहे भगवान के दर्शन का काम हो या दारु की बोतल पीने का यह काम में प्रवृत्त होने की प्रेरणा ही कर्म का मूल है। स भूमिं वृत्वात्यतिष्ठत दशाङ्गुलम् -- हमारे ज्ञान के आयामों से अज्ञेय दशाङ्गुल और सारे विश्व को व्याप कर रहता हैं। अमरकोश ने आराद्दूरसंमीपयो: अर्थात् आरात् पद दूर और समीप दोनों अर्थो में परस्पर विरोधी अर्थो में प्रयुक्त है। जैसे राजा की रानियां होने के सम्बन्ध से सौत परस्पर जान की दुश्मन घृणा से परिपूर्ण पर रानी होने की समानधर्मिता एक पति के होने के कारण सब में एक कालावच्छेन उपस्थित हैं। पद्मम्भव भी अग्नि का पर्याय है।

पूर्णता अवयवों का संघात मात्र नहीं है। अवयवी का अस्तित्व अवयवों के योग से अधिक है। लोक में भी साईकिल के काल क्रमेण बदले जाने पर भी मडगार्ड है हेण्डिल चेन टायर ट्यूब यह वही पुरानी साइकिल है जिसको ३० वर्ष पूर्व खरीदा था। उस में क्या रहा जिसको हम वही कहते हैं। यह मूर्ति चाहे लोहरावीर की है या वीरभद्र की मुरकन की हो या भैरव की यह अनन्तता उसमें भरी है। चाहे जिस फाटक से जाइये सारे फाटक राजप्रासाद के ही हैं। कृष्ण ने अर्जुन को और यशोदा को दोनों को विश्वरूप दिखाया। दोनों ने सौम्य मूर्ति होने की प्रार्थन की। विश्व में व्याप्त अनन्त भेदों को ग्रहण करने का सामर्थ्य मानव मास्तिष्क में नही हैं।

जब भूकम्प आता है, बाढ आती है तो दस मील, बीस मील या सौ मील में विनाश लीला देखी जा सकती है पर अनन्तकाल और अनन्त देश विस्तार तक नहीं क्यों कि अनन्तशक्तिमान की शक्ति किसी एक द्वार से नहीं निकल सकती। अणुशक्ति का स्फोट भी देश काल परिछिन्न हो गया। तब भाग भाग ही है पूर्ण पूर्ण ही है। भाग चाहे जितना विशाल हो वह भाग ही रहेगा अपूर्ण ही रहेगा। पूर्ण नहीं हो सकता।

बृहं -विस्तरार्थक धातु से ब्रह्म रूप निष्पन्न है। यह लिंग निर्विशेष हैं। न स्त्री है न पुं। इस अर्थ में पेड पौधे जानवार मनुष्य अपनी अपनी स्वजातीय सृष्टि प्रक्रिया में संलग्न है। पर सृष्टि में जीवराशिमात्र नहीं है। सोना चान्दी लोहापीतल विद्युतीय चुम्बकीय भू आकर्षण विकर्षण जैसी अनेक शक्तियां भी काम करती हैं। क्यों गंगा प्रवाह गंगोंत्री से गंगा सागर ही जाता है तद्विपरीत दिशा में क्यों नहीं स्त्री ही क्यों गर्भधारण करती है। पुरुष क्यों नहीं लज्जा का भाव गर्भधारणार्हता पर ही क्यों विकसित होता है पहले या बाद में क्यो नहीं। क्या वंश विज्ञान कोई विज्ञान है तब कुत्ते की घोडे की 'रेस के घोडे की विशिष' रूप से गाय की क्यों नस्ल देखते हैं। सारे मानव किस अर्थ में समान हैं।

सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि।
भूतेषु च सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः।। विष्णुपुराण ६.५.८०

वासुदेव नाम इसलिए पडा क्यों कि उसमें समस्त जीवराशि बसती है। तैत्तरीय आरण्यक में वासुदेव और नारायणका अभेद स्पष्ट ही है। नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णु: प्रचोदयात्।

पुरुषसूक्त भारतीय सृष्टि प्रक्रिया को बताता है। समाज की संरचना को बताता है। पांव में अगर कांटा चुभ जाय तो सारा शरीर कष्ट अनुभव करता है। यदि व्यक्ति के कष्ट पाने पर समाज को दु:ख न होता तो हिन्दु मुस्लिम दंगे न होते। श्वेत स्याम दंगे न होते। सामाजिक' धर्मिक और सम्भवत: राजनीतिक युद्ध भी न होते।

पुरुष १००० सिर वाला है। सहस्राक्ष है सहस्र पाद है। उसने भूमि को लपेट लिया अर्थात् सारी सृष्टि में व्याप्त हो गया ऋ.१०.९० है। सहस्रशीर्ष का अर्थ १,००० जातिवाला ऐसा करना होगा।

बृहदारण्यक १.४.३. में पुन: सृष्टिप्रक्रिया है। ब्रह्म ने अपने ही आप को

फोडकर दो भागों में बांट लिया। एक भाग पति दूसरा भाग पत्नी उसने उसके साथ सम्भोग किया और उससे पुरुष पैदा हुआ। और इसी क्रमसे गाय, घोडा, बकरी, और अन्ततो गत्वा चींटी भी।

ऋग्वेद में मनुष्यमात्र की उत्पत्ति कही है पर बृहदारण्यक में समग्र सृष्टि को ही ब्रह्म का अंश बताया है। सारे जीवधारी मनुष्यसे चींटी तक।

- गीता में १८.६१ 'ईश्वर:' सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति सब जीवोंके हृदय में ईश्वर ही रहता है। 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:' १५.७.

किसी भी प्रकार की वर्ण विविक्षा के बिना सब शरीरों में ब्रह्म रहता है। वही सुनता है, देखता है। सब कुछ वही अनुभव करता है।

शंकर दिग्विजय में काशी में शंकराचार्य की मात खाने की स्थिति सर्वविदित है। अस्पृश्य की हेयता शास्त्रानुमोदित नहीं।

माध्यंदिन श्रुति - स वा एष ब्रह्मनिष्ठ इंद शरीरं मर्त्यमतिसृज्य ब्रह्माभिसम्पद्य ब्रह्मणा पश्यति ब्रह्मणा श्रुणोति ब्रह्मणैवेदं सर्वमनुभवति।

उपनिषद् तो डंके की चोटपर कहते हैं - तत्त्वमसि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म तब वर्ण व्यवस्था में अस्पृश्यता खोजना - शशभृंग खोजने के समान है।

पुरोणों में भक्ति प्रचार ने वर्ण व्यवस्था का समूल उच्छेद ही कर दिया। जो वर्ग - धार्मिक या राजनैतिक हिन्दु वर्णव्यवस्था में अपने आप को स्थिर स्थान पर स्थापित न कर सके वे वर्ग के वर्ग मुसलमान होगये जिससे वर्ण व्यवस्था में ऊंच नीच का भाव सदा के लिए लुप्त हो गया। रैदास, पीपा या कबीर के पांव पडने से किसी ब्राह्मणने कभी परहेज नहीं की गया।

हां, राजनीति में, भाई-भतीजावाद को लेकर वर्ण व्यवस्था को दूषित करना एक हथकण्डा ही है।* (*नम्बूद्रीपाद (सब से अधिक रूढवादी ब्राह्मण कुल के सदस्य) साम्यवादी दल के प्रधान नेता हैं और अस्पृश्य अम्बेदकर की मूर्तियां देशभर में रामकृष्ण की मूर्तियों के समान पायी जाती हैं और संसदभवन में अम्बेदकर की मूर्ति के सामने हिन्दु सम्प्रदाय के नेताओं (कट्टर) का सर झुकाते झुकाते माथा घिस गया। जगज्जीवनराम सब से अधिक काल तक केन्द्रीय मन्त्री रहे। अन्य लोग आत्मनियन्त्रित रहे पर वे गद्दी लोभ संवरण न कर सके।)

वैसे भी किसी जवान के लिए एक प्रौढा स्त्री अस्पृश्या ही है। राजनैतिक नेता

अस्पृश्य और अदृश्य भी अस्पृश्य एक लिंगगत अस्पृश्यता है तो दूसरी वृत्तिगत। जननाशौच और मरणाशौच अशुचिता अस्पृश्यता को जन्म देती है मासिक धर्म में स्त्री अस्पृश्या ही रहती है। आजकल जाति राष्ट्रगत हो गयी है। इराक ईरान् की राष्ट्रसंघवालों ने जाति बहिष्कृत कर दिया है। किसी अन्य देश के साथ व्यापारिक सम्बन्ध नहीं रख सकते। दक्षिण अफ्रीका तो बहुत दिन तक सामाजिक रूप से बहिष्कृत रहा। क्रिकेट या फुटबाल के मेच तक में उनको न बुलाया जाता। यदि कहीं वे आ जाते तो उस स्थान पर उस सम्मेलन में अनेक राष्ट्र नहीं जाते।

उत्तरदायी बनाने का एक प्रयास है क्रियायोग। वैखानस सम्प्रदाय की मानव जाति को दी गयी एक भेंट।

समन्वय

भारत का समन्वयवादी दृष्टिकोण ही असल भारतीयता है। समाज या आज जिसको हम राजनीति की भाषा में राष्ट्र कहते हैं अनेक समुदायों, धार्मिक विचारों के वर्गों के विचारों से मिलकर समन्वित होकर बना है। इतिहास काल में भारत पर अनेक आक्रमण हुए। इस युग में अनेक विजेता, शरणार्थी यहां आये। यहीं बस गये। बर्बर हूण, नृशंस सीथियायी, अदम्य यूनानी और क्रूर मंगोलियायी आये और यहीं रच बस गये। यहीं के हो गये। प्रपत्ति एवं शरणागति को मूल मन्त्र मानने वाले वैष्णवों ने इन आततायी खड्गधारियों को भक्तिमार्ग में दीक्षित किया। ये विदेशी भी अपने आपको भागवत या परम भागवत कहलाने के लिए प्रयत्न करने लगे और गर्व का कारण समझने लगे। *राजनैतिक उथल पुथल के बीच सामाजिक सौहार्द पनपा। (*देवदेवसे वासुदेवसे गरुडध्वजे अयम् करिते इह हेलियोदोरेण भगवतेन दियस पुत्रेण तखसिलकेन योनदूतेन आगतेन महाराज . . . . . . इत्यादि वेसनगर शिलालेख (भिलसा मध्यप्रदेश) ई.पू.द्वितीय शती.)

यद्यपि आलय* (*जहां मन की वृत्तियां परमात्मा में लीन हो जाय वह स्थान आलय है। बौद्ध धर्म में आलय विज्ञान अत्यन्त प्रसिद्ध है।) के गर्भगृह देव दर्शन सर्व जन सुलभ नहीं था तथापि शोभायात्राओं में, उत्सवों में भगवान के दिव्य मंगल विग्रह का दर्शन सब लोग कर सकते थे। भगवान अपने स्वजनों का कष्ट सहन नहीं कर सकते।* (*ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन: गीता.१५.७. एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी। कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरि:।। वि.पु.१.१९.५.) अत: अवतार लेते हैं। और इसी तर्क

के अनुसार जो लोग मन्दिर में नहीं जा सकते - वर्णगत असौविध्य के कारण, देहपंगुत्व, वार्द्धक्यादि के कारण भगवान स्वयं उन स्वजनों को दर्शन देकर, सेवा का अवसर प्रदान कर संसार सागर से उबारने का उपाय प्रस्तुत करते हैं। मानव के प्रति प्रतिसंञ्चार का निदर्शन प्रस्तुत करते हैं।

सांसारिक दु:ख की जिहासा सब वर्णों में सब योनियों में समान है। निन्दित चाण्डालादि योनियों में जो उत्पन्न हैं, उनके लिए भी अहिंसा धर्मादि का ज्ञानपूर्वक आचरण उपदिष्ट है। वेद से ही ज्ञान प्राप्त हो यह जरूरी नहीं है।* (*अन्त्यजा अपि ये भक्ता नाम ज्ञानाधिकारिण:। स्त्री शूद्र ब्रह्मबन्धूनां तत्र ज्ञानाधिकारता। ज्ञानाधिकार सबका है स्त्री शूद्र ब्रह्मबन्धु। वेद न सही पर ज्ञान प्राप्त करने के मौलिक अधिकार से वञ्चित नहीं।)

परम्परागत रूप से प्राप्त ज्ञान चाहे इतिहास पुराण से प्राप्त हो चाहे स्मृति से वेदाधार होने के कारण स्मृतिपुराणेतिहास द्वारा प्राप्त ज्ञान भी परम्परागत वैदिक ज्ञान ही है। अत: सामान्यवत् ही है।* (*आनिन्द्ययोन्यधिक्रयते पारम्पर्यात्सामान्यवत् --- शाण्डिल्य भक्ति सूत्र. २.२३.) इस पर स्वप्नेश्वर की टीका--

(निन्दित चाण्डालादियोनिपर्यन्तं भक्तावधिक्रियते, संसारदु:खजिहासया अविशेषात्। अथ वेदाध्ययनाधिकारात् कथमत्रैवर्णिकानां स इति चेत्, तत्राह -- पारम्पर्यादिति। चोदना लक्षणोर्थो धर्म: १.१.३. मी.सू. 'शास्त्रयोनित्वतात्' इति न्यायाद लौकिकोर्थ: श्रुत्यैकसमधिगम्य इत्यत्र न विप्रतिपद्यामहे, किन्तु स्त्रीशूद्रादीनामितिहास-पुराणादिद्वारा चाण्डालादीनां च स्मृत्याचारवदुपदेशपारम्पर्येण ज्ञानमपि श्रुतिमूलमेव भवति। यथा तेषां सामान्याहिंसाधर्मादिज्ञानम्। अन्यथा तदसिद्धिप्रसङ्गात्।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितो हि सः
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।। गीता.९.३०-३१.)

समाज ने कुछ रुकावटें पैदा कीं पर धर्म के क्षेत्र में, समानता के प्रबल विश्वास ने सबको समान रूप से देखने की, सबको समान अवसर देने की नीति ने आपामर भगवद्दर्शन सुलभ किया। तीर्थयात्रा, हरद्वार, काशी और प्रयाग की भागीरथी सुरसरित् समस्तजनों को समान रूप से मुक्ति पथ पर आरूढ करती है। शंकराचार्य ने गंगा की स्तुति में कहा है* (*'त्वदा मज्जनात्सज्जनोदुर्जनो वा विमानैस्समान: समानैर्हिमानै:' - गंगाष्टक

-३.) समान मान से, समान विमान पर, चाहे सज्जन हो या दुर्जन हो, मोक्ष पथ गामी होता है। भगवदनुग्रह परकर्मानुकांक्षी नहीं होता। कर्म या विधि पारवश्य से भगवान प्रभावित नहीं होते। अहैतुकी कृपा सब के ऊपर बरसाते हैं। श्वपाक हो या चाण्डाल, परमविद्वान् या निरक्षर चन्द्रमा की चांदनी के समान सम रूप से सब के ऊपर कृपा करते हैं। समस्त जनों को जनों को यम-नियमादि द्वारा भगवदनुग्रह की पात्रता सम्पन्न करने के काम में वैखानस सम्प्रदाय का अवदान कम नहीं है। भागवत का यह श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है :--

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रया शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः

२.४.१८.

ये सब जातियां - किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन खस इनके अतिरिक्त भी जो यदुनाथ की शरण में जाते हैं वे सब शुद्ध हो जाते हैं।

शुद्ध होने का क्या अर्थ है ? जो अशुद्ध हो, जननाशौच या मरणाशौच से वे प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो जाते हैं। अशौच का अर्थ है वेदाध्ययन के अधिकार से वञ्चित होना। नित्य - नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठान के अधिकार च्युत हो जाते हैं। वर्ण संकर आदि घोर अपराध से पतित यावज्जीवन के लिए पतित हो जाते हैं। उनकी शुद्धि नहीं है।

आर्य समाज ने शुद्धि आन्दोलन चलाया था। पञ्जाब में कुछ सफलता भी मिली पर बाद में यह उत्साह शिथिल हो गया था। राजनीतिक कारणों से या सामाजिक कारणों से विशेष पुरोगति न हुई।

ध्यान रखने की बात है जहां हिन्दू सामाजिक व्यवस्था दृढ थी वहां प्रांयः १,००० साल का इस्लाम शासन हिन्दू समाज को इस्लाम मत में दीक्षित न कर सका यद्यपि स्पेन से लगाकर इण्डोनेशिया तक सर्वत्र उनको भारी सफलता मिली। भारत में भी जहां सामाजिक संगठन शिथिल था-- जैसे पूर्व वङ्ग काश्मीर या उत्तर पश्चिम प्रान्त। पर खान अब्दुल गप्फार खां १९४७ में भारत में मिलने को तैयार थे तब वैष्णव सम्प्रदाय की आस्था वर्ण - व्यवस्था पर शिथिल थी। महाभारत में श्रावयेत् चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः।

नारदीये--

ये च धर्मपरा राजन् देवद्विजपरायणाः।
तेषां मध्ये हरे एते पठनीयं द्विजातिभिः।।

भागवते --

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
कर्मश्रेयसि शूद्राणां श्रेय एव भवेत् इह।।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्।

भविष्ये--

चतुर्णामपि वर्णानां यानि प्रोक्तानि श्रेयसे
धर्मशास्त्राणि राजेन्द्र शृणु तानि एतानि नृपोत्तम
निषेवतस्तु शूद्राणां पावनानि मनीषिण:
अष्टादशपुराणानि चरितं राघवस्य च

वायवीये

एतानि नृपशार्दूल धर्मशास्त्राणि पण्डितै:
साधारणानि प्रोक्तानि वर्णानां श्रेयसे सदा
चतुर्णामिह राजेन्द्र श्रोतुमर्हसि सुव्रत

स्कान्दे सूत्संहितायाम् --

अन्ये च ब्राह्मणा विष्णो: राजानश्च तथैव च
वैश्याश्च तारतम्येन ज्ञानाभ्यासेधिकारिण:
द्विजस्त्रीणामपिश्रौतज्ञानाभ्यासेधिकारिता
अपि शूद्रस्य सुश्रूषा तथा स्त्रीणां महामुने
सिद्धान्तश्रवणं प्रोक्तं पुराणश्रवणं बुधै:।।

रामायणे

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्
क्षत्रिया भूमिपतयो त्वमीयात्
वणिक्जना पुण्यफलमीयात्
शृण्वनं श्चशूद्रोपि महत्वमीयात्।

भविष्ये--

देवान्वा पुरतो कृत्वा ब्राह्मणैश्च नृपोत्तम
श्रोतव्यमेव शूद्रेण तथान्यैश्च द्विजातिभि:

पुराण का श्रवण भी वेद के श्रवण के समान ही पुण्यप्रद है क्यों कि पुराण वेद के अन्तर्भुक्त है। वार्तिक में--

तानेव वैदिकान् मन्त्रान् भारतादिनिवेशितान्।
विहाय मन्त्रनियमं लोकबुद्ध्या प्रयुज्यते ।।

अदृष्ट का हेतु वेदमन्त्र ही हो सकता है तब स्तोत्रादि पारायण की पुण्यजनकता मूलत: उनके वेद मूलक होने से ही है। शंख ने विद्यास्थानों को गिनाया है। उन विद्या स्थानों पर ब्राह्मण का अधिकार है। क्या वृत्ति अभिप्रेत है इस स्थल पर? पर ज्ञानोपदेश विप्र ही कर सकता है। यह श्रवण तक ही सीमित है। इसका निष्कर्ष यह निकला कि स्त्री शूद्र को वेद श्रवण (विप्रद्वारा) अधिकार है पर अध्ययन का नहीं।

क्या पुराण - वाचन स्वयं शूद्र कर सकता है? या पुराण - वाचन भी विप्र द्वारा ही कराकर सुन सकता है। हां स्मार्त कर्मों के लिए पौराणिक मन्त्रों का प्रयोग शूद्रों के लिए किया जा सकता है।

गीता में 'स्त्रिया वैश्यास्तथाशूद्रा: येऽपि स्यु: पापयोनय:' लिखा है। उनको मन्त्रों के सुनने से सम्भवत: अर्थ ज्ञान हो पर अदृष्ट की प्राप्ति नहीं होती है। आनन्द-वर्धन आदि उस गीता अध्याय को अर्थवाद मानते हैं और इस प्रकार के किसी अधिकार की कल्पना नहीं करते।

भास्कर भाष्य में भी--

पतितव्याधिशूद्राणां यावद्वचनमिष्यते
अधिकारो न सर्वस्मिन् न मुचषण्डकस्य च
स्मार्त च वित् यजादि शूद्र कुर्याद्यथाश्रुतम्
द्विजोत्तम वाप्येव कथञ्चित् द्विजसंगमात् ।

विदुर वचन--

शूद्रया नावहं जातो नातोन्यदुक्तुमुत्सहे ।

ब्राह्मण जन्म से अधिक विद्वान् होता है या उसको क्रान्त दृष्टा होने का जन्म

जात अधिकार है ऐसा मनु ने कभी नहीं कहा। हां उसको उपदेश देते हैं ब्रह्मविद्या का। वेद के अपौरुषेय ज्ञान का। उस ज्ञान के मनन अध्ययन निदिध्यासन से अपने ज्ञान को प्रखर करता है। उस ज्ञान से निष्णात पारगामी हो सकता है एतावता प्रबुद्ध ज्ञान क्रिया प्रापञ्चिक व्यवहार में भी सहायक हो सकती है। मीमांसा और शङ्कराद्वैत मूल ऋषियों को ही क्रान्तदृष्टा कहते है। लोकानुग्रह कामना से ही दूसरे लोगों को उपदेश दिया। पर भक्ति सम्प्रदाय में यह सर्वज्ञता ईश्वर को छोडकर अन्य को नहीं है।

'जात पांत पूछे नहि कोई हरि को भजे सो हरि का होई।' बार बार रटने पर भी आचार्य महन्त प्रधान प्रथम पुरुष आदि भेद से वैष्णवों में मानव मानव में दैवीय ज्ञान में ईश्वरीय सान्निध्य में तरतम कोटियां हैं। सैद्धान्तिक भेद न होने पर भी व्यवहार में भेद है। यह भेद सान्निध्य का है।

क्या दिव्य प्रबन्धों के रचयिता आल्वारों को ज्ञान अधिक था या दैवी सान्निध्य। इनकी महत्ता कहां है? संसार से पराङ्गमुख होने में अर्थ काम के मर्यादित निषेवण में, धर्मविरुद्ध काम (आकांक्षामात्र) के सम्पादन में जब ये वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध करते हैं तो वर्ण व्यवस्था द्वारा मानित पुरुषार्थ - मोक्ष को - कैसे मानते हैं? वासनाक्षय, जन्म मरण का चक्र लोप मोक्ष है?

तब चतुर्थाश्रम निष्प्रयोजन है। तृतीयाश्रम में ही समाज से दूर हुए बिना ही, वर्णव्यवस्था का पालन करते हुए धर्मार्थकाम त्रिवर्ग मात्र का साधन करते हुए भी मुमुक्षु हुआ जा सकता है। मोक्ष का अर्थ नीर क्षीर वत् एकीभाव नहीं वरन् सजातीय होना जैसे देसी आम और आल्फेंसो आम। सजातीय तारतम्य विषयान्तर है।

यहां पर योग की पात्रता है। यमनियमासन का वर्ण व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है। योग केवल त्रैवर्णिकों का ही है ऐसा किसी ने कभी नहीं कहा और न माना ही तब द्विजेतर द्वारा भी स्वप्रयत्न से मोक्ष पाया जा सकता है। योग रासायनिक प्रक्रिया भी कहता है (साधन पाद में)।

ब्रह्मविद्या का ज्ञान ग्रहण ब्राह्मण वटु के लिए इतना सहज और स्वाभाविक है जितना मछली के लिए पानी में तैरना। यह ऐसा ही है जैसे कुत्ते के लिए २,००० से अधिक गन्धों को ग्रहण करना है। पर यह कोई अचरज या अनहोनी बात नहीं है। और लोग भी प्राप्त कर सकते हैं। बुद्ध को, क्षत्रिय को, ऐसा प्रातिभ ज्ञान प्राप्त हुआ ऐसा संसार के दो तिहाई लोग मानते हैं। गोरखनाथ, रामानन्द, कबीर, नानक इन सब को

प्राप्त है इनके मतानुयायी मानते हैं। फिर हठयोग ने तो अष्टसिद्धियों का द्वार ही खोल दिया। अणिमा महिमा यौगिक सिद्धियों की प्रदर्शिनी ने लोगों को चमत्कृत कर दिया यह मानने को मजबूर कर दिया कि साधारण लोग भी असाधरण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। चित्तवृत्ति निरोध केवल ब्राह्मण वटु द्वारा प्राप्त नहीं है। ज्ञान की कोई जात नहीं होती।

वर्ण व्यवस्था मानव मात्र के लिए है। पुरुष या पौरुषेय समाज स्थित व्यक्तियों का ही सन्दर्भ व्यक्त कर सकता है। वेद तो अपौरुषेय है। यहां सांख्य पुरुष की बात नहीं करते नहीं वैष्णव पुरुष की बात जहां सारे जीव स्त्री रूप है और ईश्वर ही पुरुष हैं। गीता १३.१९ में भी पुरुष अनादि कहा गया है। प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादीं उभावपि।

वैखानस सम्प्रदाय भारत के पुरातनतम सम्प्रदयों में अन्यतम है। देह को कष्ट देना क्यों कि इसी ने आत्मा को जकड रखा हैं, सांसारिक शृंखला में निगडित किया है। यह सम्प्रदाय बहुत पुराना है। गौतम के बुद्ध बनने के पूर्व सिद्धार्थ ने इसी यान का अवलम्बन किया। जैन सम्प्रदाय का तो यह मुख्य परिपालनीयांश है । मध्यकालीन अनेक धार्मिक सम्प्रदायों में देह को कष्ट देना एक धार्मिक आचरण माना गया है। इनके लिए निधर्नता या मितधनता एक गुण है।

यह निर्धनता क्या है? भौतिक या उपभोग्य वस्तुओं का अभाव मात्र नहीं है। इसको हम अपना स्वातन्त्र्य कहेंगे। यह स्वतन्त्र्य दो प्रकार का है। शारीरिक और मानसिक। शारीरिक स्वातन्त्र्य बाह्य संसार की वस्तुओं के प्रभाव से अप्रभावित होने की स्वतन्त्रता हैं। पञ्चाग्नि तप प्रसिद्ध ही है । धूप में छतरी लेकर न जाना। जाडे के दिनों में भी ठण्डे पानी से स्नान करना। जठेकी भरी दोपहरी में भी धूप में पद्मासन जमाये बैठे रहना। नमक न खाना। रुचि के सारे साधन प्राप्त होने पर भी जिह्वा लौल्य को दबा कर रखना। उसी प्रकार पांचों इन्द्रियों के प्रसार को इन्द्रियार्थों से दूर रखना। इन वस्तुओं का पाने का या उपभोग का सामर्थ्य होते हुए भी दूर रहना। चक्षुओं का स्त्री मात्रको देखने की सहज प्रवृत्ति है ऐसी प्रवृत्ति पर विजय पाना । मधुमेह आदि बीमारियों के रोगग्रस्त भी मधुमिष्टान्न की रसलिप्सा से अपने आपको न रोक पाना आदि आदि। तितिक्षा वह स्वतन्त्रता है जिससे हम बाह्य वस्तुओं के प्रभाव से अपने आपको अछूता रखते हैं सर्दी धूप-ताप हमारे ऊपर पडनेवाले प्रभाव को बदार्शत करने की स्वतन्त्रता हैं। बाह्यपदार्थ भावना परिवर्जन।

आन्तरिक, स्वन्त्रता अलग प्रकार की है। गीता में ६.२. मानव को संन्यस्त

संकल्प और असंन्यस्त संकल्प इस प्रकार से दो वर्गों में बांटा है। चित्त नैश्चय यानि मन का विस्तार संकल्प विकल्प। किसी कर्म को करने के पूर्व या कर्म करने के पश्चात् कर्म फल का ही जो विचार करता रहता हैं वह असंन्यस्त संकल्प है। मनमोदक शब्द से सभी परिचित है। यह पदार्थगत आकांक्षा का मानसिक विस्तार हैं। क्यों कि मन के ही चाहने पर कर्मेन्द्रियां तत्तत्कर्म में प्रवृत्त होती हैं। अवस्थाओं से मुक्ति ही अनासक्ति है। मानसिक प्रवृत्ति से निवृत्त करना। कठिनतम चिन्ता - चिन्ता से मुक्त होने की चिन्ता ही हैं। मन के इस विस्तार से संकल्प विकल्प की है।

-वैखानस समाज अपने आप में पूर्ण समाज है। ये विष्णुके उपासक हैं । अन्य सम्प्रदायों से इनका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। भोजन के विषय में भी ये पङ्क्ति पावन हैं। अन्य किसी को अपने मत में दीक्षित नहीं करते। अपने आपको श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के आदि प्रतिष्ठापक रामानुजाचार्य से अनेक शताब्दी पूर्व का कहते हैं। अत: वैष्णव हैं श्रीवैष्णव नहीं है। हां ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं।

स्कन्द पुराणस्थित वेङ्कटाचल माहात्म्य में एक सुमति नामक ब्राह्मण की कथा दी है। कथा पापविनाश तीर्थ के माहात्म्य के बारे में हैं । यह तीर्थ वेङ्कटाचल पर्वत श्रेणी पर स्थित है। तिरुमल पर्वत पर यह ब्राह्मण, शूद्रों को संस्कृत पढाता था। साफ है, शूद्रों को मुक्ति का मार्ग भी बताया जाता होगा।*

(* तत्राश्रमे पुरा कश्चिच्छूद्रो दृढमतिर्द्विज: ।
साहसी ब्राह्मणाम्याशमाजगाम मुदान्वित: ।। १९.२९.
सुमतिर्नामविप्रोयं मतिं शूद्राय वै ददौ । १९.७३ स्कन्द वेङ्कटाचलमाहत्म्य)

सुमति पद से समझ लेना चाहिए कि शूद्रों को या निन्द्य योनियों को भी जो मोक्ष ज्ञान प्रदान करता है वह ही सु + मति हैं।

बौद्ध दर्शन में संघं शरणं गच्छामि अत्यन्त महत्त्व पूर्ण मन्त्र हैं । पर संघ या सामूहिक स्वरूप बुरी तरह असफल हो गया। अत: ही वैखानस सम्प्रदाय के एक केन्द्रीय संगठन या दर्शन और धर्म की निरीक्षा और पुनर्निरीक्षा के लिए एक केन्द्रीय स्थान की मठ या प्रधान कार्यालय की आवश्यकता महसूस नहीं की। हिन्दू धर्म में भी कोई केन्द्रीय संगठन नहीं हैं ।

प्रत्येक वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति विशेष का अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व होता है।

ईश्वरीय अनुभव सभी व्यक्तियों और वर्गों का समान है। यह गूंगे का गुड है। आनन्दमय हैं । बार बार प्रयत्न करने योग्य है। दिव्य अनुभव के क्षणों में व्यक्ति मत-आग्रह से ऊपर उठ जाता है और सजातीय एक ही प्रकार के आनन्द का अनुभव करता हैं। यह दिव्य आनन्द मन्दिर में प्राप्त हुआ हो या चर्च में पर दिव्य दृष्टि जाग्रत होने पर मत शेष कुछ नहीं रहता।

यह दिव्य-आनन्द बौद्धिक स्तर पर भाषा द्वारा अभिधेय नहीं है। मुद्रा और प्रतीक इसीलिए व्यवहृत होते हैं । गंगा जल जल-पात्र में ग्रहण करने पर भी जल पवित्र ही रहता है क्यों कि वह गांगेय जल है। उसकी गांगेयता में सन्देह नहीं। हां कितना भी जल उसमें से गंगा में से निकालो वह निस्सीम ही रहेगा। उसकी शुद्धता में किसी प्रकार की कमी नहीं आवेगी। ठीक इसी प्रकार दिव्य आनन्द मतान्तर के व्यक्तियों को समान ही है।

नैतिक आचरण के लिए दार्शनिक ज्ञान की पूर्णता आवश्यकता नहीं । धर्म दर्शन का सम्बन्ध कोई अविनाभावसम्बन्ध नहीं हैं। बिना पुस्तकीय तत्त्व ज्ञान के भी धार्मिक जीवन बिताया जा सकता है। विशेषत: मत-पुष्ट तत्त्व ज्ञान के बिना। हिन्दू धर्म तो वैचारिक शुद्धता नहीं धार्मिक आचरण की शुद्धता पर विशेष बल देते हैं। चलित वृत्त नहीं होना चाहिए यथा मलिनवस्त्रैर्यत्रतत्रोपविश्यते तथा चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति।

आवश्यकता तत्त्वज्ञान की नहीं सही सम्यक् आचरण की है । विश्वास और कर्मकाण्ड विशेष महत्त्व के नहीं है। अत: हिन्दू धर्म में अनेक सम्प्रदाय अपना अपना कर्मकाण्ड का निर्वाह करते हैं। ये कर्मकाण्ड और अन्य प्रक्रियायें भगवान के प्रति आसक्ति को दृढ करती है और भगवान को - एकं सद्विप्रा: वदन्ति।

पुरुषार्थों की अनेकविधता में भारत विश्वास करता है अर्थ और काम भी पुरुषार्थ है। मानव के प्राप्तव्य लक्ष्य संसार को शशशृगं के समान झूठ कभी नहीं कहा। मोक्षस्थिति तक संसार ध्रुव हैं। सांसारिक कार्य कलाप अत: नैतिक हैं। इतिहास इसका साक्षी है। भूल कोई अपराध या पाप नहीं हैं। मतिमान्द्य व्यक्ति का दोष नहीं हैं। मानसिकतया रुग्णजन भी समाज के अंग है ।

आत्मा - 'अच्छेद्योयं आदाह्योयं' अनश्वर और दृढ है। अत: पाप के पञ्जे से अपने आपको छुडाने में सक्षम हैं। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य: बल हीन का अर्थ

प्रयत्न - सातत्य समझना चाहिए। इसीलिए हिन्दू नित्याचार पर बल देता है। जन्म जन्मान्तर पर बल देता है। स्पष्ट है, बौद्धिक विकास की स्थिति सब की पृथक् होगी और व्यक्ति अपनी ही गति से आगे बढेगा श्रद्धा या विश्वास की एकतानता से नहीं।

वैखानस के लक्षण :

तपो वैखानसं कर्म* (*हरिभद्र सूरिकृत: ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चय कारिका.११७.) वैखानसों का कर्म तपस्या करना है। विखनसं ब्रह्माणं वेत्ति तपसा। वानप्रस्थ:।

मनु ६.२१ ने भी वैखानस के लक्षण दिए है।

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा।

कालपक्वैः स्वयं शीर्णैः वैखानसमते स्थितः।।

काल पक्व एवं स्वयं शीर्ण पुष्पमूल या फलों से जो जीवन यापन करते हैं वे वैखानस सम्प्रदाय में स्थित हैं। इस पर प्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने-- 'वैखानसो वानप्रस्थ: तद्धर्मप्रतिपादकशास्त्र-दर्शने स्थित:' अर्थात् वैखानस धर्म प्रतिपादक कोई शास्त्रदर्शन है उसके अनुसार जीवनयापन करनेवाले' -- ऐसा अर्थ किया है।

जयाख्य संहिता में वैखानस के लक्षण दिये हैं*

(*योऽपरिग्रहवान् विप्र: पूजयेत्परमेश्वरम्

याचितेन द्विजेन्द्राच्च प्राप्तेनायाचितेन तु

धनेन क्षत्रियाद्वैश्यात् कुटुम्बमपि पालयन्

विद्धि वैखानस: सोपि जटी छत्री सिताम्बर: जयाख्यसंहिता २३.१३-१४.)

यह किसी से कुछ मांगता नहीं है, लेता भी नहीं है, अपरिग्रहवान् है। जटा धारण करनेवाला छत्रधारी श्वेतवस्त्रधारी केवल द्विजों से ही दान लेनेवाला अयाचित जो प्राप्त हो उससे सन्तुष्ट रहनेवाला और उसी से कुटुम्ब का भरण पोषण करनेवाला वैखानस है। श्वेतवस्त्रधारी कहकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय या चतुर्थाश्रम प्रयुक्त काषाय वस्त्र धारण नहीं करते। 'कुटुम्बमपि पालयन्', कहकर द्वितीय या तृतीय आश्रम का उल्लेख जैसा प्रमुखतया अभीष्ट अर्थ प्रतिपादित किया है।

वैखानस पद सामान्य वानप्रस्थ के अर्थ में बहुल प्रयोग में है पर वैखानस सम्प्रदाय के अर्थ में भी है।

वैखानस धर्ममाह -- वैखानसो वने मूल फलाशी तप: शील:।* (*गौतम

धर्मसूत्र प्रथम प्रश्न, अध्याय तीन सूत्र २६ पृष्ठ.७१.) वैखानस शब्द: कृतनिर्वचन:। सोरण्ये वसन्मूलफलाद्यशनशील: स्यात्। न संस्कृतमन्नमश्नीयादित्यर्थ:। तप: शील: शरीरपरिपोषणशील:। वैखानस जंगल में रहता है। वृक्षों के मूल फल आदि खाता है। किसी भी पक्वान्न अर्थात् अग्नि या अन्य प्रकार से संस्कृत अन्न का भक्षण नहीं करता। तप करना ही मुख्य प्रयोजन है अत: शरीर धारण के लिए न्यूनतम जितना आवश्यक हो उतनी ही भक्षण करता है। फलमूल भी पेट भर नहीं खाता।* (*आप.२.९.२१.१८)

वैखानस गांव में नहीं जाता है। एतावता शहर ही में रहता है ऐसा नहीं है। वह किसी भी प्रयोजन के लिए जन जहां रहते हैं वहां नहीं जाता। और मूल फल भी जो खाता है वह गांव में पके नहीं खाता जंगल में पके होने पर ही खाता है। जान जाने पर भी जन पद की ओर मुंह नहीं करता। जब जन पद में जाना - जान बचाने के लिए भिक्षा मांगने या मर जाने के विकल्प का सामना करना पडता हो तो भी गांव में नहीं जाता पर - वैष्कमप्युप युज्जीत।।३१।। वैष्क पद का अर्थ है सिंह या चीते द्वारा पशु को मार कर खा लेने के बाद बचा हुआ इस मृत पशु का मांस* (*विष्कं व्याघ्रादिभिर्हतस्य भक्षस्य पशोर्मांसं वैष्कम्। तदुपयुञ्जीत। अपि शब्दो गर्हायाम्। ततश्चापद्येवोपयुञ्जीत। सूत्र ३१ पर टीका.)

ग्रामं च न प्रविशेत् ३३. जन सम्पर्क शून्यता प्रधान रूप से कही गयी है। गांव में प्रवेश न करे।

वैखानस वर्णाश्रमधर्म मानते है।

ब्रह्मचारी चार प्रकार के है-- गायत्र, ब्राह्म, प्राजापत्य एवं नैष्ठिक। गृहस्थ चार प्रकार--

वार्ता वृत्ति, शालीन वृत्ति, यायावर, घोराचार।

वार्तावृत्ति कृषि गोरक्षा वाणिज्य से अपना जीवनयापन करता है।

शालीन वृत्ति नियम से रहता है। पाकयज्ञ करता है पक्ष में दर्शपूर्णमास करता है। चार चार महीनों पर चातुर्मास्य यज्ञ करता है छह महीनों पर पशुबन्ध यज्ञ करता है और प्रतिसाल सोमयाग करता है।

यायावर सोम यज्ञ करता कराता है। अध्ययन करता और कराता है। दान देता है और लेता है। षट् कर्म निरत रहता है। नित्य अग्नि परिचरण करता है। अतिथि अभ्यागतों का अन्न से उपचार करता है।

घोराचार नियम से रहता है। यजन करता है कराता नहीं, अध्ययन करता है कराता नहीं, दान देता है स्वीकार नहीं करता। उञ्छ वृत्ति से रहता है। नारायण परायण हो सायं प्रात: अग्निहोत्र का सम्पादन करता है और मार्गशीर्ष तथा ज्येष्ठ मास में असिधारा व्रत का निर्वाह करता है तथा वनौषधियों से अग्नि परिचरण करता है।

वैखानस :

नख स्वयं सजीव से निर्जीव की उत्पत्ति के निदर्शन हैं और उनसे पैदा हुए वैखानस। निर्जीव में क्या पैदा करने की शक्ति है? नृसिंह अवतार में हिरण्यकश्यप की आतंडी नखों से पेट फाड कर बाहर निकाल दी थी। नखो में इतना बल है।

वैखानस को वानप्रस्थ का पर्याय कहा गया है। तितिक्षु और तपस्वी।

आरण्यक, वैदिक वाङ्मय का एक महत्त्वपूर्ण अंश है। यह ब्राह्मण और उपनिषदों के बीच की कडी है। यहां ब्राह्मण का यज्ञ-प्रक्रिया को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानना तथा उपनिषत् पद का अर्थ मननादि उपायों से ज्ञानोदय है। ये दो प्रक्रियायें अपने आप में दो दृष्टिकोणों को समेटे हैं। इनके बीच की कडी है-- आरण्यक। अर्थात् इन दोनों दृष्टि बिन्दुओं को लेकर चलनेवाला दृष्टिकोण। जहां यज्ञ भी नहीं छूटा और ज्ञान भी। तब क्या यह गृहस्थाश्रम और सन्यासाश्रम के बीच की कडी है? उपनिषत् केवल ध्यान या मनन का प्रतिपादक शास्त्र है सन्यास धर्म का मुख्य कर्तव्य।

सन्यास और गृहस्थ को दो आदर्शों में विभक्त किया है। समाज पराङ्मुख और समाज की मर्यादा में स्थित भूख मिटाने और आत्मा की शान्ति दो पृथक् शान्तियां है। 'अद्धे, बाबा नास्ति तैलं न च लवणमपि' पाकाकुलगृहयुवतियों का वाक्प्रहार सहन सीमा को प्रतिदिन लांघने लगा। यज्ञ की पशुबलि -- अहिंसा की नूतन परिभाषा (यज्ञ में पशु को मारना हिंसा नहीं है) विगलितदन्त होने के कारण मांस न खाने की विवशता, सब ने उपायान्तर खोजने को विवश किया। मरीचि ने एक ही झटके में जहां मांस पद का प्रयोग है वहां पिष्ट या आटा कर दिया। पर एतावन्मात्र से यज्ञ के प्रति वैराग्य या आत्मिशान्ति की ओर किये गये प्रतिप्रयत्न की घनता कम न हुई। यज्ञ की परम्परा को तोडना तो सम्भव न हुआ पर आत्मशान्ति के अन्य प्रयोग खोजे गये। आत्माहुति -- पूजा अर्चना द्वारा आत्माग्नि में जुहोति -- भोगेश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्। व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते गी. २.४४,४२-४३

त्रैगुण्यविषया वेदा २.४५ गीता में वेदवादरत लोगों की निन्दा है।

इतिहास :

वैखानस सम्प्रदाय उस युग में प्रवर्तित हुआ होगा जब यज्ञ प्रक्रिया ह्रासोन्मुख हो गयी होगी। यज्ञ प्रक्रिया के ह्रासोन्मुख होने पर भी एक विश्वास जन साधारण के मन में दृढमूल हो गया कि हम प्रकृति से जो चाहें वह यज्ञ द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ करके पुत्र अश्वमेध यज्ञ करके सार्वभौम राज्य। आहुतियों द्वारा आज्य एवं अन्नादि के अग्नि प्रक्षेप से इन्द्र वरुणादि देवता प्रसन्न होते हैं। यह स्मरणीय है कि दान पद हवि के अर्थ में भी प्रयुक्त है। अर्थात् यज्ञेश्वरका माध्यम अन्य देवताओं को प्रसन्न करने के लिए एक सत्य एवं दृढ साधन बना। इसकी कल्पना पर ईश्वर को यदि प्रसन्न कर लिया जाय तो हमको प्राकृतिक नियमों से छुट्टी या कर्म बन्ध से छुटकारा प्राप्त हो सकता है।

कर्म या प्रारब्ध का सिद्धान्त आज भी भारतीय मानस पटल पर दृढ आसन जमाये बैठा है। वेङ्कट नाम ही कर्म नाश का पर्याय है। बनारस के पास कर्मनासा एक नदी है जिसमें स्नान करने से कर्म धुल जाते हैं। सुल्तानपुर के पास भी एक धौतपापा नदी है।

कर्म फल अवश्य भोक्तव्य है निष्काम कर्म का तब क्या अर्थ है? कार्य-कारण नियम प्रकृति नियम है। जब कारण है तो कार्य भी है। तब निष्काम कर्म का अर्थ क्या है? जो कर्म का फल है वह मुझे न मिले, ईश्वर को मिले। अवश्य अनुभोक्तव्य् कर्मफल को क्या ईश्वर भोगता है? या फिर नष्ट कर देता है। शायद कर्मफल को नष्ट करने का सिद्धान्त हिन्दू शास्त्रों ने नहीं माना है। कर्म ही न करो जिससे फल ही पैदा न हो। शराब पीने के बाद नशा न चढे ऐसा नहीं हो सकता। शराब के नशे से यदि दूर रहना है तो शराब से ही दूर रहो। पीने के बाद नशा न हो ऐसा नहीं हो सकता, क्यों कि ये कारण - कार्य भाव से बन्धे हैं। यहां परिणाम बाद या अन्य किसी बाद के पचडे में पडने का उद्देश्य नहीं हैं पर --

केचित्त्वन्नामभजनात्काश्यां तारोपदेशतः
अन्ये तु सांख्ययोगेन भक्तियोगेन चापरे। मुक्तिकोपनिषद् १६.

सांख्ययोग और भक्ति सम्प्रदाय दोनों भिन्न भिन्न प्रस्थान हैं। उपासकों की उपासना पूर्ति होने पर भी प्रारब्ध कर्मों का क्षय होने तक मोक्ष नहीं है अथवा प्रारब्ध कर्म क्षय ही मोक्ष है। वही वेङ्कट है।

निरीश्वरवादी सांख्य और योग प्रक्रिया में यही अन्तर है जीवन्मुक्त सांख्य के अनुसार जीवित रहता है पर कर्म फल के अनुभव के समाप्त होने तक।

वैखानस सम्प्रदाय में अहैतुकी भगवत्कृपा का स्थान है पर तेनगलै सम्प्रदाय की अहेतुकी कृपा से कुछ भिन्न है।

जैस वेद से अन्य अनेक मतों का प्रादुर्भाव हुआ है वैसे ही विखना ऋषि ने भी अर्चा का अपना एक अलग सम्प्रदाय चलाया। वेद में अर्चा के बीज न होते तो ऐसे सम्प्रदाय की कल्पना ही सम्भव न थी।

यज्ञ पद्धति से ऊबकर ही किसी नयी प्रक्रिया की खोज की गयी होगी। श्रौतस्मार्त विहित नित्य कर्मों के पश्चात् विष्ण्वाराधन का अन्य उपाय अर्चा ही है। वैसे योग भी पढा है - योग में आलम्बन के बिना ध्यान सम्भव नहीं है ऐसा समझकर-

तत्र चित्तं समावेष्टुं न शक्नोति भवान् यदि।
तदभ्यासपरः तस्मिन् कुरु योगं दिवानिशम्।।

तत्राप्यसामर्थ्यवतः क्रियायोगो महात्मनः ।
ब्रह्मणा यः समाख्यातः तत्परः सततं भव।।

करोषि यानि कर्माणि देवदेवे जगत्पतौ।
समर्पय भद्रं ते ततः कर्म प्रहास्यसि।।

प्रधानं कारणं योगो विमुक्तेर्दितिजेश्वर।
क्रियायोगश्च योगस्य परमं तस्य साधनम्।। तात्पर्य चन्द्रिका।

तुलना कीजिये गीता १२.९-११.

क्रियायोग योग का ही प्रधान साधन है और योग विमुक्ति का अनन्य साधन।

याः क्रियाः सम्प्रयुक्ताः स्युरेकान्तगतबुद्धिभिः।
ताः सर्वा शिरसा देवः प्रतिगृह्णाति वै स्वयं।। महाभारत।

वैखानस प्रशंसा :

अश्वत्थः कपिला गावः तुलसी विखनो द्विजः।
हरिप्रियास्तु चत्वारः तेषु वैखानसो वरः।। भृग क्रियाधिकार २६.३७.

अश्वत्थ कपिला गाय तुलसी और वैखानस ये चोरों हरि के प्रिय हैं पर सबसे अधिक प्रिय तो वैखानस द्विज ही है।

वैखानसश्च तुलसी तथा विष्णुपदी सरित्।
प्रकृत्या पावना प्रोक्ताः नान्यतो हन्ति संस्कृतिम्।।

भृगुक्रियाधिकार. २६,५६-५७.

वैखानस तुलसी और गंगा ये स्वभाव से ही पवित्र है किसी प्रकारान्तर से उनके संस्कार की आवश्यकता नहीं हैं।

ये वैखानससूत्रेण संस्कृतास्तु द्विजातयः।
ते विष्णुसदृशाः ज्ञेयास्सर्वेषामुत्तमोत्तमाः।।

मरीचि विमानार्चनकल्प. उपोद्घात पृ. ५ पर उद्धृत.

जिन द्विजोंने वैखानस सूत्र के माध्यम से संस्कार किया है या करवाया है वे सब विष्णु के समान हैं और सब मानवों मे उत्तमोत्तम हैं।

कोई भी सम्प्रदाय जब पनपता है तो समसामयिक विचार धारा से अछूता नहीं रह सकता। १. वैखानस सम्प्रदाय में आचार की प्रधानता है। २. याग-यज्ञ की प्रधानता है। ३.तप-तितिक्षा की प्रधानता है। ४.अर्चा-उत्सव का सर्वोपरि महत्त्व है। ज्ञान, योग, क्रिया, चर्या तत्त्वदर्शन भी है आचार संहिता भी। निश्चय ही ऐसे काल में वैखानस का जन्म हुआ होगा जब तत्त्वदर्शन अत्यन्त प्रारम्भिक या शिथिलावस्था में होगा। बाह्य आडम्बर, पूजा-उत्सव, तितिक्षा योग आदि का प्रदर्शन जोरों पर होगा। क्यों कि वैखानस दर्शन दृढ नहीं है अत: सुसंगठित नहीं है। न्याय की पञ्चावयव शैली या तर्क की कोटि दर कोटि वैखानस सम्प्रदाय में विकसित नहीं हुई। दर्शन का तर्क से परिमार्जन नहीं हुआ है।

ईश्वर, प्रकृति, जीव वैखानस ये तीन तत्त्व मानते हैं। प्रकृति स्वतन्त्र है। ईश्वर की आज्ञा से काम नहीं करती। पर प्रकृति अपने नियमों से काम करती है। उन नियमों का व्यतिक्रम ईश्वर के अनुग्रह द्वारा या अन्य उपायान्तर से, यज्ञ से, फल-

निष्पत्ति या अपूर्व से या अन्य प्रकार से प्राकृतिक नियमों मे हस्तक्षेप है। क्यों कि दर्शन शिथिल है अत: ये सब तर्क के अननुकूल तत्त्व धर्म में आ गये।

नियमों की नियामकता वैखानस सम्प्रदाय का सब से बडा योगदान है। विष्णु या नारायण सब कुछ वहीं है। सारे प्रकृति के नियमों का, धर्म या कर्म नियमों का परिचालक वहीं हैं। संसार में दु:ख है पर सारे दु:खों को दूर करनेवाला वह परमेश्वर ही है। अन्त में, सारे दु:ख, निश्चय ही वही नारायण दूर करेगा। यह उसका स्वभाव है। आवश्यकता इस बात की है उस पर श्रद्धा विश्वास से काम किया जाय। यह कर्म-नियम विष्णु में अविचलित आशा ने मानव जीवन में आशा का सञ्चार किया। यह आशा दीप ही सबसे बडी मुक्ति है। धर्म के नियमों की पालन करने की कुञ्जी है। मानव सदा आशावान रहता है। आशाबलवती राजन्! यही मानव प्रयत्न को सतत प्रेरणायुत बनाये रखने में सफल होती है। आध्यात्मिक स्पन्दन का सफल प्रेरक।

धर्मों की अपनी एक शैली है। कई उपायों में एक उपाय को अधिक महत्त्व देना ही तत्तत्सम्प्रदाय की विशेषता है। अर्चा उपाय को सबसे अधिक महत्त्व देना वैखानस सम्प्रदाय की विशेषता है।

हिन्दु मुख्यतया सामाजिक है। समाज में कैसे रहना आचार विचार पर उसका मुख्य लक्ष्य है। यदि ब्राह्मण वेदाध्ययन या स्वाध्याय में प्रवृत्त नहीं होता तो वह पतित हो जाता है। गिर कर क्षत्रिय नहीं बनता। चातुर्वर्ण्य संगठन के बाहर हो जाता है। वह अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं कर सकता।

जिन लोगों ने इस वर्ण व्यवस्था से विद्रोह किया -- अपना सामाजिक उत्तरदायित्व नहीं निभाया या निभाने लायक न रहे वे समाज छोडकर चले गये समाज के भयसे, व्यवस्था की दृढता के कारण जंगलों में जहां समाज का संगठित शासन नहीं है। हां भोजन आच्छादन का भय है। जीवन यापन हिंस्त्र पशुओं का भय है। चार जन क्या कहेंगे? लोग क्या कहेंगे? रिश्तेदार नातेदार क्या कहेंगे? इस भय से दूर, समाज की जबाबदारी से दूर, जन सम्पर्क से दूर- माता के स्नेह से दूर पिता के दुलार से दूर, पत्नी की स्नेहमयी परिरक्षा से दूर- पुत्र पौत्र दुहिता नप्तृ वर्ग से दूर समाज की कद्र -प्रतिष्ठा से दूर, यश अपयश से दूर, सामाजिक प्राप्तियों उद्देश्यों की पूर्तियों से दूर, विजय पराजय के मानापमान उल्लास हीनता से दूर समाज को बहिष्कृत या समाज से बहिष्कृत - संसार पराङ्मुखताका अपरपर्याय समाज विद्रोह- इसका नाम वैखानस है।

ब्राह्मण का अर्थ -- १) यज्ञ यागादि स्वयं करना, २) दूसरों को क्षत्रिय वैश्यों को कराने के लिए आवश्यक सैद्धान्तिक रूप और प्रायोगिक रूप से तैयार करना, ३) वेद का स्वाध्याय और मन्त्रों का रहस्य कहने की योग्यता, ४) यज्ञ मीमांसा और पद्धति - प्रतीकों की उपस्थिति। ५) गृहस्थी का भार जिसमें अग्नित्रय को पालने का दायित्व, ६) सारा गृहस्थ सम्भार यज्ञ परक अर्थ में देखना, ७) कर्म काण्ड को जीवन का मुख्य ध्येय समझना, ८) व्यक्तिगत आकांक्षाओं का मूल्य, ९) समाज में इस ज्ञान द्वारा सम्मान, १०) इसी ज्ञान के द्वारा संसार गृहस्थी चलाना।

व्यक्ति के कर्त्तव्यों का उत्तरदायित्वका लोप- या उन सामाजिक कार्यों को करने का अधिकार देता है देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण अध्ययन स्वाध्याय गुरुसे दीक्षा उपदेश अपने केलिए कर्म करने से वञ्चित हो जाता है क्यों कि यज्ञ यागादि तो पत्नी के बिना सम्भव नहीं हैं समाज में स्थिति के बिना पत्नी कहां? तब मोक्षके प्रयत्न से भी वञ्चित हो जाता है। क्या समाज ने जिसको बहिष्कृत कर दिया है और जिसने समाज को ठुकरा दिया है इन दोनों परिस्थितियों में कोई अन्तर है? व्यक्ति के लिए चाहे चाकू तरबूज पर गिरे या तरबूज चाकू पर नुकसान तो तरबूजका ही होता है। पर ऐसा नहीं हुआ इन समाज द्रोहियों ने वैखानसों ने अपनी ही एक जमात बना ली। ब्रह्मात्मैक्य का लक्ष्य ही छोड दिया। सायुज्य सारूप्य आदि को ही अपना लिया। व्यक्ति और जाति मूलविराट् और आत्मा के भेद के मिटाने का प्रयत्न ही अकार्यकारी समझा।

धर्मार्थ काम - मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ है परम प्रथम तीन उनके लिए जो संसार में रहना चाहते हैं समाज के एक अंग बनकर। समाज के नियमों का पालन करते हुए। पर मोक्ष उनके लिए है, जो समाज को धिक्कारते हैं। समाज में नहीं रहना चाहते। अत: दोनों प्रकार के पुरुषार्थों में अन्तर करना होगा।

संसार को मिथ्या कहकर संसार में जिया नहीं जा सकता। सिद्ध सन्यासी भी भिक्षा के लिए गृहस्थ पर निर्भर करता है। मोक्षेषणा का काम द्वितीयाश्रम के समान ही बलवत्तर है। यदि समतोलन हटा दिया जाय तो तुरीयाश्रम की श्रेष्ठता कहां रहेगी? तरतमभाव ही लुप्त हो जायगा। तुलना तो सजातीय की ही हो सकती है।

कर्म गृहस्थाश्रम का मुख्य लक्षण है। कर्म का अर्थ है, काम की उपलब्धि। काम - इच्छा शारीरिक और मानसिक भी। जाडे से बचने के लिए गरम कोट शारीरिक इच्छा है पर मोक्ष की इच्छा! स्वर्ग कामो यजेत् तो ठीक है पर स्वर्ग तो मोक्ष नहीं है। क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति तो जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति नहीं है। स्वर्ग सुख सांसारिक

सुख ही है -- सांसारिक भाषा में कहा गया सांसारिक मनुष्यों के लिए। जैसे इस्लाम में बहिश्त में हूर की परियां आपकी सेवा में तत्पर।

पर मोक्षावस्था तो अति सांसारिकता है। उसको दूर से बताया ही जा सकता है। स्त्री का आलिङ्गन बृहदारण्यक ४.३.२१. यह तो मील का पत्थर है जो कि गन्तव्य स्थान की दूरी का संकेत भर दे सकता है अक्षेत्रज्ञ की तरह या बृहदारण्यक ४.३.३३. भी मानव का चरम सुख कहता है। बृहदारण्यक ३.५ में कहा है-- जो इसको जानलेता है वह संसार छोड देता है क्यों कि इच्छा तो इच्छा है। मुनि = मौन और ४.३.२२ में अपने आप को जान लेने के बाद चोर चोर नहीं रहता साधु साधु नहीं रहता।

वैखानस और बौद्ध धर्म

जैसे बौद्ध धर्म है वैसे वैखानस सम्प्रदाय। दोनों ऐतिहासिक काल में उत्पन्न हैं। दोनों ही ऐतिहासिक कालमें व्यक्तियों द्वारा प्रचलित है। विखना ऋषि ब्रह्मा के मानसिक पुत्र हैं तो बुद्ध सिद्धार्थ माया देवी के गर्भ से। गर्भ-प्रक्रिया उभयत्र असामान्य है।

बुद्ध और विखना की प्राचीनता पुराणों में समान ही है। सृष्टि के आरम्भ में दोनों पैदा हुए। दोनों का उद्देश्य संसार के जीवराशि को दु:ख से छुटकारा दिलाना है।

बुद्ध के उपदेश बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् ५०० वर्ष बाद लिपि बद्ध हुए। उसी प्रकार वैखानस सम्प्रदाय में भी तीन मुख्य काल देखे जा सकते हैं। १. सूत्रकाल २. मरीचि, भृगु, अत्रि, कश्यप द्वारा विरचित आगम काल तथा ३. परवर्ती क्रिया या प्रयोग प्रधान काल जिसमें पूजा उत्सव मन्दिर मूर्ति निर्माण का प्राधान्य तथा धर्म दर्शन और आचार का क्रमश: ह्रास। उसी समय तन्त्र का भी प्रवेश हुआ।

'अधीतप्रबन्धा: प्रपन्ना:' कह कर तेनकलाई सम्प्रदाय ने वेद के महत्त्व को कम कर दिया पर वैखानस ने वेद को नहीं छोडा।

सम्भवत: यह वह समय होगा जब समाज में नास्तिक मतों को राजपोषण की सहायता से दबा दिया गया होगा। और वेद के विरुद्ध बोलने का किसी का साहस न होगा। अपना वेद न होने पर भी एक वेद की सृष्टि कर ली गयी होगी या किसी लुप्त वेद या अप्रसूत शाखा को अपना लिया गया होगा।

अवतार वाद दोनों का समान ही है। जातक कथाओं द्वारा बुद्ध ने वृक्ष -

पशुओं की योनि में जन्म लिया यह प्रथित ही है। मीन कूर्म वराह की तरह। महायान में तो विभव शक्ति ऐश्वर्य के अवतार भी है।

ब्रह्मा ने बुद्ध से बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए कहा। It is Brahma who implores the Buddha to make his doctrines known to the world. रोलेण्ड : आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर आफ इण्डिया, पेलिकन पृ.५५.

वैखानस सम्प्रदाय में भी ब्रह्मा ने ही ब्रह्मोत्सव का आरम्भ किया। वैखानस सम्प्रदाय के प्रचार के लिए। विखना का ब्रह्माका पुत्र या मरीचि का मानस पुत्र होना प्रसिद्ध ही है।

जैसे बुद्धधर्म में स्वर्ग की कई कोटियां है उसी प्रकार वैखानस सम्प्रदाय में भी सायुज्य सारूप्य कई कोटियां है।

बौद्ध धर्म के प्रचार में शिल्प का बडा हाथ है। बडे बडे चैत्य - संघाराम - स्तूप आदि के निर्माण में कला का उपयोग प्रशंसनीय है। वैखानसों ने तो मन्दिर मूर्ति बनाने का पेशा ही अपना लिया। उसी को मोक्षमार्ग भी कहते हैं।

नीतिगत जीवन व्यवहार उभयत्र समान है।

व्यूह भी बौद्ध धर्म से ही आया जैसा प्रतीत होता है। बुद्ध केन्द्र स्थान में तथा चोरों दिशाओं में पश्चिम में अमिताभ- with a universal Buddha of the Zenith having seat at the very centre of the cosmic machine surrounded by four mythical Buddhas. रोलेण्ड: आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर आफ इण्डिया पेलिकन पृ.५६.

बौद्ध वैरोचन महायान में भी उसी प्रकार के व्यूह की याद दिलाते हैं।

बौद्ध धर्म में वासना क्षय का नाम ही निर्वाण है। वैखानस में भी यह दीप क्षय का जैसे ही है अत: वासनाक्षय ही निर्वाण है बौद्ध धर्म महायांन में निर्माण कार्य के दान पूजा पाठ जैसे वैखानस में वैखानस आचार्यो के हाथ में वैसे बौद्ध भिक्षुओं के हाथ में।

गौतमबुद्ध के ऐतिहासिक पुरुष होने तथा बौद्धधर्म के ऐतिहासिक काल में भारतीय उपद्वीप में विस्तृतरूप से व्याप्त होने में किसी को सन्देह न होना चाहिए पर बौद्ध धर्म के समानान्तर रूप से वैखानस धार्मिक संगठन पर किसी प्रभाव का न पडना एक विशेष काल की ओर संकेत करती है। तथा निर्णय नहीं हो सकता पर बुद्ध को विष्णु का

अवतार न मानना अपने आप में कालनिर्णायक नहीं हो सकता पर बौद्ध संघ की नकल पर बौद्ध विहार की नकल पर मठ नहीं बने। विखना को बुद्ध के समान धर्म का संस्थापक नहीं माना। तब बुद्धं शरणं गच्छामि या संघं शरणं गच्छामि का कोई प्रभाव नहीं है। धम्मं शरणं गच्छामि का कितना साम्य है वैखानस सम्प्रदाय में निश्चात्मना नहीं कहा जा सकता उसके विपरीत वैखानस को बुद्ध का शिष्य कात्यायन बनाया यह जातक कथाओं में पठित है। अत: वैखानस सम्प्रदाय बौद्ध धर्म के पूर्व का हो सकता है ऐसा अनुमान करने का दृढ़ कारण हो सकता है। पर मन्दिर कोई सम्प्रदाय विशेष का पूजा स्थलन नही हैं। वहां तो सब जाते हैं जो अधिकारी नहीं है वे भी। अत: मन्दिर वैखानस सम्प्रदाय के मठ या चर्च नहीं है जहां से धर्मिक कार्य और लौकिक कार्यों का पर्यवेक्षण करते हैं। क्या वैखानस सम्प्रदाय में ऐसा कुछ कोई -आफिस पद का कार्यालय है? कोई धर्म गुरु नहीं है- उस अर्थ में कि जो कुछ हो रहा है वह सम्प्रदाय समर्थित है कि नहीं। समय किसी के लिए रुकता नहीं है। सामाजिक परिस्थितियां, राजनैतिक परिस्थितियां बदलती रहती हैं। तदनुकूल मत समर्थित मतके नियमों के शिथिल करने या परिवर्तन करने का कोई मार्ग है? क्या मरीचि के नाम से जो लिखा गया है वह अन्तिम है ? उसमें परिष्कार की गुञ्जाइश नहीं?

हीनयान और वैखानस की तुलना आस्तिक नास्तिक सम्प्रदाय की तुलना करने के बराबर है। हीनयान अपनी प्राचीन परम्परा मानता हैं और पालिभाषा में निबद्ध त्रिपिटक को ही बुद्ध के उपदेशों को ही प्रमाण मानता है। ठीक उसी प्रकार वैखानस वेदों को ही प्रमाणित मानता हैं। पुराणों का उद्धरण मूल ग्रन्थों में प्राप्त नहीं है। हीनयान सम्प्रदाय में त्याग का बडा महत्त्व है ऐसे ही वैखानस में भी। हीनयान वासना क्षय द्वारा मुक्ति मानता है वैखानस भी। वैखानस जैसे स्व केन्द्रित पुरुष प्रयत्न पर विश्वास करता है वैसे ही हीनयान अपने सिवाय अन्य किसी को सहायक नहीं मानता। वायु पुराण में आजीवकों को कुशल कारीगर और धनी वर्ग का बताया है। वायु ६८, २८४. तथा ७८. २९-३३ में पृ.३९४.

अर्थ शास्त्र ३ .२० में शाक्याजीवकादीन् वृषलपरिव्रजितान् देवपितृकार्येषु भोजयेत् तस्य शल्यो दण्ड:। वेद को अपौरुषेय कहना भारतीय आध्यात्मिक जगत की एक विशेषता है। राष्ट्रीय रिक्थ के संरक्षण का एक अव्यर्थ उपाय है। किसी भी राष्ट्र के रिक्थ के प्रति राष्ट्र के समस्त जनों का आदर भाव जाग्रत करना और उसी को बनाये

रखना एक बहुत बडा काम है। यह आदर भाव आज प्राय: ५,००० वर्षों से सजीव चला आ रहा है। इसी अपौरुषेयताके मन्त्रने अनेक धार्मिक समुदायों को आत्म सात कर लिया। पूजा विधि उसकी अपनी रही। वेद का स्वत: प्रमाणत्व स्वीकार कर लिया और वे हिन्दू हो गये। उन अनेक सम्प्रदायों को अपना मूल खोजने लायक वेद में कुछ न कुछ मिल ही जाता है, और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात - अनायास पुरातनता की छाप लग जाती है जिससे स्वधर्म में आस्था प्रबल होती है। तब आत्मसात किये जानेवाले धर्मों को भी इस चमत्कार का लाभ मिल जाता है। उनका वर्ग अधिक दृढ और सतेज होता है। समुदाय भी बडा हो जाता है जिससे धर्म में एक नयी चेतना का सञ्चार होता है। टीका टिप्पणी, खण्डन-मण्डन चलने लगता है जिससे प्रबुद्ध लोगों का एक वर्ग तैयार हो जाता है जो सप्रयोजन तत्त्वों को रखकर निष्प्रयोजन तत्त्वों को निकाल बाहर फेंकता है। निश्चय ही पुनरीक्षण के फल स्वरूप धार्मिक वाङ्मय अधिक तर्क संगत और समकालिक बनता है। यह समकालिकता एक नई जान फूंकती है। पंक्ति पावनता पनपती है।

यह साधन सम्पत् को तीक्ष्ण करता है। उस परमात्मा का बोध अधिक सरल और विशाल होता है। यह विशालता या अधिकता नई अवचेतना का कारण होता है। यह बढी हुई आध्यात्म तीक्ष्णाता धर्म के क्षेत्र में नई स्फूर्ति पैदा करती है। और फिर सारा का सारा धार्मिक समुदाय पुनरुज्जीवित हो उठता है। दार्शनिक तत्त्व गम्भीर हो उठते हैं और जीवन शैली नैतिकता पूर्ण करुणा पूर्ण हो जीने लायक हो जाती है।

मानव जब प्रगति की ओर कदम बढता है तो उसका विकास होता है। धार्मिक क्षेत्र में विकास का क्या अर्थ है? परिस्थितियों व्यक्तियों को देख कर व्यक्ति को भावनाओं के प्रतिफलन में अन्तर आता है। एक नयी सार्वजनीनता पैदा होती है -- समस्त जनों को अपना समझने की सह कुटुम्बिता की भावना। यह सुप्त अवचेतनाओं की जागृति है। मानव विकारों का दमन कर प्रहर्षित चेतना की ओर अग्रसर होता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की हितोक्ति को अच्छी प्रकार से आचरणीय बनाता है।

मनु ने ६.९२ धर्म के लक्षण कहे हैं --

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

यह पालनीय आचरणीय धर्म है। ईश्वर में विश्वास, या सही (किसी सम्प्रदाय के अनुसार) विश्वास नहीं।

काजी दावा सन्दुपने अपने ग्रन्थ चक्र सम्भार तन्त्र में वज्रयान को क्रियातन्त्रायान

चर्यातन्त्रयान तथा योगतन्त्रयान इस प्रकार तीन भागों में विभक्त किया है। क्रिया चर्या और योग ये तीनों भाग वैखानस के ज्ञान योग क्रिया चर्या से मिलते हैं। योग तन्त्रयान पुन: महायोगतन्त्रयान अनुसार योगतन्त्रयान और अतियोगतन्त्रयान में उपविभक्त किया है। विषयों का तत्त्वविचार वैखानस जैसा ही है।

काष्ठ में अग्नि या दूध में नवनीत की उपमा के बल अदृश्य से दृश्य होने की स्थिति नहीं है। उसमें सत्तासार का निदर्शन है।

उपनिषदों में अन्य उपमायें - पानी में नमक, समुद्र में नदी मधुमक्खियों द्वारा मधु संग्रह (अनेक पुष्पों से) स्वर्णाभरणों की रूप विहीनता पर ये सब उपमान समान (मोक्ष) स्थिति को नहीं बताते हैं। मोक्ष की इन उपमानों से तुलना करना दार्शनिक प्रश्न होगा।

नमक पानी में गल गया अर्थात् अब पानी में डाले हुए नमक को बाहर नहीं निकाल सकते। नमक की पृथक सत्ता समाप्त हो गयी पानी में मिल गया पर सारा पानी नमकीन हो गया कौन जीव है? नमक या पानी?

नदी समुद्र में मिल गयी। नदी ने अपना अस्तित्व खो दिया और नदी का मीठा जल खारा हो गया। क्या समुद्र का गुण अपने में ले लिया है या सत्ता का समस्तात्मना लोप हो गया है? पर जल में नमकीन गुण आगया।

मधुमक्खियों ने किस पुष्प से यह मधु संगृहीत किया है-- मधुकण (पुष्पस्थित) की पृथक् सत्ता लुप्त हो गयी। सन्यासियों की जात नहीं होती। बृहदारण्यक में भी लिखा है कि ज्ञानोदय होने पर पूर्व रूप लुप्त हो जाता है चोर चोर नहीं रहता पुल्कश पुल्कश नहीं रहता चण्डाल चाण्डाल नहीं रहता।

स्वर्ण का उपमान तो नाम और रूप दोनों का परित्याग है । जो अब तक कंगन था अब कर्णकुण्डल हो गया। कंगन का क्या हो गया? सोने में सोना मिल गया।

एक बूंद जल शराब की बोतल में गिर जाय तो वह बूंद जल नहीं रहा। मदिरा में मिलकर मदिरा हो गया। उसका रंग और स्वाद ले लिया और यहां तक कि मादकता भी। गुण भी आत्मसात कर लिया।

'मेष राश्यां मसीगुटिका' काली उडद की राशि में काली स्याही की एक गोली गिर गयी। खोज कर नहीं निकाल सकते। क्या यह जलती लकडी से निकले अंगारे के समान है? आत्म-परमात्म के द्वित्व का निदर्शन।

अध्याय दो

काल

भारतीय धर्म दर्शन क्षेत्र में काल निर्धारण एक बडी समस्या है । सिकन्दर का भारत पर आक्रमण या बुद्धका महा-परिनिर्वाण ऐसी एक दो निश्चित तिथियों को छोडकर बाकी सब अनिश्चित हैं। शंका प्रतिशंका, खण्डन मण्डन के कारण विद्वानों में मतैक्य प्राय: स्थिर नहीं होता। विदेशी यात्रियों के यात्रावृत्तान्त विश्वसनीय नहीं हैं क्योंकि वे सब कुछ लिखें यह आवश्यक नहीं है और लिखने योग्य सामग्री का चयन वे अपने दृष्टिकोण से करते हैं न कि भारतीय दृष्टिकोण से। फिर इन यात्रियों का सम्पर्क साधारण जनों से अधिक होता है तद्विषयक अधिकारी विद्वानों से कम; अत: प्राप्त ज्ञातव्य सामग्री तथ्य मूलक कम और माहात्म्य मूलक अधिक होती है। इसके पश्चात् शिलालेखों के आधार पर प्राप्त सामग्री है। छोटे से राजा की प्रशंसा में भी इतनी अतिशयोक्ति और अतिरंजकता रहती हैं कि अत्युक्ति और स्वभावोक्ति का अन्तर ही लुप्त हो जाता है। और अन्तिम उपाय फिर रह जाता है पुस्तकों के खण्डन मण्डन में पाया जाना। पुस्तकों में प्राप्त सामग्री का ऐसा चयन करते हैं जिसका खण्डन किया जा सके तथा तत्त्व को तोडमरोड कर प्रस्तुत करते हैं। स्वपार्श्वता, व्याजनिन्दा, व्याजस्तुति आदि ग्रन्थों में प्राप्त सामग्री को और ग्रन्थिल बना देते हैं। भग्नावशेष निर्मितियां भी अधिक सहायक नहीं है ।

राजराज प्रथम -९८५-१०१४ ई. के बाद के शिलालेखों में प्राय: वैखानस नाम प्राप्त है। विजयनगर सम्राट अच्युतराय के १५३९ ई. के शिलालेख में भी प्राप्त है। जिसमें तिरुपति के प्रसिद्ध मन्दिर गोविन्दराज मन्दिर की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा वैखानस आगम के अनुसार वैखानसों द्वारा कराई गयी।

वैखानस सूत्र, सूत्र शैली में हैं। पर शैली मात्र पर निर्भर करना भारी भूल होगी। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र तो बहुत परवर्ती काल की निर्मिति है। सूत्रों की भाषा पर भी विचार किया गया है । विषय की व्यवस्था पर भी। मेकडानल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि वैखानस धर्म सूत्र में धर्म विषयक कुछ नहीं है एतावता इसे धर्म सूत्र कहना साहस होगा। यह विष्णु-- पूजा का एक प्रयोग ग्रन्थ है।* (*मेकडानल, ए. ए. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ.२६२-३ लन्दन।)

मनुस्मृति ने निश्चय ही वैखानसमते स्थित: कहा है। अत: मनुसे पूर्ववर्ती होना

निश्चित है।

शंकरने मनु १.५ तथा २१; १०.४ तथा १२.९१ का उद्धरण दिया है। अत: मनुस्मृति आठवीं शती से परवर्ती नहीं हो सकती। सातवीं शती के कुमारिलने भी मनु का उद्धरण दिया है।

याज्ञवल्क्य तथा मनुस्मृति के तुलनात्मक अध्ययन से यह पता चलता है कि याज्ञवल्क्य में अधिक विस्तार है। विशेषत: कचहरी के मामलों में विधवाके अधिकारों में याज्ञवल्क्य स्मृति को तीसरी शती का मानते हैं। अत: मनुस्मृति इस से पूर्व की है।

मनु १०.४४ में काम्बोज, यवन, शक, पल्लव तथा चीन का प्रयोग है १०.४८ में आन्ध्र का भी। अत: मनुस्मृति तीसरी शती ईसा पूर्व से अधिक पुरानी नहीं हो सकती हैं।

केलाण्ड ने वैखानस गृह्य धर्म सूत्र का कालनिर्णय करते हुए है कहा है कि ग्रहों का नाम ग्रीक सम्प्रदाय के अनुसार दिया है। यह तीसरी शती का हो सकता है। अत: वैखानस गृह्यधर्म सूत्रका काल तृतीय शती ईसा का हो सकता है। नक्षत्रों के नाम भी कृत्तिका से ही प्रारम्भ होते हैं। ३.२० वै.गृ.सू.

बौधायन धर्मशास्त्र में वानप्रस्थों वैखानसशास्त्र समुदाचार: २.११.४. गौतम धर्म शास्त्र ३.२७ में भी श्रामणकाग्नि का जिक्र है जो वैखानस अग्नि ही है। ८.६. तथा १०.१-५. बौधायन अतिप्राचीन धर्म शास्त्र है।

निश्चय ही तब वैखानस सूत्रों के पूर्व ही कोई वैखानसशास्त्र होगा। प्रतिमा और अर्चा पदों का प्रयोग मोर कूप शिलालेख में प्राप्त है। इससे अधिक महत्त्वपूर्ण है पूजा केलिए प्रयुक्त पञ्चवीर पद। ये पञ्चवीर वृष्णिकुल के थे। कृष्ण आठवें अवतार इसी कुल में जन्मे थे। ये पञ्चवीर ही शायद पञ्चबेर हो गये हों।

वायु पुराण में पञ्चवीरों का पाठ है। वासुदेव-रोहिणी पुत्र संकर्षण, वसुदेव देवकी के पुत्र कृष्ण, कृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न, जाम्बवती-वासुदेव के पुत्र साम्ब। यद्यपि वैखानस के पुरुष, सत्य, अच्युत और अनिरूद्ध से प्रथक् हैं।

ईसवी पूर्व प्रथम शती के सिक्कों पर विष्णु या वैष्णव चिह्न प्राप्त है। पर ये सिक्के उत्तर और उत्तर पश्चिम भारत में ही पाये गये हैं। इससे अनुमान का एक आस्पद बनता है कि उत्तर का वैष्णव सम्प्रदाय और दक्षिण का वैष्णव सम्प्रदाय पृथक् पृथक् रूप

से जन्मे और वृद्धिंगत हुए होंगे ।

वैखानस एक धार्मिक सम्प्रदाय- चारों वर्णों के लिए चारों आश्रमों के लिए तथा वैखानस वानप्रस्थ आश्रम मात्र है ऐसे दो सम्प्रदाय हो सकते हैं ।

प्रथम प्रश्न द्वितीय सूत्रमें स्नान का विधान है। ऋग्वेद, यजर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के प्रीणातु कहने के पश्चात् 'इतिहास वेद: प्रीणातु' कहा है । निश्चय ही इतिहास को वेद की कोटि में रखना अत्यन्त परवर्ती काल को समझाता है ।

पुराणेतिहास का भेद शास्त्रों में इतिहास में मानव कर्म तथा पुराणों को प्रकृति और अवतार धर्मोंका वर्णन कहा है । वेद तो अपौरुषेय हैं तब पौरुषेय इतिहास कहना इस समय का द्योतक है जब पुराणों का पञ्चविध लक्षण न रह कर दश विध लक्षण हो गया होगा और फिर इतिहास वेद कहना पुराणों को वेदके समान मानना है जो वैखानस सम्प्रदाय केलिए संगत नहीं दीखता ।

सूत्रों का काल ईसा की तीसरी चौथी शती का होगा। वैखानस के चार मूल स्तम्भ है जिन्होंने सूत्रों के विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं कश्यप, अत्रि, मरीचि, और भृगु। ये चारों पुराणों में प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। १. महा ३.११५-११७ और तीन का नाम तो वेद में भी प्राप्त है।

सूत्रों में वर्णित श्रौतस्मार्त कर्म और इन आचार्यों के ग्रन्थों के परिशीलन से पता लगेगा कि सूत्रों में वर्णित प्रयोग पद्धति और मरीचि आदि द्वारा विरचित ग्रन्थों में कथित प्रयोग पद्धति में क्रमश: विकास हुआ है। प्रक्रिया में तान्त्रिक पद्धति क्रमश: अधिक अपनाई गया है। और तृतीय विकास क्रम में तो और अधिक तन्त्र का समावेश है।

तान्त्रिक पद्धति और प्रक्रिया के समावेश से इतना ही कह सकते हैं कि वैखानस पूजा पद्धति तन्त्र के लोकादर प्राप्त करने के बाद की है।

जातियों के अनेक नामों से तथा उनसे उत्पन्न जातियों के नामों से गुप्तकाल के पश्चात् होने का अनुमान कर सकते हैं।

सूत्रों में 'धन्वन्तरये स्वाहा' कहा है। समुद्र मन्थन से ही धन्वन्तरि लक्ष्मी आदि बाहर निकले। समुद्रमन्थन की कथा गुप्तकाल के पश्चात् हो प्रचार में आयी है ऐसा विद्वानों का मत है। अत: वैखानस गृह्यसूत्र का काल गुप्तकाल के बाद का हो सकता है।

मरीचि ने पूजा में कुछ ऐसा पदार्थों का उपयोग पढा है जिनका भारत में प्रवेश डच या स्पेन वासियों के आने के पश्चात् का है। निश्चय ही ये अंश प्रक्षिप्त होंगे। प्रक्षिप्त का 'अर्थ परवर्ती किसी आचार्य ने पूजा पद्धति में विस्तार को मरीचि विमानार्चन कल्प में जोड दिया होगा मरीचि के काल के न होंगे।' ताम्बूलपद के प्रयोग पर भी परवर्ती होने का सन्देह है।

अध्यापक कलाण्ड ने व्याकरण की दृष्टिसे सूत्रों की शैली का अध्ययन करते हुए लिखा है कि संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से ऐसी शैली सूत्रों में अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं है। उन्होंने इस प्रश्न को अध्यापक कुप्पुस्वामी शास्त्री से पूछा तो उन्होंने कहा कि सूत्र सम्भवत: मूलत: तामिल में होंगे जिनका अनुवाद संस्कृत में हुआ होगा और वाक्य रचना तामिल की ही रह गयी क्योंकि सूत्रकार संस्कृत का अच्छा पण्डित न होगा। और तामिल का प्रभाव सूत्र रचना पर पडा होगा।

Therefore we may safely draw the conclusion that the internal facts corroborate the tradition according to which our sutras belong to a very late period, when Sanskrit was no longer a living and spoken language, but a dead one.

W. Caland: Vaikhanasa Smarta Sutrani . Intro. p. xv.

कलाण्ड: वैखानस स्मार्त सूत्र भूमिका पृ. १४ नोट।

छठी शती के वाराहमिहिर ने तल पद का प्रयोग नहीं किया है। इसका प्रयोग परवर्ती वाङ्मय में ही हुआ है। अत: वैखानस वाङ्मय जिसमें तल पद का प्रयोग है परवर्ती होगा ।

वाराहमिहिर ने वाराह क्षेत्र तिरुपति या वेङ्कटेश्वर का कोई जिक्र नहीं किया है। निश्चय ही वाराहमिहिर को वाराह क्षेत्र के प्रति अधिक श्रद्धा व लगाव होना चाहिए था क्योंकि उसका नाम भी वाराह है ।

विष्णु सहस्रनाम में (श्लोक ११९) में वैखान: शब्द प्रयुक्त है। इस पर शंकर की टीका--

विशेषेण खननात् वैखान:। धरिणीं विशेषेण खनित्वा पातालवासिनं हिरण्याक्षं वाराहं रूपमास्थाय जघानेति पुराणे प्रसिद्धम् ।

तब वैखान पद का अर्थ शूकर हुआ ।

शूकर कई वंशों का राज चिह्न था जिनके सिक्के प्राप्त हैं। तब इस शूकर क्षेत्र तिरुपति का शूकर राजचिह्नोंवाले राजवंशों से किसी प्रकार सम्बन्ध जोडना कहां तक उपयुक्त होगा? यो वंश प्राय: उत्तर के हैं। तब राजनैतिक शूकर - धार्मिक शूकर और शायद सामाजिक शूकर तीनों की स्थिति माननी होगी।

बोधायन धर्म द्वितीय खण्डे - वानप्रस्थो वैखानसशास्त्रसमुदाचार:' इति - श्रामणकाख्यवैखानससूत्रदर्शिताग्निविधानं वानप्रस्थ के लिए।

आपस्तम्ब ने पौण्डरीक कुण्ड केलिए विखनस सूत्र को ही प्रमाण माना हैं।

मनु-कालपक्वै: स्वयंशीर्णैर्वैखानसमतेस्थित: ६.२१.

व्यासधृतधर्मकाण्ड- कथं त्वमर्चनीयोसि मूर्तय: कीदृशास्तु ते।

वैखानसा: कथं ब्रूयु: कथं वा पाञ्चरात्रिका:।

बृहत्संहितामें पुष्यस्नानाध्याय में वैखानस पद प्रयुक्त है। सरितश्च महाभागा नागा: किंपुरुषास्तथा। वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये।।६२।। यहां पर नाग किंपुरुष के साथ तथा द्विजा वैहायसा अर्थात् आकाश में विचरण करनेवाले द्विज इनके बीचमें वैखानस पद पढा गया है। महाभाग विशेषण के तौर पर प्रयुक्त है। मानो यह कोई जाति विशेष है जो किंपुरुष के समान आकाशमें रहती है।

वाशम ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री एण्ड डाक्ट्रिन्स आफ द आजीविकास में वैखानस और [illegible]प्रस्थ को समानार्थक बताया है।* (*पृ.९८-९९.)

शायद वैदिककाल में वैखानस वाङ्मय उपस्थित था। पर ऋग्वेद में वैखानस पद प्रयुक्त नहीं है। अर्थात् जब ऋग्वेद प्रथम अवस्था में था तो वैखानस वेद था, सम्प्रदाय या ऋषि नहीं थे। पर तपस्वियों के अर्थ में प्रयुक्त वैखानस पद का समानार्थक एक अन्य पद प्राप्त है- वातरशना। धूप और हवामें सतत रहने के कारण जो पिशङ्ग (नारङ्गी) रंग की धूल की परत ओढे हैं।* (*मुनयो वातरशना:पिशङ्गवसतेमला: ऋ.१०.१३६.२.) अनुक्रमणी में ऋग्वेद ९.६६. मण्डलके दृष्टा १०० वैखानस कहे गये हैं। तथा ऋग्वेद १०.९९ मण्डल के मन्त्र दृष्टा एक वम्रवैखानस पढे गये हैं। पहिले तो यज्ञ करते थे बाद में उपासना मार्गको अपना लिया। मनु ६.२१. पर टीका करते हुए कुल्लूकभट्टने स्पष्ट शब्दों में शास्त्र दर्शन कहा है।* (*मनु ६.२१ पर टीका पर शास्त्र और दर्शन पद दोनों का अर्थ एक नहीं है।) मनु ने भी मत पद का प्रयोग किया है। बृहत्पाराशर ने वानप्रस्थ को चार वर्गों में वांटा है जिनमें वैखानस भी एक है।*

(*वानप्रस्थश्चतुर्भेदो वैखानस उदुम्बरः।

फेनपो बालखिल्यश्च तल्लक्षणमथोच्यते।। बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र)

मज्झिम निकाय में एक वैखानस सुत्त है जिसमें वैखानस और बुद्ध के बीच शास्त्रार्थ का वर्णन है। वैखानस परिव्राजक सकुलदायी का गुरु था। परिपूर्णता पर जेतवन में शास्त्रार्थ हुआ। चूल सकुलसुत्त में वैखानस सम्प्रदाय की परिपूर्णता की परिभाषा को सुख (सांसारिक) कहा है जबकि परिपूर्णता का सम्पूर्ण तात्पर्यार्थ केवल अर्हन्त ही जान सकता है।* (*मज्झिमनिकाय २.४०.)

निश्चय ही बुद्ध के समय में वैखानस एक सम्प्रदाय था जो इतना महत्त्वपूर्ण था कि बुद्धोपरान्त उसका बुद्ध से शास्त्रार्थ दिखाने की जरूरत पडी।

बौद्ध वाङ्मय में एकदीर्घनखका नाम भी पढा गया है। यह बुद्ध के प्रिय शिष्य सारिपुत्त का भतीजा था। यह दिशाचर सम्प्रदाय के अग्निवेशन (अग्गिवेस्सन) या यज्ञ करनेवाले सम्प्रदाय का था जिसको बौद्ध धर्म में दीक्षित कर लिया गया। (*मज्झिमनिकाय I. पृ.४९७.) *अग्निवेश आयुर्वेदका मूल आचार्य था जिसके सिद्धान्तों का सार चरकसंहिता में है।

आयुर्वेद के आचार्यों में एक क्षुरपाणि भी है। शायद यह पद दीर्घनख जैसे किसी अल्ह का पर्याय हो। वैखानस लोग साम्प्रदायिक रूप से वैद्य का पेशा भी करते हैं। वैखानस के चारों आचार्य अत्रि, कश्यप, भृगु, एवं मरीचि आयुर्वेद के मूल संस्थापकों में से हैं। चरक, दिशाचर वे लोग थे अपनी अपनी स्थिर दिशा में लोगों को धार्मिक उपदेश देते हुए घूमते थे। और शायद भिक्षा से अपना निर्वाह करते थे। इन नामों के अतिरिक्त अचेलक निर्गण्ठ और आजीवक नामक घुम्मकड सन्त भी थे। बुद्धघोष ने इनको अनवस्थित चित्त कहा है और कहा है कि एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाते थे। कभी आजीवक, कभी निर्गण्ठ और कभी तापस। धम्मपद की टीका में एक कथा दी है। एक बालक जुम्बक था जो क्रियाशून्य था। उसके माता पिता ने उसकी इस आदत से लाचार हो उसको आजीवकों की टोली में डालदिया। पर वह तो अपनी आदत से लाचार था। और भिक्षा मांगने भी न जाता था। और उसको जब टोली के अन्य लोगों ने खाना देना बन्द कर दिया तो वह वात-भक्ष हो गया। वातभक्ष हिन्दू तपस्वियों में परिगणित है। डाक्टर कालाण्ड ने श्रौतसूत्रों में अन्यत्र अप्रयुक्त शब्दों की एक सूची दी है। ऐसा संकेत भी दिया है कि ये शब्द देशी या क्षेत्रीय भी हो सकते हैं।

वासाधिकार १.७ में --

बौद्धाद्यार्हतशैवं च केशवादीनि भेदतः ।
एतैर्भेदैः समाख्यातं तत्त्वमेकं प्रचक्षते ।।

निश्चय ही यह श्लोक बौद्ध जैन एवं शैव सम्प्रदायों के भारत में व्याप्त हो जाने के बाद का ही होगा।

तान्त्रिक पदावलि का भी प्रयोग है। वैसे भी इनके वाङ्मय को वैखानस आगम नामसे जाना जाता है। पूजा के भी वैदिकी तान्त्रिकी इस प्रकार दो भेद स्वीकार किये हैं।

प्राणायामं ततः कृत्वा रेचकपूरककुम्भकैः
हृन्मध्ये कमलं ध्यात्वा दलैर्षोडशभिर्युतम्।।
कलाक्षरसमायुक्तं कर्णिकं प्रकृतिं स्मरेत् ।

कला रेचक कुम्भक पूरक आदि पद मध्ययुगीन साधना हठयोग या गोरखनाथ के बाद में ही बहु-प्रचलित हुए।

वास्तु-पुरुष पूजा के सन्दर्भमें मरीचि ने पृ.११ 'तत्र ग्रामाभ्यन्तरे देवं संस्थाप्य महती' पूजा वैदिकेन विधिनैव कारयेत्' इससे स्पष्ट है कि वैदिक विधिके अतिरिक्त अन्य (तन्त्र) विधि भी थी।

अन्यत्र मरीचि पृ. १० 'अभ्यन्तरे तान्त्रिकेण विधिनार्चयेत् न वैदिकेन' न केवल तान्त्रिक विधि से ही पूजा करने के लिये कहा और वैदिक विधि से न करने का आदिश भी दिया है। अभ्यन्तर पद का दोनों स्थलों पर उपयोग है। अत: वैदिक विधान के साथसाथ तान्त्रिक विधान का भी ज्ञान था। तान्त्रिक विधान भारत में मध्यकाल में ही प्रचलन में आया। अत: वैखानस सम्प्रदाय अतिप्राचीन नहीं हो सकता। वैखानस धर्म-प्रश्न कृष्णयजु: के अन्तर्गत है। इसमें वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने की विधि विस्तार पूर्वक दी हैं। अनुलोम प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न लोगों के व्यवसाय भी बताये हैं।

अगस्त्य ऋषि का वैखानस विधि से तप करने का सन्दर्भ मत्स्य पुराण में उपलब्ध है।* (*अगस्त्य इति शान्तात्मा वभूव ऋषि सत्तम ।।३६।।
मलयस्यैकदेशेतु वैखानसविधानत:।
सभार्य: संवृतो विप्रैस्तपश्चक्रे सुदुश्चरम्।। ३७।। मत्स्य: अध्याय - ६१.
यहां विधानत: के स्थान पर विधानवित् पाठान्तर है।)

राजा ययाति का भाई, यति, वैराग्य से वैखानस हो गया। वैखानस पद साधारण वानप्रस्थ के अर्थ में भी अनेक स्थलों पर प्रयुक्त है, पर यहां योगी पद विशेषण दिया है। अत: वैखानस सम्प्रदाय ही उचित अर्थ होगा।* (*यति :कुमारभावेऽपि योगी वैखानसोऽभवत्। मत्स्य २४.५१.)

उत्तर राम चरित में वैखानसो को यमी कहा है।* (*यम - अहिंसा सत्याऽस्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा: योगसूत्र २.३० एतानि तानि गिरिनिर्झरिणी तटेषु वैखानसाश्रमतरूणि तपोवनानि येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि। उत्तररामचरित १.२५.) वनवासी मुनियों को वैखानस कहने का आम जनता में प्रयोग है। कण्व (शकुन्तला) का आश्रम वैखानसपद्धति पर आश्रित था।* (*वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानात् व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम् अत्यन्तमेव सदृशेक्षणवल्लभाभिराहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभि:। शकुन्तला१.२९.) स्त्रियों के साथ रहते थे।

वैसे ऋग्वेद से लगाकर मध्यकालीन वाङ्मय में वैखानस पद प्राप्त है पर पद अनेकार्थों में प्रयुक्त होने के कारण सम्प्रदाय अर्थ में प्रयुक्त है कि नहीं यह जानकारी दृढतया प्राप्त नहीं होती। वैसे मनु ने स्पष्ट संकेत किया है और कुल्लूक भट्ट ने स्पष्ट ही लिखा है तब प्रथम शताब्दी में वैखानस सम्प्रदाय होगा।

दूसरा प्रबलतर प्रणाम वैखानस सुत्त है। पालि वाङ्मय में बुद्ध से शास्त्रार्थ और फिर कश्यप का बौद्धमत में दीक्षित होना। बुद्ध के उपदेशों का प्रामाणिक संस्करण तैयार करने का भार भी कश्यप को सौंपा गया। यह भी प्रथम शताब्दी की ओर इंगित करता है।

वैसे वैखानस पद ताण्ड्य ब्राह्मण १४.९.२९. जैमिनीयब्राह्मण १.९.५. आर्षेय ब्राह्मण १.६२. तैत्तरीय आरण्यक २३.३. में प्राप्त है। बौधायन धर्मसूत्र ११.६.१६. अग्निवेश गृह्यसूत्र २.६.५. तथा बोधायन गृह्यसूत्र ११.९.१७. तथा बोधायन श्रौतसूत्र १६.२४.८. और हिरण्यकेशी १९.३.१४. में वैखानस पद प्राप्त है।

हेमचन्द्र ने अपने अभिधान चिन्तामणि में (८०९-८१०पंक्ति) मस्किरन् वैखानस वानप्रस्थ और यति शब्दों को समानार्थक रूप से पढा है। अमरकोश ने वैखानस पद नहीं पढा है। शायद वैखानस अमरसिंह के काल तक उत्तर से दक्षिण चले

आये हों। और उत्तर के अमरसिंह को बौद्ध वाङ्मय में पठित वैखानस पद और धर्ममार्ग का पता न लगा हो या समावेश करने लायक महत्त्व का न समझा हो।

These four names must be considered to stand for traditions or schools handing down the same ritual doctrines and practices but differing in details. In the extent works, they appear to quote each other, that is to say the other traditions. This fact adds to the difficulty in making definite statements about the time of redactions. They must in any case be posterior to the sutra work and can generally, speaking on the strength of many architectural and iconographical data contained in the texts be hardly later in time than about 1100 Ad." J. Gonda-- Medieval Religious Literature P.145.

देश

मूर्तिपूजा दक्षिण की उपज है। वैखानस सूत्र कृष्णयजुर्वेद के अन्तर्गत हैं और कृष्ण यजुर्वेद दक्षिण में ही अधिक प्रचलनमें है। अत: अग्निपूजक आर्यों के उत्तर से खदेड दिये जाने पर ये वैखानस भागकर दक्षिण आ गये एवं दक्षिण में प्रचलित पूजा पद्धति को उन्होंने अपना लिया। प्रोफेसर केलाण्डने सूत्रों को भाषा के आधार पर सूत्रों की रचना शैली को तामिल से प्रभावित बताया है।* (*केलाण्ड सम्पादित वैखानस स्मार्त सूत्र भूमिका पृ.१४ नोट।

बृहच्चरण

तामिल भाषाभाषी ब्राह्मणों (स्मार्त) की एक उपशाखा है जिसको बृहच्चरण कहा जाता है। बृहच्चरण का अर्थ होगा विशाल जन समूह का स्थानान्तर प्रस्थान। शायद ये लोग राजनीतिक कारणों से पलायन करनेवाले लोग थे।

इस बृहत्प्रस्थान को मानने के लिए एक और सन्दर्भ प्राप्त है। पञ्चविंश ब्राह्मण १४.४.७ में दिया है कि वैखानसों को मुनि मारण नामक स्थान पर रहस्यु देव मलीम्लुच ने मार डाला। ऐसा ही तैत्तरीय आरण्यक १.२.३ में भी प्राप्त है। वैखानसों द्वारा साम गाये जाने पर इन्द्र ने उनकी रक्षा की। ताण्ड्य ब्राह्मण १४.४.९ गोवर्धन सन्दर्भ में इन्द्र की पूजा करनेवालों को शायद वहां से भागना पडा हो।

इनके दक्षिणवासी होने का एक और प्रमाण है। इनके समस्त दिव्यक्षेत्रों का दक्षिण भारत में होना--

स्थान	देवता	स्थान	देवता
तिरुपति	वेङ्कटेश्वर	तञ्जाऊर	वीर नृसिंह
भूतपुरी	आदिकेशव	कण्डियूर	हरसावविमोचन
तिरु अहीन्द्रपुर	देवनाथ	अडहरकोइल	सुन्दरराज
ओप्पिलिअप्पन	वेङ्कटेश	मदुरै	सुन्दरराज
तिरुकृष्णकुडि	कृष्ण	दर्भशयन	श्रीराम
नागपट्टणम्	सुन्दरराज	श्रीविल्लीपुत्तूर	रंगमन्नार
तिरुकृष्णपुरम्	शौरिराज	तोताद्रि	तोताद्रिनाथ
नाथन कोइल	देवनाथ	आलवार तिरुनगरी	आदिकेशव
तञ्जाउर	नीलमेघ	श्रीवैकुण्ठ	वैकुण्ठनाथ
तञ्जाउर	मणिपर्वत	तिरुतंगाल	तरुि तंग वलि अप्पन्

जिन देशों को ब्राह्मणों के जाने के लिए अयोग्य कहा है --- वे उत्तर के ही हैं। वृक्ष पनस नारिकेल आदि दक्षिण के ही हैं। समुद्रमें जानेवाले वणिक् या नाविक जहां समुद्र है वहीं के हो सकते हैं। दक्षिण ही समुद्रसे घिरा है। लक्ष्मी के अनेक नामों में क्षीर सागर कन्यका या सिन्धुकन्या जैसे नाम पढे गये हैं। निश्चय ही लक्ष्मी एक ऐसे समाज की देवी है जो समुद्र तट पर वास करते हैं। भारत में दक्षिण प्रान्त ही एक ऐसा भूखण्ड है। फूलों का प्रयोग -- यज्ञ में प्रचलित अन्य सामग्री के साथ दक्षिण की पूजा पद्धति का ही अनुकरण है। इतनी बार जो स्नान कहा गया है निश्चय ही उत्तर की सर्दी में सम्भव नहीं। मन्दिर निर्माण कला भी उत्तर भारत की नहीं है। स्थापत्य एवं वास्तु में द्राविड शैली का ही अलग नाम है। मूर्ति भी शारीरिक संरचना प्रधान नहीं है यूनानी शैली के अनुसार। ध्यान श्लोकों के अनुसार मूर्तियां बनती है सदा यौवन सम्पन्न एवं भावपूर्ण। मरीचिविमान कल्प लिखने तक नागर, बेसर द्राविड स्थापत्य की तीनों शैलियां विकसित हो चुकी थी। मरीचिने परिभाषायें भी दी है।* (*द्राविड - स्वश्रशिखरग्रीव। खुरादि स्तूपिकान्तं चतुरस्रं नागरम्। वृत्तं वेसरम्।)

नक्षत्रों मुहूर्तों तथा ज्योतिष की सामग्री काल निर्धारण में सहायक हो सकती है। शिला ग्रहण सन्दर्भ में कांस्य पद का प्रयोग घण्टे समान शिला के शब्द करने के

उपमान के रूप में प्रयुक्त है। पृष्ठ ६८ स्त्री पु' नपुंसक शिला के अतिरिक्त एक गर्भिणी शिला का भी नाम लिया गया है।

मूर्ति को और आसन को जोडने का एक मसाला तैयार करने की विधि बताई है।* (*लक्षा गुणमधूच्छष्टगुग्गलून् परस्परं समभागं कृत्वा एषां द्विगुणं सज्जरसं गैरिकं घन चूर्णमर्द्धम्, सर्वेषामर्धं तैलं संयोज्य लोहपात्रे निक्षिप्य लोहदर्व्या समेनाग्निना सुपक्वं पचेत्। तद्बन्धमानीय तत्पीठरन्ध्रे प्रक्षिपेत्। पृ.७७ विमानार्चनकल्प.) नारियल की मोटी रस्सी का उपयोग भी बताया है।

'पुंवृक्षेण पुंबेरं स्त्रीवृक्षेण स्त्रीबेरं कारयेत्'

पुं वृक्षसे पुं बेर और स्त्री वृक्ष से स्त्री बेर बनाना चाहिए। वृक्षों का लिंग वनस्पति विज्ञान का अति उन्नत ज्ञान होगा।

वैखानस तिरुपति क्षेत्र के मूलनिवासी नहीं हैं। वे आन्ध्र में सरकार प्रान्त के वासी हैं। तथा एक शाखा तामिलनाडु में जाकर बस गई।

आन्ध्र के नागार्जुन कोण्ड या पर्वत श्रेणी स्थित कुछ गुहाओं का आजीवक सम्प्रदाय के नग्न सन्यासियों के उपकार के हेतु अशोक के पौत्र दशरथ ने समर्पण किया यह वृत्त वहां स्थित शिलालेख से पुष्ट होता हैं। Corpus Inscription Indicarum Vol.I.,P.103-4, 134-136.

निश्चय ही आजीवक सम्प्रदाय का आन्ध्र के सरकार क्षेत्र में प्रजा आदरण तथा राजपोषण प्राप्त था।

बौद्ध भग्नावशेषों के लिए यह क्षेत्र प्रसिद्ध है। राज पोषकत्व के अभाव में निश्चय ही वेद या विशुद्ध वेद मत को मानने वाले भयान्दोलित रूप से रहते होंगे। १०७७ ई के राजेन्द्रचोल के अवनि शिलालेख से ज्ञात होता है कि उस समय राज्य धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों पर कर लगाया जाता था जिसको कासु कहते थे तामिल में अवलंपलम्। आजकल भी तिरुपति में कासु का हुण्डी में डालने का रिवाज हैं और तिरुपति के भगवान का नाम ही वड्डिकासुलवाडा हो गया है। कर न देने की अवस्था में उतना ही कर व्याज के रूप में देना पडता था।

निश्चय ही यह मन्दिर उन लोगों का होगा जो राज पोषकत्व से च्युत थे। और १०-११ वीं शती से यह रिवाज प्रचलन में है। तब यह अनुमान किया जा सकता है कि

उस समय धार्मिक यातनओ को अपने क्षेत्र मे न सह सकने के कारण वैखानस लोग यहां आकर बस गये होंगे।

वेङ्ग

स्कन्द पुराण के वैष्णव खण्ड के दसवें अध्याय में एक कथा दी है। वेङ्ग देशे पुरा कश्चिद्धेमकान्त इति श्रुत: ।।३६।।

—वेङ्ग देश में कोई हेमकान्त नामक राजा रहता था।

तिरुमल शिलालेख संख्या १३ में वेङ्ग का नाम आया है। इस क्षेत्र का नाम वेङ्ग और क्षेत्र के देवता का नाम तिरु + वेङ्गडम् है। तिरु = श्री। इस क्षेत्र के जन समाज के नामों में वेङ्कन्ना अत्यन्त प्रचलित नाम है। स्त्रियों का नाम भी वेङ्कम्मा अतिलोकप्रिय नाम है।

तदा शतर्चिनो नाम्न ऋषयः शंसितव्रताः ।।३८।।

शतर्चिनामक ऋषिगण थे। सौ ऋषि एक ऋचा के ऋषि थे। उनको वैखानस कहते थे यह पहले कह चुके हैं।

शिष्यों ने राजा जिसने बाण चलाकर गुरु को क्षतगात्र कर दिया था। उस पर अस्त्र प्रयोग करना चाहा। पर गुरु ने कहा --

ततः शिष्यानुवाचेदं वचनं क्रोधविह्वलः

यूयं कुरुध्वमातिथ्यं अध्वश्रान्तस्य हे द्विजाः।।४१।।

स्कन्द वैष्णव खण्ड अध्याय१०

आतिथ्य उनका धर्म है। कालिदास ने भी शकुन्तला को वैखानस व्रत के अनुरूप दुष्यन्त का आतिथ्य सत्कार करने के लिए कहा। राजाने कहा-- में ने मारा है। ठीक है। परन्तु आतिथ्य करो। तुम्हारा धर्म है। मैं थका हूँ। परिश्रान्त के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये नहीं जानते ?

वेङ्ग या वंग का सम्बन्ध जोडा जा सकता है।

तामिल का तिरु संस्कृत का श्री ही है। आदरार्थक प्रयोग श्रीलंका, श्रीकालहस्ती श्रीरंगपट्टनम् और अब श्रीपेरम्बदूर इत्यादि। इसी प्रकार श्रीशैल, श्रीगिरि, श्रीहट्ट (सिलहट अब बांग्लादेश में। मल या मलै अन्त अनेक नाम ख्यात हैं जैसे अन्नामलै या

तिरुमलै आदि। तिरुमल राव, कोण्डमाचारी (कोण्डा = पर्वत) या ऐलुमलै (एलु = सात, मलै = पर्वत) नाम लोगों के अति प्रसिद्ध हैं। आज श्रीशैल और तिरुमलै दो पृथक् स्थानों को कहते हैं। दोनों आन्ध्र में है। श्रीकाकुलम् भी इसी क्षेत्र के परिसर प्रान्त का नाम है और आन्ध्र का एक जिला है। इस प्रदेश पर हर्षचरित में श्रीशैल को शाक्त साधना का केन्द्र बताया है । आज भी इस क्षेत्र की स्त्रियों के नामों में बाला या सुन्दरी या बालात्रिपुरसुन्दरी अतिलोक प्रिय नाम है।

पश्चिम गोदावरी जिले में पेद्दवेंगी नामक एक ग्राम है। इसा की चौथी पांचवी शती में यह शालंकायन वंश का राज था। यह कृष्णा-गोदावरी के मध्य स्थित भूमि है। उनकी राजधानी का नाम वेङ्गि था।

नाथ सम्प्रदाय का इस क्षेत्र से सम्बन्ध रहा होगा। गोरखनाथ का जन्म चन्द्रगिरि नामक स्थान में हुआ बताया जाता है। जिस नदी के तीर पर यह चन्द्रगिरि बसा है उसका नाम गोदावरी बताया जाता है पर गोदावरी नदी के तीर पर कोई प्रसिद्ध चन्द्रगिरि नहीं है। हां तिरुपति के पास एक चन्द्रगिरि है जिसकी प्रसिद्धि वहां के राजा द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी को वह जमीन बेचने के कारण है जहां आज मद्रास शहर बसा है। या फोर्ट स्थित है। शायद तिरुमल के परिसर स्थित सप्तगिरियों में से किसी गिरि का नाम चन्द्रगिरि हो? वैसे सात पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं -- 'शैषाचल, गरुडाचल, वेङ्कटाचल, नारायणाद्रि, वृषभाद्रि और अञ्जनाद्रि।।

भक्ति सम्प्रदाय के अभ्युदय के पूर्व नाथ सम्प्रदाय भारत में बडे जोरों से उभरा। राजनैतिक परिस्थितियों के अध्ययन से यह जान लेना कठिन नहीं है कि नाथ पूर्व भारत के समाज की स्थिति अत्यन्त हीन अवस्था को पहुंच गयी थी । जिसके विद्रोह के फल स्वरूप नाथ सम्प्रदाय में स्त्रियों के प्रति इतनी घृणा, और शरीर को अनेक प्रकार का कष्ट देना जीवन का परम लक्ष्य हो गया था। और उसके बाद तो इस्लाम के आक्रमण ने भारत-का भाग्य ही बदल दिया।

छठी सातवीं शती में इसी क्षेत्र पर विष्णुकुण्डिनों का राज्य था। सातवीं शती के द्वितीयार्द्ध में पूर्वी चालुक्यों ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया और इनकी राजधानी का नाम पिष्टपुर (वर्तमान पूर्व गोदावरी जिले में स्थित पीठापुरम्। और उनका देश वेङ्गी नाम से ख्यात था।

विष्णुकुण्डिन् पद विष्णु कोण्डा का विकृत रूप हो सकता है। कोण्डा पद का

अर्थ पर्वत है यह पहले भी कहा जा चुका है। ओकार का इकार भाषा के परिवर्तन के साथ होता है। न कार को प्रातिपदिक के अन्त में जोडना यहां की भाषा की प्रकृति है जैसे दामोदर का दामोदरन् इत्यादि। तब विष्णु कुण्डिन् पद का अर्थ हुआ विष्णु के पर्वत पर रहने वाले लोग। पर ऊपर गिनाये गये सातों नामों में से कोई भी नाम विष्णु परक नहीं है। शेषाचल अलबत्ता एक नाम है जो शेष नाग का वाचक है। और पतञ्जलि योग सूत्र के रचयिता शेष नाग के अवतार हैं एतावता यहां योग का हठयोग का प्राबल्य होना स्वाभाविक है। वैखानस सम्प्रदाय में योग का अत्यन्त प्रमुख स्थान है।

आठवीं शती में शैलोद्भव एक अन्य वंश उभरा जिसने पुरी और गंजाम के आसपास के प्रदेश पर कब्जा कर लिया। शैलोद्भव का अर्थ पर्वत पर पैदा होनेवाली जाति ऐसा अर्थ स्पष्ट ही है।

अध्याय तीन

श्रुतिस्मृतिनदीपूर्णं शास्त्रकल्लोलसंकुलम् ।
विष्णुभक्त्युदकं शुद्धं वन्दे श्रीविखनोऽर्णवम् ।।

वैखानस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक विखना ऋषि स्वयं भू नहीं है। यह वैखानस सम्प्रदाय भी स्वीकार करता है। अन्य सूत्रकारों के समान ये भी एक इतिहास काल में जन्मे व्यक्ति हैं। इनके जन्म या जीवन के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। अनेक पुराणों में आपका सन्दर्भ प्राप्त है।

जन्म की अण्डज स्वेदज प्रक्रिया के अतिरिक्त भारत में मानसिक सृष्टि और अयोनिज सृष्टि का क्रम भी है। वह्निजा, भूमिजा, पद्मजा ऐसे पद सुनने को मिलते है द्रौपदी सीता और लक्ष्मी ऐसे ही पैदा हुए थे। दत्त औरस और क्षेत्रज ऐसे भेद भी स्मृति काल में सामने आये। अयोनिज में भी प्रभेद हैं। वियोनिज कुलान्तर या विवाह के अयोग्य व्यक्तियों का वर्ग है। गूढोत्पन्न* (*गूढोत्पन्न : सुतः कुन्त्या महा. १२.१.३३ कनीनस्त्वं मया जातः महा. ५.१४३.३.) और कनीन ऐसे भी प्रभेद हैं। मनु ने एक घर में ही रहनेवालों द्वारा इसी स्त्री से यह पुत्र पैदा हुआ है ऐसा मान लेने पर भी परिवार के किस सदस्य का पुत्र है यह निश्चित रूप से न जानने पर उस गूढोत्पन्न कहा है।* (*मनु.९.१७०.) अमर कोशकार ने पति के जीवित रहने पर अन्य व्यक्ति से सन्तति की उत्पत्ति कुण्ड तथा मरने के बाद उत्पन्न जारज पुत्र को गोलक कहा है।* (*अमृते जारज कुण्डः मृते भर्तरि गोलकः।।) पिता के घर में अर्थात् विवाह के पूर्व यदि पुत्र अप्रकाश रूप से पैदा हो तो उसे कनीन कहते हैं* (*मनु.९.१७२.) अपविद्ध वह पुत्र है जिसे पैदा करके माता-पिता ने उत्सृष्ट कर दिया अर्थात् फेंक दिया हो।* (*मनु.९.१७१.) पौनर्भव, पारशव के अतिरिक्त भी अन्य अनेक प्रकार के पुत्रों के नाम गिनाये हैं। कौमारहर पति तथा क्षतयोनिपति और अक्षतयोनि विधवा के पुत्र आदि के नाम भी हैं। समाज में क्षतयोनि विधवा और अक्षतयोनि विधवाओं के पुत्रों की संख्या इतनी अधिक होगी कि उनका एक अलग वर्ग बनाने की समाज को धर्मशास्त्र को आवश्यकता पडी। कृत्रिम और आदिज्ञ नाम भी पढे गये हैं। आदिज्ञ वह पुत्र है जिसके माता पिता के बारे में तो जानते है पर निश्चयात्मना यह नहीं जानते कि पुत्र अमुक व्यक्ति का ही है। जातिगत अनेक भेद अनुलोभ प्रतिलोम अन्तराल भेद से दिये हैं।

धर्म प्रवर्तकों के जन्मको असाधारण बताना प्राय: सभी धर्मों में समान है। बुद्ध हो, ईसा, कृष्ण या अन्य, यह प्रवृत्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर है। वैखानस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक को भी इस नियम के अन्तर्भुक्त मानना कोई भूल न होगी।

वैखानस की उत्पत्ति नखों से हुई है।* (* स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्वा शरीरमधुनोत् ...... ये नखा: ते वैखानसा:। तै.आ.१.२३) नख और केश दोनों ही सजीव शरीर से निर्जीव या मृत पैदा होनेवाले भाग हैं। ऐसे मृत या निर्जीव पदार्थ से एक सम्प्रदायाचार्य की उत्पत्ति अलौकिक जन्म कथा ही को बताती है।

ब्रह्मा की मानसी सृष्टि से मरीचि और अत्रि पैदा हुए।* (*मरीचिरभवत्पूर्वं ततोऽत्रिर्भगवानृषि: मत्स्य ३.६ पुत्रो भृगो: मत्स्य३.८.

भृगुरङ्गिरामरीचि: पुलस्त्य: पुलह: क्रतु:।
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मण: सुता:।।)

तैत्तरीय आरण्यक १.२३ ने विखना की उत्पत्ति प्रजापति से कही गयी है।

विखना अन्य अवतारों से ऋषियों से बहुत उत्कृष्ट हैं। उन्होंने सांसारिक जनों के लिए अत्यन्तकरुणा से सब के उद्धार के लिए सूत्रों की रचना की। ये सूत्र व्यक्ति के सामर्थ्य के अनुरूप हैं ऐसा नहीं है। ये तो विशुद्ध ज्ञान के खण्ड हैं। इनकी सत्यता अल्पकालिक नहीं है। सार्वकालिक है। हां विखना पुराणपुरुष हैं पर उनका सूत्र द्वारा प्रदत्त ज्ञान मुमुक्षुओं के लिए सार्वकालिक सञ्जीवनी का काम करते हैं।

वेदान्ततत्त्वमीमांसा खननं कृतवान् हरि:।
नाम्ना विखनसं प्राहु: यच्च वैखानसं तथा।।

वैखानस सम्प्रदाय के आदि प्रतिष्ठापकाचार्य विखनसाचार्य ही हैं। ब्रह्मा ही विखना मुनि हैं। ऐसा सन्दर्भ पुराणों में प्राप्त है। ये विष्णु पुत्र हैं। ये निसर्ग से शुद्ध वैष्णव हैं। जन्म से ही इनकी आचार्य संज्ञा है। मनु ने आचार्य की परिभाषा दी हैं। वैश्य और व्रात्य के संगम से आचार्य पैदा होते हैं।

वैखानस सम्प्रदाय में आचार्य पद का विशेष अर्थ है। भृगु संहिता -- क्रियाधिकार में लिखा है--

वैखानसेन सूत्रेण निषेकादि क्रियान्वितम् ४.२२ जिसके गर्भाधानादि संस्कार किये गये हों और वह भी मात्र वैखानस सूत्रसे। अन्य सूत्रों से संस्कार किये गये व्यक्ति

आचार्य नहीं हो सकते।

आचिनोति हि शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि तस्मादाचार्य इत्युक्त: सर्वकार्येऽपि देशिक: श्लोक १०६ पृ.३१० शास्त्रों के अर्थों को भली भांति जानता है शास्त्रों के अनुरूप आचरण करता है और सारे काम शास्त्र संगत करता है उसको आचार्य कहते हैं

विप्रं स्वाध्यायसंयुक्तं वेदतत्त्वार्थदर्शिनम्
सौम्यं जितेन्द्रियं शुद्धं विष्ण्वर्चनपरायणम् ।।२३।।
ऊहापोहविधानेन ध्वस्तसंशयमानसम्।
पत्न्यपत्ययुतं शान्तं स्थानशीलं च धार्मिकम् ।।२४।।
आहूय देववत्पूज्य सर्वकार्येऽपि दैशिकम्।
आचार्यं वरयित्वा तु तेनोक्तं सर्वमाचरेत् ।।२५।।

भारतीय विचारधारा में आचार को अत्यधिक महत्त्व है। बिना सम्यक् आचार के मोक्ष या चरम पुरुषार्थ की प्राप्ति सम्भव नहीं है। सभी सम्प्रदाय के लोग इसको मानते हैं। इसीलिए परस्पर विरोधी मत प्रतिष्ठपक सभी आचार्य कहाते हैं-- जैसे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, वल्लभाचार्य इत्यादि। आजकल तो राजनैतिक नेता भी आचार्य कहाने में अपना गौरव समझते हैं जैसे आचार्य रंगा, आचार्य नरेन्द्रदेव आदि। यूनिवर्सिटी प्रोफेसर भी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य क्षिति मोहन सेन आदि।

परिपालनीय आचार के तत्त्व प्राय: सभी सम्प्रदायों में समान ही हैं। बाद में तो कुलाचार जैसे पद भी प्रयोग में आये अर्थात् सम्प्रदाय प्रोक्त आचार। आचार का महत्त्व गरुडने कहा है--

अन्येभ्यो ब्राह्मणा: श्रेष्ठा: तेभ्यश्च क्रियापरा: गरुड ९८.१.

अन्यवर्णों की अपेक्षा ब्राह्मणश्रेष्ठ हैं और ब्राह्मणों में भी क्रियावान् अर्थात् जो सम्पूर्णात्मना आचार का निर्वाह करते हैं।

विखना के सम्बन्ध में एक निश्चित तिथि आनन्दसंहिता में दी है--

स्वायंभुव मनोःकाले युगादौ शुकवत्सरे
श्रवणे श्रावणशुक्लपूर्णिमा सोमवासरे
सिंहलग्नेन संयुक्ते विखनाः प्रापः नैमिषम्
नैमिषे निमिषक्षेत्रे शिष्यैश्च सहितो मुनिः

वैखानसस्सहर्षेण सूत्रं कर्तुं प्रचक्रमे
वैखानसेन मुनिना द्वात्रिंशत् प्रश्नसंख्यया
निषेकादि श्मशानान्तं मानुषं कर्मसूचितम् ।। १७.३५-३८.

मुखमण्डप के द्वारदेवता के रूप में विमानार्चनकल्पमें मरीचि ने विखना का इस प्रकार वर्णन किया है-- मुखमण्डपद्वारदक्षिणे स्फटिकाभो हेमाम्बरधरो रुरुवाहन कुशध्वजो विधिजो दिव्येशो नामाद्यक्षरबीजो दण्डधरश्चतुर्भुजो वेदरवो विखना विखनसं तपोयुक्तं सिद्धिदं सर्वदर्शनमिति मरीचिविमानार्चन पृ.६९. ये विष्णु के पुत्र हैं। ये निसर्ग से शुद्ध वैष्णव हैं।* (*निसर्गवैष्णवा: शुद्धा जन्मनाचार्यसंज्ञिता: विखना इति वैविष्णु: तज्जा: वैखानसा: समृता: विष्णु वंशजस्य विखना मुनीनां प्रथमो मुनि भृगु क्रियाधिकार २६.२८-२९.) जन्म से ही इनकी आचार्य संज्ञा है। विष्णु ही विखना है। उनसे पैदा होनेवाली सन्तान वैखानस कहाते हैं। विखना का नाम ही विष्णु है। विष्णु सहस्र नाम में भी विष्णु के नामों ९८७ में एक नाम विखन: भी है। भागवत १.३१.४. पर टीका करते हुए श्रीधराचार्यने* (*विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान सात्वतांकुले भागवत १०.३१.४. पर श्रीधर की टीका - विखनसा ब्रह्मणा) विखनस् पद का अर्थ ब्रह्मा किया है। तब दो प्रस्थान समाने आये--

१. विखना ही ब्रह्मा हैं* (*तत: परं चतुर्वक्त्रो जटाकाषायदण्डजभृत् नैमिषारण्यमास्थाय मुनिबृन्दनिषेवितम् धाता विखनसो नाम मरीच्यादिसुतान् मुनीन्)

२. विखना ही विष्णु है।* (*विखना इति वै विष्णुस्[illegible] वैखानसा: स्मृता:। विष्णोरेव समुत्पन्ना: भृग्वाद्या: मुनयस्तथा।। भृगुप्रोक्तक्रियाधिकार में पाठ इस प्रकार है--)

खिलश्रुतिमें लिखा है -- बोझा ढोनेवाले जानवरों में बैल, सुरों में दीप्तिमान अदिति, ऋभुओं में ब्रह्मा और मुनियों में विखना हूँ।* (*धेनुर्वहाणामदितिर्सुराणां ब्रह्मा ऋभूणां विखना मुनीनाम् खिलश्रुति) वैखानस आगम चित्रोदयमञ्जरी में लिखा है कि विखना के पिता नारायण और माता का नाम हरिप्रिया है। भृग्वादि मुनि पुत्र हैं।* (*नारायण: पिता यस्य माता चापि हरिप्रिया। भृग्वादिमुनय: पुत्रा: तस्मै विखनसे नम:।। संख्या१०. त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सिरीज १२१.) श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक श्रीरामानुजाचार्य स्वयं वैखानस थे।* (*आकाशगंगानिकटे सर्वशास्त्रार्थपारग: रामानुज इति ख्यातो विष्णुभक्तो जितेन्द्रिय:। तपश्चकार धर्मात्मा वैखानसमतेस्थित:। स्कन्द वैष्णव खण्ड २१.३.)

लोक में ऐसा प्रवाद प्रचलित है कि तिरुमल नाम्बीने रामानुजाचार्य को श्राद्धभोजन के लिए बुलाया और प्रतिज्ञा ली कि जब तक पाञ्चरात्र में दीक्षित नहीं होते तब तक श्राद्ध

भोजन पूर्ण नहीं होगा। रामानुजाचार्य के श्रीभाष्य, गीताभाष्य आदि ग्रन्थों के अध्ययन से भी यही पता चलता है कि उन्होंने दिव्य प्रबन्धों का पूर्ण अध्ययन नहीं किया और तेनकलाई प्रयुक्त प्रपत्ति से वे सुपरिचित न थे।

कुछ धार्मिक विश्वास ईश्वर की देन हैं। इस अर्थ में वेद, कुरान, बाईबिल आदि सभी धर्मों के मूलग्रन्थ हैं। इसी अर्थ में वैखानस सूत्र भी हैं। विखना को कभी ब्रह्मा कभी ब्रह्मा का पुत्र और कभी विष्णु का पुत्र कहा जाता है। जैसे अन्य सूत्रों की रचना की गयी वैसे इन सूत्रों की रचना नहीं की गयी है। उनका दर्शन किया गया है जैसे वेद के ऋषियों ने वेद मन्त्रों को देखा। वाङ्मय का अवतरण और माध्यम दोनों अपौरुषेय हैं। अत: यह सौत्र वाङ्मय विखना मुनि के व्यक्तित्व से भी बढ कर है।

भृग्वधिकार में विष्णु और विखना का संवाद है। वहां पर विखना को सारे मानुष और दैविक शास्त्र विष्णु ने ही पढाये। तब भगवान की आज्ञा पाकर विखना ने नौ मानस पुत्रों की सृष्टि की और उनको भी सारे शास्त्र पढाये।* (*काश्यपोत्रिर्मरीचिश्च वसिष्ठोऽगिंरसो ह्यहम्। पुलस्त्य: पुलहश्चैव क्रतुश्च नवसंख्यका:।। भूमिका पृ.५. मरीचिविमानार्चनकल्प।) मत्स्य में ५३ वे अध्याय में मुनियों ने प्रश्न किया पुराण संख्या-माचक्ष्व सूत विस्तरश: क्रमात्। दानधर्ममशेषं तु यथावदनुपूर्वश:।।१।।

सूत उवाच--

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता: ।।३।।
..पत: तानि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमा:।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ।।१२।।

मुनियों ने प्रश्न किया -- हे सूत! विस्तार के साथ पुराणों की संख्या क्रमश: बताओ। सम्पूर्ण दान धर्मों के बारे में भी अनुपूर्वश: बताओ।

सूतने प्रत्युत्तर दिया--

सब शास्त्रों के पहिले सर्वप्रथम ब्रह्मा ने पुराणों का स्मरण किया उसके बाद ही ब्रह्मा के मुख से वेद फूट पडे।

हे मुनियों! सुनो, अब मैं उनको नाम लेकर बताता हूँ। ये सारे ब्रह्मा ने पहिले मरीचि को बताये।

यह एक नया प्रस्थान है। सब शास्त्रों के पूर्व ब्रह्मा ने पुराणों की सृष्टि (स्मृति) की। याद किया और उपस्थित हो गये। मानों वेदों के समान पुराण भी नित्य हैं और प्रलय दशा में भी सूक्ष्म रूप से रहते हैं। और उसके पश्चात् वेद ब्रह्मा के मुख से फूट पडे क्यों कि पुराणों का स्मरण हो आया तो फिर बिना आयास या चिन्तन के मुख से निकल पडना स्वाभाविक ही है। ब्रह्मा ने इन सब को वेदों सहित पुराणों को मरीचि को सुनाये। स्मृति भी दर्शन शास्त्र में आप्त वचन के समान प्रमाण है।

मरीचि वैखानस सम्प्रदाय के अति आदरपात्र प्रतिष्ठापक आचार्य है। ये ब्रह्मा की मानसी सृष्टि से पैदा हुए। सृष्टि की मानसी और जैवीय दो प्रक्रियायें मुख्य हैं। मानसी सृष्टि में स्थूल शरीर का क्या काम?

वैखानस के एक शाखा होने में चरण व्यूह ने ही एक सन्देह व्यक्त किया है।* (*चरण व्यूह ने दूसरे अध्याय में वेद की शाखाओं का वर्णन किया है।) इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैखानसों का कोई स्ववेद नहीं है। वैखानसों की अपनी कोई गुरुपरस्परा नहीं है यह अन्यत्र कहा जा चुका है। इस सन्दर्भ में यह श्लोक--

श्रीलक्ष्मीवल्लभाद्यन्तां विखनामुनिमध्यमाम् ।
*अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।**

(*यह श्लोक डाक्टर कालाण्ड ने अपने श्रौतसूत्र की भूमिका में उद्धृत किया है। यह श्लोक उनको तिरुमल तिरुपति देवस्थान के आस्थान पण्डित वैखानस सम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थों के सम्पादक द्वारा प्रदत्त श्रौतसूत्र के हाशिये में प्राप्त हुआ है।)

इस श्लोक के अनुसार विष्णु प्रथम आचार्य तथा बीच के विखना मुनि और सबसे नजदीकी हमारे गुरु - आचार्य, इस गुरु परम्परा को नमस्कार करता हूँ।

लक्ष्मीवल्लभ पदका प्रयोग ही अस्थान-प्रयुक्त है क्योंकि वैखानस सम्प्रदाय में लक्ष्मी केवल ऐश्वर्य या विभूति है। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के समान वैखानस सम्प्रदाय में लक्ष्मी का प्राधान्य नहीं हैं। दूसरे मत के कथनानुसार ब्रह्मा ने मरीचि को पुराणों का विस्तार से सार बताया पर एक भी पुराण वैखानस सम्प्रदाय का पोषक मत परक नहीं है। और यह श्लोक ग्रन्थमें नहीं, ग्रन्थ में प्रक्षिप्त भी नहीं किसी पाठक ने अपनी सुविधा के लिए बतौर याददाश्त के लिख लिया है।

श्रौतस्मार्तादिकं कर्म निखिलं येन सूत्रितम् ।
तस्मै समस्तवेदार्थविदे विखनसे नमः ।।

यह श्लोक ग्रन्थारम्भ में प्राय: समस्त वैखानस ग्रन्थों में देखा जा सकता है।

गुरु परम्परा को नमस्कार करने की भारतीय परम्परा पुरानी है। आद्य आचार्य से लगाकर सद्य: या निकटतम आचार्य या गुरु को नमस्कार करने की परम्परा है। क्यों कि वैखानस सम्प्रदाय में कोई गुरु परम्परा नहीं है अत: विखना पर ही आकर रुक जाते हैं।

हम अमुक गुरु के शिष्य है ऐसा किसी पुष्पिका में प्राप्त नहीं है (चारों आचार्यों के)

वैखानस वेद

वेदानां व्यासनात्पूर्वं प्राग्रूपं मिलितं तु यत् ।
तां तु वैखानसीं शाखामिति ब्रह्मविदो विदुः।।
तत्तमष्ट्यात्मकं सूत्रं प्रोक्तं विखनसा तथा। यज्ञाधिकार ५१.१०-११.

कृष्ण यजुर्वेद तैत्तरीय शाखा के दो भेद प्रसिद्ध हैं। १.औखेय और २.खाण्डिकेय।

काण्डानुक्रमणी के अनुसार उख तित्तरि का शिष्य था। यद्यपि चरणव्यूह में आत्रेयी शाखा की चर्चा नहीं हैं तो भी ऐसा प्रतीत होता है कि औखेयों का ही एक उपभेद है क्यों कि आत्रेय साधारण परम्परा के अनुसार उख का शिष्य था।

तैत्तरीयों का और आत्रेयों का घनिष्ठ सम्बन्ध अनेक ग्रन्थ तथा सम्प्रदायसिद्ध और पुष्ट है। इस शाखा का तित्तरि ने उख को उपदेश किया। उखने आत्रेय को जिसके द्वारा इस शाखा का प्रवर्तन किया गया।

कृष्ण यजुर्वेद के छह श्रौत सूत्र हैं। बोधायन, भारद्वाज, आपस्तम्ब, हिरण्य-केशी, वाधुल तथा वैखानस।

शौनक ने अपने ग्रन्थ चरण व्यूह में वाधुल तथा वैखानस का नामोल्लेख ही नहीं किया है। सम्भवत: शौनक के समय तक ये दोनों सम्प्रदाय आर्य-परिवार में अन्तर्भुक्त नहीं हुए थे अत: इनका उल्लेख नहीं किया गया है।

सत्याषाढ श्रौतसूत्र के टीकाकार महादेव ने अपनी वैजयन्ती टीका में वैखानस श्रौतसूत्र से बहुत से उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। गौतमधर्म सूत्र में भी ३.२ वैखानस का नाम

है। वानप्रस्थ के सन्दर्भ में ३.२६ श्रामणकेन अग्निमाधाय कहा है।* (*देखिये - बोधायन धर्मसूत्रं २.६.७. तथा वसिष्ठ ९.१०.) बोधायन के टीकाकार गोविन्दस्वामी ने कहा है -- वैखानसोपि वानप्रस्थ एव।

सूत्र साहित्य तीन प्रकार का है-- श्रौत, गृह्य और धर्म। श्रौत यज्ञ यागादिकों से सम्बन्धित है। गृह्य में गृहस्थ जीवन में उपयुक्त संस्कारों का वर्णन है। धर्म में वर्णाश्रम के अनुसार सम्पाद्यमान कृत्यों में काम में आनेवाले संस्कारों का वर्णन है। इनके अतिरिक्त कल्पसूत्र भी हैं। कृष्ण यजुर्वेद के कल्पसूत्र हैं-- आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी बोधायन, भारद्वाज और वैखानस।

वैखानस कल्पसूत्र कृष्ण यजु: शाखा का ही है। वैखानस कल्पसूत्र की विशिष्टता है-- अष्टादश संस्कार, श्रामणिक अग्नि का कथन, सन्यासी का त्रिदण्डधारण*, (*देखिये - बोधायन धर्मसूत्र २.६.१७. तथा वसिष्ठ ९.१०.) वैष्णव सम्प्रदाय के लोग त्रिदण्डी है जब की शंकर सम्प्रदाय के एक दण्डिन्। गर्भ वैष्णव संस्कार, विष्णुबलि और विष्णु का पारम्य आदि।

हिरण्यकेशी श्रौत सूत्रों पर महादेव ने अपनी टीका वैजयन्ती में कहा है-- व्यास से तित्तरिने वेद ग्रहण किया। इस पर बोधायन ने बहुत विपुल बृहत्सूत्रवृत्ति लिखी। फिर भारद्वाज ने। उसके बाद आपस्तम्ब हिरण्यकेशी उसके बाद केरलीय वाधूल और अन्त में वैखानस। अत: सूत्रों पर व्याख्या करनेवालों में वैखानस सबसे कनिष्ठ व्याख्याकार हैं। नयी व्याख्या का अर्थ है पुराने सम्प्रदाय से हट कर नवीन सम्प्रदाय की नींव या पुराने सम्प्रदाय के प्रति अनास्था और विद्रोह। मूल सूत्र निर्मित और वैखानस के टीका करने के समय में इतना दीर्घकालीन व्यवधान होगा कि मूल सम्प्रदाय प्राय: लुप्त और विस्मृत हो गया होगा।

वैखानस धर्म सूत्र

त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सिरीज म गणपति शास्त्रीद्वारा १९१३ ई.में. सम्पादित। १९२७ में कालाण्ड ने भी इसका सम्पादन किया। अंग्रेजी अनुवाद १९२९ में प्रकाशित किया।

पदस्व विश्वचर्षणे (ऋ.९.६६.) के वैखानस ऋषि हैं तथा आयदिन्द्रश्चदद्वहे (ऋ.८.३४.१६-१८.) इन तीन मन्त्रों के दृष्टा अंगीरस कुल के सहस्त्रवसुरोचिष

माने जाते हैं। कौन ऋषि हैं? इसका निर्णय वृद्ध गुरुओं पर छोड देना चाहिए।

सत्याषाढ श्रौत सूत्र पर महादेव ने अपनी टीका वैजयन्ती में कृष्ण यजुर्वेद की शाखायें कहीं हैं-- बौधायन - भारद्वाज -- आपस्तम्ब -- हिरण्य केशिन् -- बाधूल और वैखानस। चरण व्यूह में बाधूल और वैखानस का नाम नहीं है।

गौतम धर्म सूत्र ३.२. वैखानस का उल्लेख है। गौतम धर्म सूत्र ३.२६ में 'श्रामणकेन अग्निमाधाय' कहा है। बोधायन धर्म सूत्र २.६.१७. तथा वसिष्ठ ९.१०. में भी जिस पर टीका करते हुए हरदत्त ने 'वैखानस शास्त्र' ऐसा अर्थ किया है। बोधायन धर्म सूत्र २.६.१७. में भी यही सूत्र है और गोविन्द स्वामी टीकाकार ने 'वैखानसोऽपि वानप्रस्थ एव' कहा है। संज्ञान्तरकरणं तु संव्यवहारार्थम्। वैखानसऋषिणा प्रोक्तं वैखानसशास्त्रम् इत्यादय: समुदाचारा:।

उत्सव, प्रायश्चित्त, दान इत्यादि की प्रशंसा योगादि द्वारा अर्चक की योग्यता वृद्धि मूल वैदिक यज्ञों में पिष्टि आदि का ही आहुति विधान है, पर वैखानसों ने उसके साथ पुष्प आदि अनेक पदार्थ जोड दिये।

सूत्रेतर वाङ्मय को प्राय: आगम पद से सम्बोधित किया जाता है पर ये तन्त्र, अधिकार, काण्ड एवं संहिता भेद से भिन्न हैं। वैखानस आगमग्रन्थों की सूची है पर प्राप्त ग्रन्थ बहुत कम हैं।* (*वाङ्मय अध्याय देखिये) इनमें प्रतिपादित विषय मूलत: समान होने पर भी अवान्तर में दोनों में पाठ समान नहीं है।

१. मन्दिर निर्माण

अ. भूपरीक्षण भूमि ९ प्रकार की है ५ शुभ और ४ अशुभ

आ. हलाकर्षण

इ. बालालय

ई. वस्तुसंग्रह

उ. मूल मन्दिर का निर्माण

ऊ. मूर्ति निर्माण

ऋ. मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा

क. अन्य आवश्यक सामग्री एवं उपकरण, मान-प्रमाण

ख. पञ्चबलि

ग. मृत्

घ. मूर्ति का परिमाण

च. आभरण

छ. परिवार देवता

ज. अंकुरार्पण

झ. मूर्ति की प्रतिष्ठा

२. पूजा

नित्यपूजा

जलानयन आदि सेवा

परिचारकों की कार्य सम्पादकता

अभिषेक

परिवार देवताओं की पूजा

विष्णु की प्रार्थना

पुष्पोपहार

पूजा योग्य पुष्प और वर्ज्य पुष्प

अवतारों की पूजा

अभिषेक विशेष अवसरों पर

मज्झिमनिकाय (बारहवें) महासीहनाद सुत्त में चार प्रकार का तप दिया है-- तपस्विता, रुक्षता, जुगुप्सा और प्रविविक्तता नंगे रहना, अंजली में ही भिक्षा मांग कर खाना, बाल उखाड कर निकालना, कांटों की शय्या पर सोना इत्यादि देह को दण्ड देना तपस्विता है। कई वर्षों तक धूल शरीर पर रहे उसको रुक्षता कहते हैं जुगुप्सा हिंसाशून्यता है। जंगल में अकेले रहना प्रविविक्तता है।

बुद्ध के दो उपदेश प्रमुख है।

१. कामोपभोग में सुख न मानना।

२. शरीर पीडन।

क्योंकि अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में बुद्ध एक अवतार रूप में स्वीकृत हैं पर वैखानस सम्प्रदाय में नहीं अत: इन दोनों तत्त्वोपदेशों की परीक्षाकर -- इनके विपरीत वैखानस सम्प्रदाय होगा ऐसा मानना पडेगा।

शरीर को कष्ट देने का सम्प्रदाय वैखानस का अपर पर्याय बन गया है -- पर कामोपभोग -- भुक्तिमुक्तिका सम्प्रदाय इसीका विद्रोह होगा। क्या वैखानस सूत्र और वैखानस आगम समन्वित सिद्धान्त का प्रतिपादन क े हैं?

जहां सूत्रों में श्रौत गृह्य, स्मार्त अन्य सूत्रों से बहुत मिलते जुलते हैं वहीं पर परवर्ती भृगु, मरीचि, अत्रि और कश्यप के ग्रन्थों में वास्तु, मन्दिर मूर्ति निर्माण का प्राधान्य है। यद्यपि यज्ञीय प्रक्रिया को छोडा नहीं है।

यज्ञीय प्रक्रिया में अनावश्यक रूप से विष्णु का नामोच्चारण और तन्त्र-प्रयुक्त बीजाक्षरों का समावेश देखने को मिलता है। यह मूल आपस्तम्ब बोधायन सूत्रों में नहीं है।

और फिर चारों आचार्यों का अपना अपना सम्प्रदाय है। इनके सम्प्रदाय भेद पर काम नहीं किया गया है, पर अत्रि ने अपने समूर्ताचनकल्प में कहा है--

देवदेवस्य विष्णोस्तु उत्तमार्चा क्रमस्य वै
चतुर्भिर्मुनिभिः प्रोक्ताश्चत्वारो विधयः शुभाः
चतुर्वेदोद्भवैर्मन्त्रैश्चतुर्वेदसमाश्रिताः
चातुर्वर्ण्यसमृद्ध्यर्थं चतुराश्रमसिद्धिदाः
धर्मार्थकाममोक्षाख्यचतुर्वर्गस्य साधनम्
भृगुणा काश्यपेनापि मया (अत्रिणा) चैव मरीचिना
ज्ञेयास्ते भगवद्भक्तैर्द्विजैः पूजोत्सवादिकाः
तदुक्तेनैव मार्गेण हरेरर्चा समाचरेत् ।। १.३७-४१.

विष्णु की अर्चा के लिए चारों आचार्यों ने चार विधियां बताई हैं।

वैखानसविधिश्चैव चतुर्धा भवति द्विजाः
आत्रेयः काश्यपीयश्च मारीचो भार्गवस्तथा
एतैर्वैखानसं प्रोक्तं सूत्रं वैखानसं स्मृतम्
एषां चतुर्विधानां तु मूलं तत्सूत्रमेव यत्
आत्रेयाद्यास्त्विमे सर्वे तस्मात् वैखानसाः स्मृताः
अन्योन्यसंकरे तस्मात् दोषो नास्त्येक एव सः अत्रि.८०.१७-२०.

***

आगम

वैष्णव या भागवत सम्प्रदाय कहते ही आगम शब्द सामने आता है। वैष्णवागम पाञ्चरात्र तथा वैखानस आगम इस प्रकार से दो वर्गों में बंटा है। शाक्त वाङ्मय भी तन्त्र आगम भेद करता है।

आगम पद के कोशों में तीन अर्थ दिये हैं। वेद, आगम और शास्त्र।

आगच्छत्ति विदन्ति अनेन इति आगमः वेदः। पाञ्चरात्रादि तन्त्रों का उपांग होने के कारण धर्मशास्त्र में ही अन्तर्भाव है।

देवसूरि ने प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार ४.१ ग्रन्थ में 'आप्तवचनादाविर्भूतार्थ-विशेषसंवेदनम्' ऐसी परिभाषा की है। सांख्यसप्तति की टीका जयमंगला में आप्तपद का अर्थ --

स्वकर्म्मणाऽभियुक्तो यो रागद्वेषविवर्जितः।
निर्वैरः पूजितः सद्भिः आप्तो ज्ञेयस्स तादृशः।।

अपने कर्म में अर्थात् वर्णाश्रम विहित कर्ममें संप्रक्त, रागद्वेष विवर्जित, वैर से परे, सज्जनों से पूजित ऐसे व्यक्ति को आप्त कहते हैं। शब्दकल्पद्रुम में--

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां तथार्चनं
साधनं चैव मन्त्राणां पुरश्चरणमेव च
षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः
सप्तभिर्लक्षिणैर्युक्तं त्वागम तद्विदुर्बुधाः।

जहां सृष्टिप्रलय की चर्चा हो, देवताओं के अर्चना का विधान हो, मन्त्रों के साधन की प्रक्रिया बताई गयी हो, पुरश्चरण का वर्णन हो, षट् कर्म साधन का विस्तार हो, ध्यान योग (चतुर्विध) बताया गया हो इन सात लक्षणों से युत ग्रन्थजात को विद्वान लोग आगम कहते हैं। पर वैखानस आगमों में ये लक्षण अनुवर्तित नहीं होते। आलय अर्चा का ही विशेष प्राधान्य है।

ज्योतिष को आगम शास्त्र से निष्पन्न कहा गया है--

ज्योतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकमस्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये। बृहत्संहिता-वाराहमिहिर ९.७.

यह आगम से निकला है। अत: इसका मूल वेद नहीं है। अत: किसी निर्धारण पर नहीं पहुँचा जा सकता। अत: अनेक विद्वानों के मत दिये जाते हैं। यद्यपि वैखानस वाङ्मय में तन्त्र, काण्ड, संहिता और अधिकार इस नाम से लिखे गये हैं पर वैखानस आगम पद प्राय: सर्वलोक विदित और प्रयुक्त है।

आगम पद कहते ही वेद विरुद्ध वाङ्मय का बोध होता है। वेद विरुद्ध होना आगम पद का पर्यायार्थ जब हो गया है तो वैदिक आर्य सम्प्रदाय के विरुद्ध होगा ऐसा अनुमान करने का कारण हो सकता है। अत: वैखानस भी पाञ्चरात्र के समान वेदबाह्य होगा।

संहिता पद का अर्थ व्यापक रूप से वस्तुका विचार है। समग्र विचार भी। उत्पल ने गर्गका वचन प्रस्तुत किया है संहिता में थोडा बहुत सभी विषयों का समावेश है ऐसा बोध होता है।

सूर्यपितामहः व्यासो वसिष्ठोत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मुनिरंगिरा।।
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनोभृगुः।
शौनकोष्टादशश्चैते ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तकाः।।

इण्डिया एस सीन इन बृहत्संहिता पृ.४२९पर उद्धृत.

वैखानस वाङ्मय

वैखानस साहित्य चार प्रकार का है-- तन्त्र, अधिकार, काण्ड और संहिता। विखना सूत्र पूर्वतन्त्र कहाता है।

तन्त्र पद का क्या अर्थ है? तन्त्र पद से शाक्त वाङ्मय का बोध प्रसिद्ध ही है। पञ्चतन्त्र कहानियों की लोक प्रसिद्ध पुस्तक हैं। अनेक ज्यौतिष ग्रन्थों का नाम तन्त्रान्त है। तन्त्रवार्तिक मीमांसा का ग्रन्थ है। शंकर ने ब्रह्मसूत्र -- 'न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् २.४.९ पर टीका करते हुए-- अथवा तन्त्रान्तरीयाभिप्रायात् -- लिखा है। कोई भी दार्शनिक सिद्धान्त। इस पर सम्पादक की टिप्पणी- तन्त्रान्तरं सांख्यस्मृतिः। उदाहरण भी सांख्य कारिका २९ का दिया है।

अत्रि के आत्रेय तन्त्र विष्णु तन्त्र, उत्तर तन्त्र इस प्रकार तीन तन्त्र हैं जिनकी ग्रन्थ (श्लोक) संख्या ८८००० है।

भृगु-वासाधिकार, चित्राधिकार, मानाधिकार, क्रियाधिकार, अर्चाधिकार, यज्ञाधिकार, वर्गाधिकार, प्रकीर्णाधिकार प्रतिगृह्याधिकार, निरुक्ताधिकार, और खिलाधिकार। इस प्रकार कुल १३ अधिकार ग्रन्थहैं जिन की कुल ग्रन्थ संख्या ६४०० है।

कश्यप के सत्यकाण्ड, तर्ककाण्ड और ज्ञानकाण्ड तीन ग्रन्थ हैं। इनकी ग्रन्थ संख्या ६४००० है।

मरीचि के जयसंहिता, आनन्दसंहिता, संज्ञानसंहिता वीरसंहिता, विजयसंहिता, विजितसंहिता, विमल संहिता और ज्ञानसंहिता कुल मिलाकर आठ संहिताये हैं जिनकी कुल ग्रन्थ संख्या १८४००० हैं। वाङ्मय की कुल ग्रन्थ संख्या ४ लाख है।

इन सबका मूल वैखानस सूत्र ही है।*

आत्रेय: काश्यपीयश्च मारीचो भार्गवस्तथा।
एतैर्वैखानसं प्रोक्तं सूत्रं वैखानसं स्मृतम् ।।
एषां चतुर्विधानां तु मूलं तत्सूत्रमेव यत्।
आत्रेयाद्यास्त्विमे सर्वे तस्माद् वैखानसा: स्मृता:
अन्योन्यसंकरे तस्मात् दोषो नास्त्यैक एव स: ।। अत्रि संहिता. ८०.१८-२०)

अत: अन्योन्य संकर में दोष नहीं है। ये चार प्रकार के ग्रन्थ चार विधियों को बताते हैं।

काण्ड

रामायण में वर्गीकरण काण्ड और सर्ग इस प्रकार का है। काण्ड उस भाग को कहते हैं जहाँ से वृक्ष उत्पन्न होता है-- मूल नहीं -- जैसे गन्ने का या बांसका। सर्ग सृष्टि का ही नाम है। अर्थात ऐसे ग्रन्थ जिनसे अवान्तर भेद उपजने की सम्भावना है। वैखानस सम्प्रदाय जीवन्त सम्प्रदाय है और उसका विकास पदे पदे देखा जा सकता है। काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ते।

संहिता

मूलभूत तत्त्व या आज्ञायें है। नियमावलि का नाम संहिता है। भारतीय विधिसंहिता न्याय पालिका की कार्य -प्रणाली की मूलाधार संहिता है। वेद में भी संहिता ब्राह्मण ऐसा भेद करते है और आर्य समाज वेद के संहिता भाग को ही प्रमाण या स्वत: प्रमाण मानता

है ब्राह्मण भाग को नहीं यद्यपि वेद को परम्परा मन्त्रब्राह्मणात्मक मानती है।

अधिकार

अधिकार सम्भवत: मूलग्रन्थ न हों। मूल अर्थात् वेदों के अधिकार पर लिखे ग्रन्थ होंगे। श्रुति के अविरुद्ध होने पर उनकी प्रामाणिकता है। ये ग्रन्थ भृगु द्वारा रचे गये हैं। भृगु की वैखानस जीवनी स्पष्टत: यही है यह कहना कठिन है क्यों कि भृगु का नाम कई पुराणों में और अनेक सन्दर्भों में प्राप्त है। कई शताब्दियों में भी।

तन्त्र

तन्त्र पद तनु विस्तार करने के अर्थ में प्रयुक्त है। विस्तार जिन ग्रन्थों में वर्णित हो ऐसे ग्रन्थों को तन्त्र कहा जाना चाहिए। साधारण बोल चाल में मन्त्र - तन्त्र ऐसा पद प्रयोग में है। यहां तन्त्र का अर्थ कार्य कलाप होगा। वैसे तन्त्र पद का प्रयोग शाक्त तन्त्रों के लिए रूढ है।

वैखानस सम्प्रदाय के २८ आर्षग्रन्थ हैं। और अत्रि, भृगु, मरीचि और कश्यप ये चारों ही उनके ग्रन्थकार हैं।

प्रतिगृह्याधिकार, सत्यकाण्ड, तर्ककाण्ड, आत्रेयतन्त्र, जय संहिता, संज्ञान संहिता, वीर संहिता, विजयसंहिता, विजित संहिता इन ग्रन्थों का लोप हो गया है।

वर्णाधिकार, मानाधिकार, चित्राधिकार, पुरातन्त्राखिल विष्णु तन्त्र, पूर्व तन्त्र, ज्ञान तन्त्र, विमल संहिता, इन ग्रँन्थों के उद्धरणों द्वारा सन्दर्भ प्राप्त हैं।

आजकल प्राप्त ग्रन्थ --

अत्रि समूर्तार्चनाधिकरण।

कश्यप ज्ञानकाण्ड।

भृगु क्रियाधिकार, खिलाधिकार, अर्चनाधिकार - केरल विश्वविद्यालय में हस्त लिखित ग्रन्थविभाग में हस्त लिखित ग्रन्थ उपलब्ध
निरुक्ताधिकार - पार्थसारथि भट्टाचार्य का व्यक्तिगत हस्तलिखित ग्रन्थ।

मरीचि विमानार्चनकल्प देवस्थान द्वारा १९२६ में प्रकाशित। इसमें ५२२ पृष्ठ हैं। एक उपोद्घात है पर सम्पादक का नाम नहीं है।

आधुनिक ग्रन्थों में गोण्डा द्वारा लिखित एक लेख एवं उनके शिष्य द्वारा काश्यप ज्ञान काण्ड का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित है। वैखानस वाङ्मय में निम्नलिखित श्रेण्य ग्रन्थ हैं --

अत्रि द्वारारचित तन्त्र पदान्त	४
भृगु द्वारा रचित अधिकार पदान्त	१३
कश्यप द्वारा रचित काण्ड पदान्त	३
मरीचि द्वारा रचित संहिता पदान्त	८

	२८.

इन २८ ग्रन्थों का मूलाधार वैखानस सूत्र ही है।*

तंत्रान्तनामविख्यातमत्रिग्रन्थचतुष्टयम्
अधिकारान्तनामान: त्रयोदशभृगोरपि
त्रय: काण्डान्तनामानो ग्रन्था: काश्यपनिर्मिता:
मरीचिना संहितान्तनामानोऽष्टाविति स्थिति:
सर्वेषामपि मूलं स्यात् विखनस्सूत्रमादिमम्।)

अत्र प्रथमं प्रधानं विखनस्सूत्रम्

अत्रि - पूर्वतन्त्रम् , आत्रेयतन्त्रम्, विष्णुतन्त्रम्, उत्तरतन्त्रामिति अत्रिणा अष्टोत्तराशीति सहस्रग्रन्था उक्ता:।

भृगु - पुरातन्त्र, वासाधिकार, चित्राधिकार, मानाधिकार, अर्चाधिकार, यज्ञाधिकार, वर्णाधिकार, प्रतिगृहाधिकार, निरुक्ताधिकार, खिलाधिकर रूपेषु त्रयोदशाधिकारेष्वपि संख्या पूर्ववत् ।

काश्यप - सत्यकाण्डं तर्ककाण्डं ज्ञानकाण्डमिति त्रिविधकाण्डेष्वपि चतुष्षष्टिसहस्रग्रन्था उक्ता:।

मरीचि - मया च जयसंहिता, आनन्दसंहिता, संज्ञानसंहिता, वीरसंहिता, विजयसंहिता, विजितसंहिता, विमलसंहिता, ज्ञानसंहिता अष्टसु संहितासु लक्षाधिक चतुरशीति

सहस्त्रग्रन्था उक्ता: । मरीचि - पृ.३२९.

यहां मरीचि के विमानार्चन कल्पका नाम पठित नहीं है। यह ग्रन्थ अत्यधिक प्रामाणिक माना जाता है और सर्वाधिक प्रचार में है।

वैखानस की प्राचीनता

भारत में प्रचलित बहुत से सम्प्रदायों के मूल-बीज वेद में खोजे जा सकते हैं। जैसे गीता में उपदिष्ट कर्मयोग का सूक्ष्म रूप वेदों में प्राप्त है उसी प्रकार अर्चारूप पूजा का मूल वेद से ही निकल कल वैखानस समुदाय में पहुँचा जैसे गंगोत्री से निकल कर गंगा बङ्गाल के गांगेय क्षेत्र में पहुंच गयी हो।

वैसे विद्वानों का साधारणतया यह विश्वास है कि वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति नहीं है। भक्ति जब भारतीय धर्मों में पाई जाती है तो वह अन्यत्र से आई है। पद्मपुराण में 'उत्पन्ना द्राविडे चाहम्' कहा है अर्थात् भक्ति की उत्पत्ति द्रविड देश में बताते है। आर्य-द्रविड का ऐतिहासिक राजनीतिक सम्बन्ध भारतीय इतिहास में किसी से छिपा नहीं है। वेदों में जो देवतओं के नाम मिलते हैं उनमें उनकी मूर्ति या आकृति का जिक्र नहीं है। यज्ञों की कुण्डोंकी रचना का वर्णन है। "मोहंजोदारों में मूर्तियां पाई गयी हैं। शायद ये पूजाकी मूर्तियां है।

भारत में मूर्तियों को शारीरिक सौंदर्य नहीं दिखाते केवल भाव प्रदर्शन मुख्य है।

मरीचि ने ऋचा का एक अंश ही उद्धृत किया पर शौनक ने पूरा मन्त्र ही पढ डाला --

शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि नित्यं विष्णवर्चनं परम् ।
प्रवः पान्तमन्धसो धीत्यर्धेर्चेन विधानतः ।। *

(* पूरा मन्त्र इस प्रकार है-- प्रव: पान्तमन्धसोधियायते महेशूराय विष्णवे चार्चत या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तथुरर्वतेव साधुना ऋ.१.१५५.१.)

एक ही ऋचा को उद्धृत कर यह बताने का प्रयत्न किया है कि मूर्ति पूजा ऋग्वेद की कोई पुरानी परम्परा है उसको लेकर दोनों अर्थात् शौनक एवं विखना ने आगे बढाई। टीका इस प्रकार है--

प्रार्चत प्रकर्षेण अर्चत, आराधनं कुरुत, वः युष्मान्, पान्तं परिपालयन्तं प्रार्चत। अन्धसः अन्नात् अन्नस्य समर्प्यस्य सद्भावात् यागादिषु अल्पस्यैव आग्नौ होमात् तेन आराधन अल्पमेव भवति। अर्चायाः पूजने यावदिष्टं दातुं शक्यते इति अभिमत नाना नैवेद्य समर्पणार्हमर्चनम् -- युक्तमित्युक्तं भवति। धियायते = स्तुतिप्रियाय महे = महते--

वैखानस सम्प्रदाय की तीन बाते प्रधान हैं--

वास्तु, मन्दिर बनाना, मूर्ति बनाना, मन्दिर की मरम्मत आदि

मूर्ति की पूजा, उत्सव आदि

अग्नि पूजा होम यज्ञ आदि । ध्यान ।

विष्णुधर्म ने वैखानसों का तप भी एक कर्म लिखा है।* (* वैखानसानामाराध्यः तपोभिर्मधुसूदनः। ध्येयः परिव्राजकानां वासुदेवो महात्मनाम्।। विष्णुधर्म ४.३४) यहां वैखानस कृत्य तपोभिः कहा है। साधारणतया वैखानस पद से कठिन तपस्या करनेवाले ऐसा अर्थ बोध होता है। तापस पञ्चाग्नि तपस्या करनेवाले तपस्वियों का कर्म है। वैखानस पद वैखानस सम्प्रदाय के लिए कम तथा सामान्य वानप्रस्थ आश्रम के अर्थ में अधिक तथा बहलतया प्रयोग में हैं। एतावता वैखानस सम्प्रदाय नहीं है ऐसा नहीं हैं। वैखानस सम्प्रदाय के ग्रन्थ उपलब्ध हैं और वैखानस मतावलम्बी अविच्छिन्न परम्परा की घोषणा भी करते हैं। हां वैखानस सम्प्रदाय एक छोटा सा सम्प्रदाय है जिसमें क्रिया अधिक और दर्शन कम है। समग्रात्मना एक दर्शन नहीं है।

वैखानस सम्प्रदाय में यज्ञ करना तथा मूर्ति पूजा दोनों प्रमुख हैं। हो सकता है कि दो पृथक् सम्प्रदाय मिल गये हों? पुराने साहित्य में वैखानस पद के साथ तपस्या तितिक्षा जैसे लक्षण जुडे हैं। विष्णु पूजा या यज्ञीय मार्ग नहीं। तब तपस्या से यज्ञ और यज्ञ से मूर्ति पूजा यह विकास क्रम होगा?

छान्दोग्य ५.१०.२ पर टीका करते हुए शंकर ने वैखान और परिव्राजक को पृथक् गिना है।

शतं वैखानसा ऋषयः -- सौ वैखानस ऋषि है। सामवेद ६५३ सर्वानुक्रमणी ९.६६ तथा आर्षानुक्रमणी ९.१६ के अनुसार सौ वैखानस ऋषि हैं-- पवस्व शतं वैखानसा अष्टादश्यानुष्टुप् परास्तित्र आग्नेय्यः सर्वानुक्रमणी ९.६६ असिद्धगोत्रास्तु पवस्वसूक्तं वैखानसानाम शतं विदुस्ते। वैखानस एक ऋषि का नाम या एक ऋषिगण

का नाम दोनों अर्थों में प्रचलित है। इनके नाम के साथ व्यपोहिनी पद जुडा है। वायु पुराण ने भस्मचय (यज्ञकुण्ड से निकली) का नाम बताया है जब कि अन्यत्र व्यपोहिनी को एक दीक्षा संस्कार कहा है। व्यपोहिनी एक स्तोत्र का नाम भी है। इसका शाब्दिक अर्थ हराना या दूर करना है।*

(* कुशोच्चया बालखिल्या: सम्भूता: परमर्षय:।
मनोजवा: सर्वगता: सार्वभौमाश्च तेऽभवन्।।
जाता भस्म व्यपोहिन्यां ब्रह्मर्षिगणसम्मता:।
वैखानसा मुनिगणास्तप: श्रुतिपरायणा:।। वायु ६५.५५-५६.)

अशुभकर्मों को दूर करने के कारण व्यपोहिनी कहा है।* (* भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीति कीर्तिता: कूर्म ४२.२१.) उत्तररामचरित में वैखानसाश्रम का प्रसंग है।*

(* एतानि तानि गिरिनिर्झरिणी तटेषु।
वैखानसाश्रमतरूणि तपोवनानि।।
येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते।
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि।। उत्तर राम चरित १.२५.)

आतिथेय इनका विशेषगुण बताया है। शायद कालिदास ने भी जब दुष्यन्त द्वारा वैखानस व्रत की शकुन्तला के प्रसंग में बात कही तो उनका संकेत भी अतिथियों की परम सेवा करने से होगा। वैसे भी तप में लगे रहना और श्रुतिपरायण होना इनका गुण है।

वैखानस एक ऋषि विशेष का नाम। वैखानस धर्म प्रश्न के ग्रन्थ के प्रणेता। यह धर्मशास्त्रविषयक ग्रन्थ है। वैखानस एक वैदिक ऋषि समुदाय जिसमें १०० मुनि थे जिन्होंने* (*ऋ.९.६६.) 'पदस्व विश्वचर्षणे' मन्त्र को देखा था। ये ब्रह्मा के नाखून से पैदा हुए थे।* (*तै. आरण्यक १.२०.३.) पञ्चविंशब्राह्मण के अनुसार रहस्यु देवमलीम्लुच ने मुनिमारण नामक स्थान में इनका वध किया था।* (*पञ्चविंशब्राह्मण १४.४.७. तै. आ. १.२.३.) इसी ऋषि समूह में पुरुहन्मन नामक ऋषि भी थे।* (*तैत्त. आ. १४.९.२९.) चतुर्दशविद्यास्थानों में* (*चार वेद ६ वेदांग मीमांसा, न्याय पुराण तथा धर्म शास्त्र असंग ने विद्या विभाजन में १. अध्यात्म विद्या २. चिकित्सा ३. हेतु विद्या ४. शब्दविद्या जिसमें धर्म अर्थ पुद्गल (जीव) काल संख्या और सखिलाधिकरण (व्याकरणशास्त्र) और शिल्प कर्म स्थान विद्या को गिनाया है। राहुल: बौद्ध धर्म पृ.९६.) वैखानस का नाम नहीं है। निबन्ध ग्रन्थों में

वैखानस ग्रन्थों से उद्धरण भी संगृहीत नहीं है। षड्दर्शन समुच्चय आदि षड्दर्शनों का वर्णन करनेवाले ग्रन्थों में वैखानस दर्शन का उल्लेख नहीं है। ब्रह्मसूत्र भाष्य में शंकर ने पाञ्चरात्र का तो खण्डन किया है पर वैखानस का वैष्णव सम्प्रदाय के रूप में नाम तक नहीं लिया।

यहां तक कि प्रबोध चन्द्रोदय तथा मत्तविलास प्रहसन में वैखानस पद सम्प्रदाय विशेष के अर्थ में प्रयुक्त नहीं है।

'वेदानां सामवेदोस्मि' गीता में कहा है। सामवेद में एकान्त धर्म के बीज खोजे जा सकते हैं। यह एकान्त धर्म नारायण को प्रिय है। नीलकण्ठ ने महाभारत १२.३४८.३. में प्रयुक्त एकान्तिन् शब्द की व्याख्या -- एकान्तिनो निष्कामभक्ता: ऐसा किया है।

सामन् का सम्बन्ध अनार्यों से भी था। विष्णु सहस्र नाम में वैखान: सामगायन: कहा है। अर्थात् वैखान सामगायन करते थे।

वैखानस एक सामन् विशेष का नाम है। वैखानसं पूर्वेहन् साम भवति' यह साम विशेष है।* (*मृतान् वैखानसान् ऋषीन् एतेन साम्ना समैरयत वद्वाव स तर्ह्यकामयत् कामसनि साम वैखानसं काममेवैतेनावरुन्धे। ताण्ड्यब्राह्मण १४.४.९.)

मरीचि से ऋषियों ने प्रश्न किया -- भगवन् केन मार्गेण कैर्मन्त्रै: कं देवं अर्चयन्त: कान् लोकान् गमिष्यन्ति?

मरीचिरुवाच -- सुप्रसन्नं परमात्मात्मनं नारायणं ध्यात्वा ... वन्द्य श्रुत्यनुकूलेन मार्गेण चतुर्वेदोद्भवै र्मन्त्रै: तमर्चयन्त: श्रुतिभिरभिहितं तद्विष्णो: परमं पदं गच्छेयु:।

ऋषियों के प्रश्न से यह स्पष्ट है कि किस देवता की अर्चना-पूजा करें यह उनको ज्ञात न था।

साफ ही है, वैखानसों का अपना कोई वेद नहीं है अत: चतुर्वेदोद्भवैर्मन्त्रै:' चारों वेदों से लेकर पूजा करने का उपदेश दिया है।* (*मरीचिविमानार्चनकल्प पृ.२)

यह प्रसिद्ध है कि पहले वेदव्यास ने ही वेदों का विभाजन किया। इस विभाजन के पूर्व वेद सब एक ही थे। उसी अवस्था में जब वेदों का विभाजन नहीं हुआ था वेदों की वैखानसी शाखा थी।* (*वेदानां व्यासनादर्वाक् प्राग्रूपं मिलितं तु यत्। तां तु वैखानसीं शाखां इति ब्रह्मविदो विदु:।। मरीचिविमानार्चनकल्प के उपोद्घात में भारते च कहकर उद्धृत - पृ. ३.) पर चतुर्वेदोद्भवैर्मन्त्रै: में चतुर या चार का क्या अर्थ है। और न ब्राह्मण, न आरण्यक,

और न तो कोई उपनिषत् ही।। ब्रह्मसूत्रभाष्य उपनिषत् भाष्य या गीता भाष्य भी नही है। सूत्रों में भी जो मन्त्र प्रतीक दिये गये हैं श्रौतगृह्यादि कार्यनिर्वाह के लिए वे तैत्तरीय में प्राप्त हैं। शायद उस समय की परम्परा से प्राप्त जो वैदिक सम्प्रदाय था उसको ज्यों का त्यों मान लिया गया है। अत: उपनिषत् गीता ब्रह्मसूत्र पर टीका लिखने की आवश्यकता न समझी। पर आनन्दसंहिता में --

वैखानसं तैत्तरीयं तथा वाजसंनेयकम् ।
यजुर्वेदास्त्रिधाप्रोक्ता शुद्धं वैखानसं स्मृतम् ।

यजुर्वेद तीन प्रकार का है। वैखानस, तैत्तरीय और वाजसनेय इसमें वाजसनेय और तैत्तरीय दोनों वेद अशुद्ध हैं, वान्त और तित्तिरभक्षण द्वारा पर वैखानस वेद का इस प्रकार का कोई दोष न होने के कारण (वान्त:उच्छिष्टादि) शुद्ध है। अभी तक तो इस शाखा की संहिता का पता नहीं चला है। हां कृष्ण और शुक्ल दोनों में इसका नाम पढा गया है, तो कोई प्राचीन शाखा भी हो सकती है जो अब लुप्त हो गयी हो। देवमलीम्लुच द्वारा मारे गये वैखानसों का अपने साथ अपने वेद को भी लेकर नष्ट हो जाना (क्यों कि पूर्व में वेदविद्या मौखिक ही होती थी) स्वाभाविक ही है। पर श्रौत गृह्यों में प्रतीकों का तैत्तरीय में पाया जाना? ब्राह्मण आरण्यक उपनिषत् का न पाया जाना।

कालाण्ड ने कुछ प्रतीकों को लेकर एक संग्रह वैखानससंहिता नाम से प्रकाशित किया है।

तब वैखानस पद--

१. एक ऋषि विशेष।

२. एक ऋषि समुदाय विशेष।

३. तृतीयाश्रम।

४. एक धर्म सम्प्रदाय।

५. एक दर्शन प्रस्थान।

६. वेद की एक शाखा या चरण क्यों कि श्रौत, गृह्य और धर्म तीनों सूत्र प्राप्त हैं। वैखानस गोत्र ऐसा अर्थ सायण टीकाकार ने किया है। अत: वैखानस इन अर्थों में प्रयुक्त है। परस्पर विरुद्ध मरीचि की उक्ति चतुर्वेदोद्भवैर्मन्त्रै तथा वेदानां व्यासनादार्वाक् की संगति नहीं बैठती।

उखा

उख पद का प्रयोग अथर्व वेद में प्राप्त है। तित्तरि के एक शिष्य का नाम भी पाणिनि ने बताया है।* (*तित्तरिवरतन्तुखण्डकोरवाच्छण ४.३.१०२ तेषां चरकाणां मध्ये खण्डिकेयौखेयानां ब्राह्मणे चत्वार: स्वर: ३.२६.) शतपथ ब्राह्मण के छठे प्रपाठक का नाम भी है।

- पनसाग्रे नारिकेलं कदलीपूगमेव च उखिना कांस्यपात्रे च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् पनस, आम्र, नारिकेल, कदली, पूग इन पत्तों में तथा उख और कांस्य के पात्रों में भोजन करने पर चान्द्रायण व्रत का आचरण करे।

उखा को पाद का एक भाग भी कहते हैं। पकाने के लिए कढाई जैसे किसी बर्तन के अर्थ में भी उखा पद प्रयुक्त है। उखच्छिद जल्दी टूटने वाले वर्तन के अर्थ में प्रयुक्त है।* (*ऋ.४.१९.९ Then a long time is occupied in preparing the earthern ware vessel called ukha in which fire is to be maintained for a year. Macdonell History of Sanskrit Literature p.248.) औखीय एवं औखेय ऐसे पद भी प्रयोग में हैं जिनका अर्थ उख के वंशज या शिष्य होता है। जोशी मठ को ऋषि मठ या ऊखि मठ भी कहते हैं। ऐसी वदन्ती है कि ज्योतिष्पीठाधीश्वर जुआ खेल कर सारी जायदाद हार गये फलत: उन्हें सिंहासन से च्युत कर दिया गया। ज्योतिर्मठ बदरी में है ऐसा प्रसिद्ध ही है। सब लोक जानते हैं। पर उखी मठ रुद्रप्रयाग से करीब ८० मील की दूरी पर स्थित है। बदरी से १०० मील दक्षिण होगा। जुए में हारने की घटना प्राय: ८०० साल पुरानी है पर उख शाखा का तो पाणिनि ने भी पाठ किया है अत: पदभ्रष्ट शंकराचार्य का इससे सम्बन्ध नहीं जोडा जा सकता। हां ऋषि मठ एक पुरातन स्थान है वहां पर कोई ऋषि या ऋषि सम्प्रदाय रहता होगा। वैखानस सम्प्रदाय का भी बदरी आश्रम या नरनारायण से सम्बन्ध अनेक ग्रन्थों में प्राप्त है। सम्भव है अत्रि कश्यप भृगु मरीचि इन चारों में से किसी एक ने वहां मूल स्थान बसाया हो। और वह स्थान ऋषि मठ या उख मठ के नाम से प्रसिद्ध हो गया है।

वैसे भी मरीचि का नेमिषारण्य में वास वैखानस सम्प्रदाय सिद्ध है।

वैखानस

निरुक्तकार ने इस पद का प्रयोग खोदनेवाले या माटीकाटा के अर्थ में प्रयोग

किया है। शायद वेद में पैठकर अर्थ गवेषणा हो। मत्स्य ने अरण्य में रहकर तपस्या करनेवाले को ही वैखानस कहा है।* (*तपसश्च तथारण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः। यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ।। मत्स्य १४५.२३ शायद वैखानस सम्प्रदाय में योग को बाद में अपनाया गया होगा।)

मोनियर विलियम्स ने अपने कोश ग्रन्थ में एक वैखानसीयोपनिषत् का भी उल्लेख किया है। निश्चय ही उख और वैखानस को एक नहीं कहा है। उख के साथ किसी सम्प्रदाय का सम्बन्ध नहीं जोडा है जब कि वैखानस के साथ तन्त्र पद का प्रयोग है और सम्प्रदाय का अर्थ है।

औखेय और एकायन शाखा की बात कही जाती है। पर उनकी कोई वेद शाखा भी थी या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

पारमेश्वरसंहिता ने एकायन को वेदबाह्य बताया है।* (*एकायनं वैदिकं वा ब्राह्मण वा चाध्यवाहकम् । पारमेश्वर ३.४.) ईश्वर संहिता ने एकायन वेद को मोक्षैकफललक्षण कहा है।* (*आद्यमेकायनं वेद मोक्षैकफललक्षणम् । ईश्वरसंहिता श्लोक ५१५. पृ.५६३.)

तैत्तरीय की किसी अवान्तर भेद शाखा का नाम औखेय हो। उसके पश्चात् उसी शाखा का नाम वैखानस शाखा पड गया हो, ऐसी एक सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। वैखानस श्रौतसूत्र के अध्ययनसे यह तो स्पष्ट है कि यह तैत्तरीय शाखा के अन्तर्भुक्त है। व्यास ने ही वेद विभाजन किया यह सर्वत्र प्रसिद्ध है पर काठक कला... जैसे नाम सुनने में आते हैं। निश्चय ही ऐसे ऋषियों का प्रामुख्य होगा जिनके नाम पर इन शाखाओं का नाम पडा। उसी प्रथा के अनुसार वैखानस नाम भी किसी शाखा का हो सकता है। कोई अचरज नहीं। वह --

चरण व्यूह के अनुसार तैत्तरीय शाखा के दो भेद हैं-- १. औखेय और २.खाण्डिकेय। खाण्डिकेय के पांच उपविभाग है कालेता, सात्यायनि, हैरण्यकेशी, भारद्वाज और आपस्तम्ब (चरणव्यूह पृ. २८) अन्यत्र पाठ इस प्रकार है। आपस्तम्ब, बोधायन सत्याषाढ, हिरण्यकेशिन् तथा औखेय।

जयाख्यसंहिता के २२वें पटल में वैष्णवों के पांच भेद गिनाये हैं १. यति, २. एकान्तिन्, ३. वैखानस, ४. कर्मसात्वत और ५. शिखिन् ।

टीकाकार वेङ्कटेश के अनुसार वैखानस सूत्र औखेय शाखा से सम्बधित हैं। वैखानस श्रौत सूत्र के सातवें अध्याय के अन्त में प्राप्त पुष्पिका में भी यही प्राप्त है।*

(*इति श्रीमदौखेयशाखायां विखनसा ऋषिणा प्रोक्ते मूल गृह्ये विंशति प्रश्नात्मके वेदमेकायनं नाम वेदानां शिरसि स्थितम्। तदर्थकं पाञ्चरात्रं मोक्षदं तत्क्रियावताम्।। श्रीप्रश्न संहिता।)

वाजसनेय

मार्कण्ड़ेय स्मृति में स्मृतियों के उल्लेख के समय औखेय सूत्र का जिक्र है। शाखा का परस्पर संकर वर्ज्य कहा है--

शाखारण्डो भवेन्नूनं न योग्यो हव्यकव्ययोः।
न पंक्तियोग्यश्च तथा स तु स्यान्नित्यकिल्बषी।। पृ.७३.मोरसंस्करण.

शाखा संकर करने से हव्यकव्य के योग्य नहीं रहता पङ्क्ति के योग्य भी नहीं रहता और नित्य किल्बिषी हो जाता है।

काण्डानुक्रमणी के अनुसार उख तित्तिरिका शिष्य था। यद्यपि चरण व्यूह में आत्रेयी शाखा की चर्चा नहीं है तो भी इसे औखेयों का ही एक उपभेद मानना पडेगा क्यों कि आत्रेय को उख का शिष्य कहा है।

येन वेदार्थविज्ञेयो जीवानुग्रहकांक्षया।
प्रणीतं सूत्रमौखेयं तस्मै विखनसे नमः।।

जिसने औखेय सूत्र बनाया उस विखना को नमस्कार है। यहां पर विखना और उख को एक ही माना है। ऋषि परम्परा में भी उख को तित्तरि का शिष्य और आत्रेय को उख का शिष्य कहा है--

वैशम्पायनाय पलङ्गवे तित्तरीयायोखायात्रेयाय पदकाराय कैण्डिन्याय* (*२० प्रश्न ८ पटल खाण्डिका २० पृ. ६५३.) पाणिनि ने ४.२.१०२. में तित्तरि और उख दोनों का नाम लिया है। उख के शिष्य औखेय ऐसी व्युत्पत्ति दी है।

मार्कण्डेय स्मृतिने वैखानस और औखेय को पृथक् माना है जबकि लौगाक्षि एक जैमिनि सूत्रवाले पूर्व की ओर शिखा रखते हैं और उसी तरह वैखानस और औखेय भी। छान्दोगों ने अपना वेद छोड दिया और कालक्रम से सूत्र भी। उन्हीं लोगों में से वैखानस और औखेय हैं। इसी लिए कभी कभी औखेय* (*ते जैमिनीयास्सूत्रा ये सर्वे पूर्वशिखास्स्मृताः। तथा ते वैखानसा केचिदौखेयाश्च तथा मताः।। मार्कण्डेयस्मृति पृ. ६३.) को शुक्लयजुः के अन्तर्गत माना जाता है।) लौगाक्षि ने भी वाजसनेय के अभाति माना है।*

(* औखेय नामकं सूत्रं चकार विदितात्मवान्।
तदेतदपरं सूत्रं सर्वसारं समुन्नतम्।
सर्वेषां सम्मतं सर्ववेदविद्याविभूषणम्।
वैखानसाख्यस्तु मुनि: वेदे वाजसनेयके।
षडशीतिमहाशाखा राजमाने च सन्ततम्।
सर्वाधिके सर्वबन्द्ये मुख्ये यजुषि पावने
अपि कान् कान् महानर्थान् स्वमत्यालोच्य केवलम्।
समादाय समादाय पाठं वासिष्ठनामकम्।
अनुसृत्य विधानेन कल्पे कल्पे शनै: शनै:
सूत्रं तत्कल्पयामास शिवं वैखानसाख्यकम्
सर्वाण्येतानि सूत्राणि याजुषाण्येव केवलम् ।
मार्कण्डेय स्मृति मोर संस्करण पृ. ७०.)

वैखानस और औखेय एक ही है या पृथक् यह कहना अभी भी शोधसापेक्ष्य है क्यों कि दोनों प्रकार के वचन प्राप्त हें।

आनन्दसंहिताके आठवें अध्यायमें औखेयों की गर्भ दीक्षा का उल्लेख है और वैखानस नाम पुन: पढकर तप्तचक्रांकन नहीं है ऐसा कहकर छोड दिया है।तब औखेयों का गर्भचक्र वैखानसों का गर्भतेरचक्र तथा अन्यों का तप्तचक्रांकन ऐसा अर्थ ग्रहण करना पडेगा* (*औखेयानां गर्भचक्रं न्यासचक्रं वनौकसाम्। वैखानसात् विनान्येषां तप्तचक्रं प्रकीर्तितम्।। आनन्दसंहिता 8.3) पुन: २८ वं श्लोक में गर्भ चक्र दीक्षा का औखेयों के लिए वर्णन है। वैखानस श्रौत सूत्र पर टीका करते हुए वेङ्कटेश ने एक श्लोक पढा है--

येन वेदार्थविज्ञेयो लोकानुग्रहकाम्यया।
प्रणीतं सूत्रमौखेयं तस्मै विखनसे नमः।।

लोकानुग्रह की कामना से वेदार्थ की जानकारी के लिए जिस विखनस ने औखेयसूत्र की रचना की उस को नमस्कार।

यजुस् के तीन विभाग

आनन्द संहिता में एक श्लोक दिया है जिसमें कहा गया है कि यजुर्वेद के तीन विभाग हैं-- वैखानस, तैत्तरीय और वाजसनेय* (*वैखानसं तैत्तरीयं तथा वाजसनेयकम्। यजुर्वेदस्त्रिधा प्रोक्त: शुद्धं वैखानसं स्मृतम्।। आनन्दसंहिता.१.७८)

वहीं पर वैखानस और तैत्तरीयों के भेद को भी -बताया है। वैखानस में पाचं काण्ड है जब कि यजुर्वेद में सातकाण्ड।* (*वैखानसं यजुर्वेदं पञ्चकाण्डमुदाहृतम्।। सप्तकाण्डं यजुर्वेद: शुद्धं वैखानसं स्मृतम्।। आनन्दसंहिता)

सीतोपनिषत् में एक पाठ हैं --

वैखानसमतं तस्मिन्नादौ प्रत्यक्षदर्शनम् ।

स्मर्यते मुनिभिर्नित्यं वैखानसमतः परम् ।।

इस पर टीका करते हुए उपनिषत् ब्रह्ममुनि ने लिखा है कि जैसे मन्त्रदृष्टा मुनियों ने मन्त्रों का दर्शन किया उसी प्रकार वैखानस मुनि ने सूत्रों का भी दर्शन किया अत: वेद के समान प्रमाण हैं।* (*वैखानसमुनिना सूत्रितं तत्प्रत्यक्षदर्शनं चतुर्वेदार्थसारस्य सूत्रितत्वात्। सर्वे मुनय: सर्वं वैखानससूत्रजातं लध्वा तत: परं तैर्मुनिभि:नित्यं सूत्रजातं स्मृतिजातं च स्मृर्यते।)

संहिता

वैखानस का पुरातन सन्दर्भ तैत्तरीय संहिता में प्राप्त है। यहां पर वैष्णव धर्मावलम्बी वर्ग विशेष या सम्प्रदाय विशेष के अर्थ में नहीं वरन्, कुछ मन्त्रों को जिनको सामन् कहते हैं, के अर्थ में प्रयुक्त है ये मन्त्र ऋक् हैं और पूर्व दिन प्रयुक्त है।* (*वैखानसं पूर्वेऽहन् सामभवति। इस पर सायण - वैखानसाख्यं साम तत्पूर्वदिने गायेत्।) बालखिल्य और वैखानस एक साथ पैदा हुए इसमें सन्देह नही।* (*देखिये बालखिल्याध्याय.) वैष्णव कब हुए ?

सारे वैखानस मारे दिये गये। वे इन्द्र को ही यज्ञाहुति देते थे। वैखानस साम भी इसी बात को कहता है।

यज्ञ कुण्डके खोदने पर जो निकला वह ऋषि वैखानस था। वैखानस ने सूत्रों के अतिरिक्त देविका सूत्र भी बनाये। जिसमें मन्दिर में विष्णु-पूजा का विधान है।

ब्राह्मण

सामविधान ब्राह्मण में एकवर्ग विशेषका सन्दर्भ प्राप्त है, जिनको यज्ञाधिकार नहीं है। उन लोगों के लिए इस सामन् का विधान स्वाध्याय करने के लिए किया जाता है।* (*तेषामहीयान्ताजा: पृश्नयो वैखानसा वसुरोचिषो ये चापूता ये च कामेप्सवस्तेऽब्रुवन् - कथं

नु वयं स्वर्ग लोकमियाम इति। तेभ्य: एतत्स्वाध्ययाध्ययनं प्रायच्छुत्। तपश्चेताभ्यां स्वर्गलोकमेष्यति ताभ्यां स्वर्ग लोकमायन्। पृ.१८) स्वर्गलोक साधनका यह उपाय यज्ञरहित अध्ययन है। सायणकी टीका में कहा गया है कि ये यज्ञ के अनधिकारी थे।* (*इदानीं यज्ञानधिकारिणा फलाय साम स्वाध्यायाध्ययनं तपश्च प्रायच्छुत इत्याह -तेषामिति। तेषां प्रजापतिसृष्टानां मध्ये केचन देव व्यतिरिक्ता अज पृश्नयादय: अहीयन्त यागानधिकारेण स्वर्गफलहीना भवन्। अजादय: ऋषिगणा:। वैखानसा केचन शतसंख्याका: मन्त्रदृश:। तथा ये चापूता: यागसाधनादिजन्यशुद्धिरहिता: ये च कामेप्सव: शुद्धा अपि तुच्छभूतैहिकफलैकतत्परा उक्तव्यतिरिक्ता यज्ञाधिकारेण हीना: अभवन् ते सर्वेपि प्रजापतिं कथं नु उदानीं स्वर्गमियामित्यब्रुवन् स चोक्त: प्रजापति: तेभ्य: अजादिभ्य: स्वध्यायाध्ययनं च दत्त्वा तपश्च दत्त्वा एताभ्यां स्वर्गं लोकमेष्य थे ति अब्रवीत्। ते च ताभ्यां स्वर्गंलोकमायन्। इसी पर टीका करते हुए भरतस्वामीने कहा है- यज्ञेप्यनधिकारिणे दर्शयितुमाह- वैखानसो नाम केचन मुनय सांख्याका: वसुरोचिषो नाम सहस्रसंख्या.२२.)

अज नामक एक अन्य वर्ग का भी नाम पठित है। शायद ये भी यज्ञाधिकार से वञ्चित कर दिये गये होंगे। उनको स्वाध्यध्यन इन ऋषियों को सारे अधिकार तो न दिए पर स्वाध्यायाध्ययन और तपका अधिकार दिया। अर्थात् यज्ञ करने का अधिकार न दिया। शायद बाद में हस्तगत कर लिया हो। कुछ अंशों में समानता देने का अर्थ सम्पूर्ण रूप से समस्तात्मना समानता नहीं है। सारे अधिकार नहीं है। यज्ञाधिकार से वञ्चित किये गये लोग छिटपुट न थे। उनका वर्ग भी तुच्छ या स्वल्प न होगा। सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मणमें वैखानस को एक गोत्र ही कहा है। सायण ने इस पर टीका करते हुए गोत्र अर्थ को पुन: दोहराया है। उसका अर्थ हुआ पुरूहन्मा वैखानस गोत्र का था।* (*पुरुहन्मा वा एतेन वैखानसेन अञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुखात्यै स्वर्गाल्लोकान्नच्यवते तुष्टवान: ताण्ड्य ब्राह्मण १४.९.२९ उसपर सायण की टीका- वैखानसो विखानसगोत्र:)

ताण्ड्य ब्राह्मण ने इसी पदका एक अन्य अर्थ दिया है। वैखानस का अर्थ एक सामन् है। उस सामन् के अध्ययन से सारी इच्छायें पूर्ण होती हैं।* (*वैखानसं भवति- इसपर सायण की टीका - वैखानसाख्यं साम न किष्टं कर्मणा नशदिति तृचे गातव्यम्। अथैतत्सर्वं कामप्राप्तिसाधनमिति विवक्षुराख्यायिकामाह। ताण्ड्य ब्राह्मण १४.४.७.)

वैखानसों का एक दल इन्द्रको अत्यन्त प्रिय था। एक दैत्य रहस्यु ने उन सबको मार डाला। इन्द्रने उनको खोजने का प्रयत्न किया और अन्ततो गत्वा उन

सबको मृत पाया। उस मन्त्र से इन्द्रने उन सबको जिलाया। इसलिए उस सामन् का नाम ही वैखानस है। उस साम का नाम वैखानस क्यों पडा उसके लिए सायण ने अपने भाष्यमें एक सूचना दी है। क्यों कि ये सारे लोग वैखानस थे अत: उस साम को जिसके पाठ से ये सारे जीवित हो गये उसको वैखानस कहते हैं।* (*वैखानसा विखनस पुत्रा:। स इन्द्र एतेन साम्ना तान् समैरयत: पुन: प्राणैस्तान् समयोजयत्। यस्मादेवं वैखानसानां सम्बन्ध: तस्माद्वैखानसमिति साम्न: संज्ञा जाता। ताण्ड्य ब्राह्मण १४.४.७ पर सायण की टीका ।)

इन्द्र और विष्णु के वैर की चर्चा वेदों में कई बार आयी है। वैखानस सम्प्रदाय के लोग आज भी यज्ञ - यागादिकों में विश्वास करते हैं। इन्द्र यज्ञ के प्रधान देवता थे। वैखानस विष्णु उपासक होगये। ब्रह्मा या प्रजापति विखना के पिता पहिले अन्य देवोपासक थे बाद में वैष्णव हो गये, ऐसा विश्वास करने का आधार है।

कृष्ण की गोवर्द्धन पर्वतधारण करने की कथा, इन्द्र के रुष्ट हो जाने पर अतिवृष्टि द्वारा स्वजनों के अतिरिक्त अन्य जनों को कष्ट देना है। तब इन्द्र और विष्णु का द्वेष वैदिक काल मे तीव्र था।

बृहद्देवता में पुन: वैखानसों का सम्बन्ध अग्नि से दिखाया गया है। वैखानस ऋषिभिस्तेन पवमान इति स्तुत:? २.२१ वैखानसों ने अग्नि की पवमान पवित्र करनेवाला कहकर प्रशंसा की।

बोधायन धर्मसूत्रों में लिखा है कि वैखानस लोग बन में रहते थे। मूल यानी वृक्षों की जड खाते थे। वृक्षों के फल खाते थे। देव, पितृ, भूत, मनुष्य ऋषियों के पूजक थे।* (*बोधयन धर्मसूत्र २.६.१६).

जैसे वैखानसों का अपना कोई वेद नहीं है, ब्राह्मण उपनिषत् नहीं हैं वैसे ही सूत्र भी नहीं है यह कहना साहस मात्र होगा। प्रयोगों के लिए जो मन्त्र दिये गये हैं वे मन्त्र भी तैत्तरीय संहिता में प्राप्त है।

चरण और शाखा बतानेवालें ग्रन्थों में वैखानस न तो शाखाकी गिनती में है और न चरण के ही। औखेय और वैखानस का परस्पर पर्यायवाची या एक दूसरे का अनन्य सम्बन्ध वैखानस वाङ्मय में ही उपलब्ध है।

चरणव्यूह ने औखेय का नाम लिया है पर वैखानस का नहीं।

वैखानस श्रौत सूत्र के २३ वें प्रश्न की पुष्पिका में-- इति श्रीमद् औखेय शाखायां

विखनसा प्रोक्ते मूलगृह्ये त्रयोविंश: प्रश्न:। यहां पर ध्यान देने की बात है कि औखेय को शाखा कहा है। शाखा अर्थात् जिसके पास अपनी संहिता, ब्राह्मण, उपनिषत् सूत्र (सारे) आदि सम्पूर्ण वाङ्मय हो उस औखेय शाखा में सूत्र वैखानस निर्मित हैं। पर, मूलेगृह्ये पद जोड कर, सारा का सारा खेल खतम कर दिया। इसका अर्थ हुआ मूलसूत्र भी उख के ही हैं पर उनमें जोडने के लिए ये हैं। मूले गृह्ये अर्थात् मूल के साथ जोडने के लिए।

उसके पश्चात् दर्शपूर्णमासप्रयोग विधिमें श्रीमदौखेय विरचित कल्पसूत्रे . . . . इति श्रीमदौखेय शाखायां विखनसा ऋषिणा प्रोक्ते . . . . यहां पर औखेय शाखा स्पष्ट रूप से पठित है और 'विखनसा प्रोक्ते' ऐसा लिखा है। प्रोक्ते का अर्थ ग्रन्थकर्ता के रूप में न लेकर पुराणों में जैसे पुरातन गाथा का स्मरण किया जाता है, ऐसा कोई स्मरण संवाद भी हो सकता है। अत: वैखानस सूत्र विखना द्वारा ही बनाये गये हैं इसका भी अन्य कोई पुष्ट प्रमाण न मिलने तक कोई निश्चित मत उपपादित नहीं किया जा सकता।

आनन्दसंहिता के आठवें अध्याय में--

औखेयानां गर्भचक्रं न्यासचक्रं वनौकसाम् ।
वैखानसान् विनान्येषां तप्तचक्रं प्रकीर्तितम् ।। ५।।

यहां पर औखेयो का तथा वैखानसों का नाम पृथक लिया गया है। देखिये श्लोक २८ भी एवमेकायनं धमर्माहुर्वेदविदोजना: महा शान्ति ७८.७२ पूना संस्करण पृ.५०० श्लोक ३०. गौतमधर्म सूत्र में आश्रमों के सन्दर्भ में अध्याय ३.० सूत्र २ प्रथमप्रश्न में 'ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानस:' टीकाकार मस्करि ने इस पर टीका करते हुए -- विखनसा प्रोक्तं शास्त्रं वैखानसं तद्विधिना वर्तते इति वैखानस:' गोतमधर्म सूत्र में आश्रमों के सन्दर्भ मे अध्याय ३ सूत्र २ प्रथमप्रश्न में 'ब्रह्मचारी ग्रहस्थो भिक्षुर्वैखानस:' टीकाकार मस्करि ने इसपर टीका करते हुए - विखनसा प्रोक्तं शास्त्रं वैखानसं तद्विधिना वर्त्ते इति वैखानस:' पुनश्च टीकाकार ने लिखा है --

अथाहोशनसा . . . . द्वौ वैखानसौ सपत्नीको विपत्नीकश्चेति, द्वौ सन्यासिनौ भिक्षुसन्यासी वेद सन्यासी चेत्

ननु स्मृत्यन्तरे वैखानसमभिधाय भिक्षुरित्युक्त: इह किमर्थं क्रमभेद: उच्यते - प्रागुत्तमास्त्रय आश्रमिण:।' इत्यत्र वैखानस वर्जनार्थ: क्रमभेद: तस्य ग्रामप्रवेशन प्रतिषेधादेव सिद्धमिति चेत् न, अर्थिनामरण्यगमनस्यापि सम्भवात् तथा च स्मृत्यन्तरम् -

तेषां गृहस्थो योनिर प्रजनत्वादितरेषाम् ३.३.

इस पर मस्करिभाष्य - वैखानससार्था हेतूक्तिः ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यरक्षणादेव सिद्धत्वात् भिक्षोरप्यूर्ध्वरेतसत्वविधानात्। एष च वैखानसस्य सपत्नीक पक्षे ब्रह्मचर्यरक्षणं कर्तव्यम्। अधिकारादेव सिद्धे तेषां गृहणं गृहस्थोत्पन्नानामेव तेषां धर्मेधिकारः। तथा च शातातपः--

चाण्डालाः प्रत्यवसिताः परिव्राजकतापसाः।
तेषां जातान्यपत्यानि चण्डालैस्सह वासयेत् ।।

इसपर मस्करि भाष्य - प्रत्यवसिताः प्रतिनिवृत्ताः ये परिव्राजकतापसाः नैष्ठिक वैखानसाः तस्मात्तेषां जातान्यपत्यानि चाण्डालैस्सहवासयेत् ।

तत्रोक्तं ब्रह्मचारिणः गौतमधर्मसूत्र चतुर्थसूत्र मस्करि- गृहस्थभिक्षुवैखानसानां। यहां पर भिक्षु और वैखानस अलग अलग पढे गये हैं अतः सामान्यतः उनकी दी अलग अलग श्रेणियां होगी।

सूत्र १० पर

उत्तरेषां चैतदविरोधि। मस्करिभाष्य- गुरुकुलवासो वैखानसस्थः

बौधायनसूत्र पर गोविन्दस्वामी की टीका --

वन में रहनेवाले को वानप्रस्थ कहते हैं। वैखानस भी वानप्रस्थ ही हैं। विखानस ऋषि प्रोक्त शास्त्र का नाम वैखानस शास्त्र है। उसमें वानप्रस्थ के लिए अनेक धर्म कहे गये हैं।* (*बौधायन सूत्र धर्मसूत्र २.६.१६ पर गोविन्दस्वामी की टीका वने प्रतिष्ठितः इति वानप्रस्थः वैखानसोऽपि वानप्रस्थ एवं ..... विखनस ऋषिणा प्रोक्तं वैखानसशास्त्रम्। तत्र हि बहवो धर्मावानप्रस्थस्योक्ताः।)

ताण्ड्य ब्राह्मण में पुनः वैखानस पदका प्रयोग है। सद्यः फलप्रदातृत्व पदोंका अमलत्व पर जोर दिया गया है, जिनका फलप्रदत्व निश्चित है। उस पर सायण ने टीका करते हुए कहा है कि - सामन् न किष्टम्............ का नाम वैखानस है।* (*अच्छावाक मुद्दिश्य गीयमानमच्छावाक्साम वैखानस नामकं भवति न किष्टकर्मणा नश्यद इत्यस्यां बृहत्यामुत्पन्नं सामवैखानसम् ताण्ड्यब्राह्मण १८. ११.१० पर सायण)

स्पष्ट है वैखानसों ने अपना वैद छोडदिया (क्यों कि प्रयोग के लिए उपस्कृत मन्त्र कृष्ण यजुर्वेद के हैं) अतः न रहे। यतिधर्मसंग्रह में भी लिखा है--* (* पृ. ३०)

पाञ्चरात्रं भागवतं तन्त्रं वैखानसाभिधम् ।
वेदभ्रष्टान् समुद्दिश्य कमलापतिरुक्तवान् ।।

वेद भ्रष्ट हो गये श्री वैष्णव सम्प्रदाय के दोनों उपसम्प्रदायों में गुरु परम्परा पाठ सिर फुडव्वल और मुकदमेबाजीका कारण रहा है। दिव्य प्रबन्ध के पारायण कर्त्ताओं का गुरुपरम्परा के पाठ में दिव्य प्रबन्ध के पाठ से अधिक उत्साह रहता है। सत्तुमुराई उसका नाम है।

वैखानसों की गुरुपरम्परा नहीं है। विखनस के नाम से सूत्र हैं। पर मुख्य आचार्य भृगु, अत्रि, मरीचि और कश्यप का स्थान वह नहीं हैं जो रामानुजाचार्य का श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में, मध्वाचार्य का माध्वसम्प्रदाय में, वल्लभाचार्यका पुष्टिमार्ग में है। विखनसाचार्य ने सूत्र बनाये, पर मत प्रतिष्ठापक नहीं हैं। उस अर्थ में कोई भी सूत्रकार आपस्तम्ब या बोधायन मत प्रतिष्ठापक नहीं है।

क्यों कि कोई मत संस्थापक नहीं है अत: यह मत बिना गुरु परम्परा के ही है।*
(*धाता विखनसो नाम्न मरीच्यादि सुतान् मुनीन् । अबोधयदिदं शास्त्रं सार्धकोटिप्रमाणक:।। तात्पर्यचिन्तामणि ब्रह्मा के मन्दिर (मात्र एक को छोड कर) अन्य नहीं हैं अत: उनका मत प्रतिष्ठापक के रूप में स्वीकार करना उचित नहीं है। इस अर्थ में इनका कोई मत पीठ नहीं है जैसे रोम, शृंगेरी या उडुपि। पुष्टिमार्गियों का नाथद्वार मन्दिर है। उस मन्दिर की अपनी पूजा पद्धति है पर वह मठ भी है। तिलकायत जी वहां रहते हैं।

तिरुमल मन्दिर में भी जहां पूजा विधान वैखानस पद्धति से चलता है वहां पर भी धार्मिक क्रिया - कलाप को देखने का काम जीयर करते हैं क्यों कि वैखानसों के कोई अपने जीयर स्थानापन्न अधिकारी नहीं हैं। जीयर पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का धर्मकर्ता पद है।

ब्रिटिश शासन काल में तिरुमल मन्दिर की व्यवस्था महन्तों को सौंप दी गयी थी। महन्त वैरागी हैं। और महन्तों का सम्प्रदाय रामानन्दी हो सकता है वैखानस नहीं। महन्त दक्षिण के नहीं वरन् उत्तर के हैं जब कि वैखानस सम्प्रदाय दक्षिण का है।

वैखानस सम्प्रदाय में श्रीनिवास के पश्चात् कृष्ण का स्थान है। शायद ये कृष्ण यशोदानन्दन कृष्ण न हों और कौल मत के कृष्णपाद या कनपा हों।

आर्षानुक्रमणी में--

प्रसिद्ध गोत्रास्तु -- पवस्व सूक्तं वैखानसानाम् शतं विदुस्ते अर्थात् पवस्व इस प्रतीकवाले ऋ.१०.६६. के सौ वैखानस ऋषि हैं। इस सूक्त में कुल ३० मन्त्र हैं वैखानस गोत्रकार भी नहीं हैं। वैखानस सम्प्रदाय की आनन्द संहिता के दूसरे चौथे अध्याय में एक शौनकीय सूत्र पढा है पर यह आश्वलायन से पृथक् है और शौनक एकर्षि प्रवर तथा गोत्र है।

क्या वेदमन्त्रों के प्रयोग मात्र से वैखानस वैदिक हो गये? हां मुसलमान भी हिन्दू देवताओं की तस्वीरें बेचते हैं । एतावता क्या हिन्दू हो गये ? हिन्दू भी ईद पर सेमई बेचते हैं एतावता क्या मुसलमान हो गये ?

आज कल किसी भी योजना के उद्घाटन या पूर्ति पर एक उत्सव मनाया जाता हैं। सरकीरी काम काज में मन्त्रियों को उद्घाटन या शिलान्यास के लिए बुलाया जाता है। उसका आरम्भ धार्मिक क्रिया से करते हैं। सारे कामों केलिए किसी भी प्रयोग ग्रन्थ सें कर्मकाण्ड प्राप्त नहीं हो सकता हे। अत: पण्डितों ने या पुरोहितों ने एक चाल निकाल ली है जैसे टी. वी. केन्द्र का उद्घाटन करना है। फिर टी. वी. केन्द्रदेवताभ्यो नम: आवाहयामि और फिर रटारटाया षोडशोपचार पूजन कर देते हैं वैदिक मन्त्रों के साथ। वेद पन्थ के परमशत्रु कबीर की पूजा घडल्ले से वेद मन्त्रों से करते हैं। कबीर गायत्री का जाप दादू मठ में भी वेद मन्त्रों से पूजा होती है। आजकल उस फार्मूले के प्रचलन से पण्डितों को बडी आसानी हो गयी है। पूर्णप्रज्ञ सम्प्रदाय में अनेक वेदमन्त्रों के उद्धरण दिये हैं जो कहीं भी प्राप्त नहीं है। उनको वे वेद ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं ऐसा कहकर सन्तोष करा रहे हैं। दयानन्द सरस्वती ने नये वेद मन्त्रों की सृष्टि कर डाली और सबको चकमे में डाल दिया।

शायद वैखानसों का भी यही हाल है। उनका वेद था ही नहीं श्रौतस्मार्त सूत्रों की रूप-रचना कर डाली और प्रचलित मन्त्रों का प्रयोग भर दिया। शायद अति प्रचलित वेद मन्त्र इतने लोगों की जवान पर होंगे जैसे आजकल सिनेमा के गीत। बस एक नवीन चरण या शाखा की सृष्टि हो गयी।

तब परवर्ती भृगु, मरीचि, अत्रि, कश्यप, के ग्रन्थों के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है। यह वही दोगली संस्कृत है जिसको कि बौद्धों ने आदि के कुछ ग्रन्थों में प्रयोग किया और वैदिक छापा लगानें के बाद उसको आर्ष प्रयोग कहने का

फैशन चल पडा।

अत: वैखानसों का अपना कोई वेद था कि नहीं इस समय निश्चयात्मना कुछ कहना साहस मात्र होगा। जादू वही जो सिर पर चढ कर बोले। शब्द के जादू से सब लोग परिचित है।

जगतिक प्रपञ्चमिथ्या है। जगदात्मा अणोरणीयान् महतो महीयान् है। विश्वव्यापक है। अन्त: बहि:स्थित है। तब इस क्षणभंगुर जगत की शाश्वत नित्य अनादि अनन्त उस परमेश्वर के बीच की कडी क्या है? यही है वह अर्चावतार जो नित्य भी अगोचर भी है। जो समस्त विश्व का आधार और आश्रय है पर नेतिनेति से लक्षित है। यही मूर्ति है जो स्थूल भी है पाषाणमयी भी और रूप रहित भी है, जो लीला है और लीला का अधिष्ठान भी। जैसे गौ में गोत्व जति का बोध होता है घटत्व का वैसे ही मूर्ति में सत् का सर्व व्यापक का।

व्यक्तित्व के लिए मानव देह के लिए वही परमात्मा उत्तर दायी है 'सोऽकामयत् एकोऽहं बहु स्याम' अत: समस्त सृष्टि का वही एक पिता है। जीव जन्तु बन लता, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, नर, वानर, इत्यादि मानव मृत बच्चे को बाहर फेंक देता है पर परम पिता अपने मृत या उछ्रृंखल बच्चों को सृष्टि के बाहर कहां फेंके? वही इस समस्त प्रपञ्च का कर्ता है स्वामी है। स्थिति लय का भी स्वामी है। उसके बाहर कुछ नहीं है। समस्तात्मना हम उसके बच्चे हैं। बच्चे जैसे पीटने पर भी अपनी माता की गोद में ही जाते है वैसे ही जीव को भी भगवान को छोडकर अन्य आश्रय नहीं है। तब मूर्ति पूजा इस प्रकार के जगदाधार जगत्पिता के सामने अपने आप को व्यक्त करने का प्रयत्न है। मूर्ति पूजा में भगवान को समर्पित किये जानेवाला नैवेद्य अपनी सत्ताको भगवान की सत्ता में समर्पण करने का एक अभ्यास है। और व्यक्ति थोडे ही दिनों में उस मूर्ति के प्रति दिव्य समर्पण की भावना से शिक्षित हो जाता है और आत्मरति ईश्वरानुरक्ति में परिवर्तित हो जाती है।

मैत्रेय ने कहा- जब तक सारे लोग निर्वाण प्राप्त नहीं कर लेते तब तक मैं बोधिसत्व ही बना रहूंगा। बुद्ध नहीं बनूंगा। निर्वाण प्राप्त नहीं करूंगा। अन्य लोग सांसारिक दु:ख झेलते रहे मैं दु:ख से निरोध पालूं यह नहीं हो सकता। प्रह्लाद ने भी कहा* (*प्रायेणदेवमुनय: स्वविमुक्तिकामा: मौनं चरन्ति विजने नपरार्थनिष्ठा:।
नैतान् विहाय कृपणा विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतो अनुपस्ये भागवत ७.९.४४.)

मुझे स्वयं अपने लिए मुक्ति नहीं चाहिए? यह ठीक नहीं है। वैखानस सम्प्रदाय ने भक्तों में यही भ्रातृ भावना भरदी जब तक सारे भक्त-जीव दैव सान्निध्य के अधिकारी नहीं हो जाते तब तक मैं देव मूर्ति की सेवा करता रहूंगा। भक्तों को दिव्य सन्निधि में आनेका अनेक अवसर दूंगा। सब लोगों को जगदात्मा में अपनी आत्माविलीन करने का सारूप्य होने का अवसर प्रदान करूंगा। समर्पित होने का अनुभव प्राप्त करने का अवसर दूंगा। भजन से।

पूजन से, उत्सवों से इत्यादि। मन्दिरमें भगवद्दर्शन तो नित्य चलनेवाला यज्ञ हैं। उससे भक्त ही ऋत्विक् है। उस दर्शन का फल भोक्ता भी भक्त ही हैं क्यों कि यही यजमान भी है। यह समर्पित भक्त ही गतिविधि हैं।

सत्य की परिभाषा में उच्च और मध्यम ऐसा भेद करते प्रतीत होते हैं। चित् अचित् और ईश्वर तीन तत्त्व मानते हैं। यो तीनों तत्त्व आपस में मिल नहीं सकते। ईश्वरत्व सबसे सूक्ष्म है। मानव नियति उस संसार से ऊपर उठने में है। मोक्ष पाने में है पर मोक्ष के स्वरूप में सबका मतैक्य नहीं है। चार स्तर हैं मोक्ष के। चारों स्तरों में भी तारतम्य है। अहंता कानाश, सारूप्य हो जाने की आशा, जीवात्मा परमात्मा के मिलन के लिए तडप वैखानस सम्प्रदाय के उपकारक तत्त्व हैं। वे संसार को मिथ्या नहीं कहते पर तुच्छ कहते हैं। सांसारिक वस्तुओं के लिए प्रयत्न व्यर्थ है। वह मानव ध्येय नहीं है। संसार तुच्छ है अत: रहने योग्य नहीं है। बारबार गर्भवास, मूत्रपुरीषलुठन, प्रिय जनों की स्मृतियों का विनाश जरा मृत्यु का दु:ख, रोग अपाङ्गताका अवरोध ये सब असह्य हैं। दु:ख नित्य है, मूल है और सब से बडी बात किस योनिमें क्या कर्म किया जिस का फल अब भुगत रहे हैं। अब क्या करें जिससे मृत्यु बन्धन से छुटकारा पाया जा सके। समस्त संस्कार और वासनाओं को सांसारिक वस्तुओं के मोक्ष से शथिलपाश होने का प्रयत्न करना चाहिए।

जीव-कारुण्य क्षीण हो रहा है। मानव मानव की सजातीयता का भावलुप्त हो रहा है। रात-दिन, वर्षा वसन्त का अर्थ लुप्त हो गया है। जीवन की आप धापी में मानव का दिव्य चैतन्य का वह दिव्यांश मलिन से मलिनतर होता जा रहा है। मानव को परमात्मा की ओर लगाना हो मानव नियति है। बार बार भगवान का दर्शन करने पर, उत्सवों में भागलेने पर, यान्त्रिक नियमों में जकडते मानव को मानव मूल्यों की ओर आकृष्टकर जीवन को अधिक प्रशान्त सुख-सन्तोष से पूर्ण बनाने का मानव प्रयत्न

वैखानसों ने अपने आप को अपनी कमाई को भगवदर्पण करने की प्रक्रिया सिखा कर सर्वभूतदया का सौभ्रातृत्व का पाठ सफलता से पढाने का प्रयत्न किया हैं।

किसी भी धर्मिक समाज के लिए यह आवश्यक है कि उससे साधुसन्त सिद्ध महात्मा होते रहें। जो घूमघूमकर गांव गांव जाकर धर्म-प्रचार करें। धर्म के सिद्धान्तो में साम्प्रदायिक कर्म काण्ड और आचार परिपालन में लोगों की आस्था जागायें। कोई सन्देह हो तो उसका निवारण करें। वैखानस या वानप्रस्थ नाम समानार्थक रूप से लिए जाते रहे हैं अर्थात् उस प्रकार के साधुसन्तो की कोई कभी न होगी जो गांव गांव जाकर भिक्षा ग्रहण कर लोगों के साम्प्रदाय के सिद्धान्तों की शिक्षा दें।

दूसरे ढंग के वे लोग हैं जो विद्वान् हैं। मूलग्रन्थों के अध्ययन द्वारा, जन सामान्य की समझ में आनेवाली भाषा में आज के मुहावरे में, ग्रन्थ लिखकर धर्म का प्रचार करते है। ऐसे धर्म-प्रचारक भी वैखानस सम्प्रदाय में कम ही देखे गये हैं।

तीसरे वर्ग में वे लोग है जो मूलसिद्धान्तों और ग्रन्थों का विशद अध्ययन करते है। समसामयिक विचार धारा के अनुरूप टीका लिखकर मूलग्रन्थों के अध्ययन अध्यापन खण्डन-मण्डन की परिपाटीको जीवित रखते हैं। वैखानस सम्प्रदाय [illegible] वर्ग के लोग भी नहीं के बराबर है।

चौथे वर्ग के चिन्तक-मनीषी वे लोग है जो नयी युक्तियों से नवीन तर्क-व्यवस्था से सम्प्रदाय-सिद्धान्तों की रक्षा करते है। योग को देखने से पता लगेगा कि पातञ्जल क्रिया-योग और वैखानस प्रयुक्त योग मे अन्तर है। ध्यानयोग, क्रियायोग, मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग अदि अनेक प्रकार के योग सामने आये पर सम्प्रदाय -सिद्धान्त, कर्मकाण्ड और दर्शन का अपने अपने मत परक विस्तार और प्रस्तुतीकरण प्रकटित किया है।

प्रकरण ग्रन्थ -स्थलपुराण- माहात्म्यादि ग्रन्थों का भी अभाव है। जिन पांच पुराणों में वेङ्कटाचल माहात्म्य मिलता है वह वेङ्कटाचल का ही है श्रीनिवास या वैखानस का नहीं।

हर धर्म में ये चार अंग प्रमुखतया रहते है। १.धर्म संहिता, २.मततत्त्व, ३. सम्प्रदाय तथा ४. धार्मिक संस्था। जिस अर्थ में बाइविल कुरान या वेद है ग्रन्थ साहिब या कबीर बानी है उस अर्थ में वैखानस सम्प्रदाय के पास कोई धर्म संहिता नहीं है। मतके मूल तत्त्व जीव जगत् ईश्वर के बारे में कुछ सामग्री है सकल-निष्कल भेद भी है। पर जब

तक द्वैतविशिष्टाद्वैत के समान तर्कानुप्राणित भाषा में मूल सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं होते वे विशेष ध्यान आकृष्ट नहीं करते। पूजा विधान, उत्सव और कर्मकण्ड विशेष रूप से प्राप्त है। संस्थागत रूप से वैखानस सम्प्रदाय के पास, न तो कोई केन्द्रीय मठ है या मन्दिर है अत: तत्त्व विश्लेषण नहीं होता।

निरुक्त :

यास्क ने भी अपने निरुक्त में वैखानस पद की व्युत्पत्ति दी है। ऋग्वेद १.४५.६ पर* (*प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरुपवत् अङ्गिरस स्वन्महीव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ऋ.१.४५.६) टीका करते हुए अनेक पदों की वत् प्रत्यय द्वारा उपमान के अर्थ में प्रयोग साधा है। चार तपस्वियों के नाम दिए है जो इस प्रकाश है-- भृगु, अङ्गीरस, अत्रि तथा वैखानस। मरीचि के स्थान पर अंगीरस नाम का परिवर्तन कैसे हुआ यह अभी शोध सापेक्ष्य है। तृतीय तपस्वी अत्रि के उद्भवके पश्चात् उन्होंने उस स्थान को खोदा जहां पर यज्ञ किया गया था और खोदने के बाद जो निकला उसका नाम वैखानस है।* (*विखनना द्वैखानस: निरुक्त ३.१७ पर दुर्गाचार्य की टीका- व्युदाह्याग्निं तस्मिन्नग्निस्थाने खाते य: उत्पन्न: स विखननाद्वैखानस एव नाम्ना अभूत्।)

उपनिषत्

प्रसिद्ध १२ उपनिषदों में वैखानस पदका प्रयोग विशिष्ट अर्थ में नहीं है। आश्रमोपनिषत् में* (*वैखानसा उदुम्बरा बालखिल्याश्च फेनपा।)

वैखानसा अकृष्टपच्योषधिवनस्पतिग्राम बहिष्कृताभिग्नेपरिचरणं कृत्वा शंकराचार्य ने छान्दोग्य उपनिषत् ५.१०.१. पर देवयान पन्थ बताया और उस सन्दर्भ में वैखानस पदका प्रयोग साधारण अर्थ में किया है।* (*तद्य इत्थं विदुर्ये चेमेरण्ये श्रद्धातप इत्युपासते तेर्चिषमभिसम्भवन्ति .... स एतान, ब्रह्मगमयत्येष देवयान: पन्था: छान्दोग्य ५.१०.१. इस शंकर की टीका-- ये चामे उपासते -- ये चारण्योपलक्षिता: वैखानसा: परिव्राजकाश्च)

सीतोपनिषत् में सीता के तीन गुण हैं। शक्त्यात्मना इच्छाशक्ति क्रियाशक्ति साक्षात् शक्ति।

क्रिया शक्ति का स्वरूप - हरि के मुख से नाद। उस नाद से बिन्दु। बिन्दु से ॐकार। ॐकार के बाद रामवैखानस पर्वत है। उस पर्वत पर कर्मज्ञानमय बहुत सी शाखायें हैं।।२०।।

जिससे सब कुछ चलता है वही है क्रियाशक्ति उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं। क्रिया शक्ति का स्वरूप आत्मा ही हैं स्वातिरिक्त स्वावशेष को जो हरता है वही है हरि। नारायण। परमात्मा। उनके मुखसे ही वैखरीनाद प्रपञ्च का हेतु बना। उसके अव्यक्त रूप होने के कारण महदात्मा बिन्दु । उस बिन्दु से अहंकार। अहंकारादि का भौतिक में होने से ॐकार के बाद दृष्टिगोचर होता हैं। जो चमके शोभायमान हो वह राम। वही वैखानस बालखिल्य आदि के मौलिपटल से सच्चिदानन्द पर्वत होता है।

वेदादि की गणना के पश्चात् वैखानस मत को कहा--

वैखानसमतं तस्मिनादौ प्रत्यक्षदर्शनम् ।

स्मर्यति मुभिर्नित्यं वैखानसमतः परम् ।।२६।।

वेदों को ऋषियों ने दिव्य चक्षु से देखा जिस प्रकार अन्य ऋषियों ने वेदादि के मन्त्रों का दर्शन किया उसी प्रकार वैखानसों ने सूत्रों का दर्शन किया।

क्यों कि वैखानस सम्प्रदाय क्रियाप्रधान है अत: क्रिया को बतानेवाला सूत्र ही उनकी दिव्य दृष्टि में आया। इन्ही सूत्रों में चारों वेदों का सार है। तब से सारे मुनि वैखानस द्वारा प्रचरित जो सूत्रजात है उसी की सहायता से आध्यात्म क्रिया में संलग्न होते हैं--

वैखानसऋषेपूर्व विष्णोर्वाणी समुद्भवेत् ।।३२।।

त्रयीरूपेण संकल्पे इत्थं देही विजृम्भते ।।३३।।

इसी की व्याख्या करते हुए टीकाकार ने कहा है कि पूर्वकाल में हरिमुखसे निकला नाद ही वेद है। यह नाद ही वेदात्म रूपसे ब्रह्मभावमे लीन हो गया । वैखानस मुनि जो स्वानन्यभाव को प्राप्त हो गये थे उनके हृदयमें प्रत्यगभिन्न रूप से स्थित होने से वैखानस हुए। वैखानस भावको जो प्राप्त हो वही विष्णु हुआ। अर्थात् वैखानस से विष्णु पृथक् नहीं है।

नारदपरिव्राजकोपनिषत्

नारद परिव्राजकोपनिषत् ३.२.३. में वैखानस पदका सम्प्रदाय विशेष अर्थ न होकर सामान्य तृतीयाश्रम अर्थ में प्रयोग है।

अथर्वण अश्रुमोपनिषत् में भी चार आश्रमों में अन्यतम ऐसा कहा है।

आश्रमोपनिषत् -३.

आश्रमोपनिषत् ३ में -- वैखानसा उदुम्बरा बालखिल्या फेनपाश्च ऐसा भेद दिया है। बालखिल्या: का अर्थ जटाधरा: कहा है।

सूत्र--

सूत्रों में प्रधानतया दो भाग हैं पूर्व और अर्वाचीन । पूर्व सूत्रों में ९ तथा अर्वाचीन में ९ इस प्रकार कुल मिलाकर सूत्रों की संख्या १८ हैं* (*वैखानसो वने मूलफलाशी तप: शील:3.25. 1. बोधायन, 2.आपस्तम्ब, 3. सत्याषाढ, 4. द्राह्यायण, 5. अगस्त्य, 6. आश्वलायन, 7.शाम्भव, 8. कात्यायन और 9. आर्वाचीन सूत्र है -- 1.वैखानस, 2. शौनकीय, 3.भारद्वाज, 4.अग्निवेश्य, 5. जैमिनीय, 6. बाधूल, 7.माध्यंदिन, 8. कौण्डिन्य और 9. कौषीतकि।

गौतम ने अपने धर्म सूत्र में वैखानस को आश्रमों में अन्यतम माना है। हरदत्त ने अपनी मिताक्षरा में लिखा है- जो वानप्रस्थ वैखानस प्रोक्त मार्ग में रहता है वह वैखानस है।* (*वैखानसो वने मूलफला तप: शील: ३.२५.) गौतमने धर्म सूत्र में* (*गौतम धर्मसूत्र ३.२५.) वैखानस को बताने को लिए ही तीन आश्रमों का उल्लेख किया है। बोधायन* (*बोधायन १.११४;१६) ने वानप्रस्थ के अनेक भेद दिए हैं।

श्रमण पद साधारण बोलचाल में जैन भिक्षुओं के लिए उपयुक्त है। कभी कभी बौद्ध भिक्षुओं केलिए भी श्रमणपद का प्रयोग कर देते हैं। हो सकता है,कभी वेदबाह्यसन्यासियों को या वनवासियों को श्रमण कहा जाता हो। वै [illegible] ह पद बृहदारण्यक में प्रयुक्त है। साधारण बोलचाल के अर्थ में ही है।

विखना मुनि ने एक श्रामणक अग्नि का जिक्र किया है। सन्यासियों का निरग्नि होना धर्मशास्त्र सम्मोदित है।* (* तपसा श्रमणं एतन्मूलम्। तस्मादेतत् विधानमेनमनिग्नं च श्रामणकमाह विखना: हरदत्तने श्रामणकं नाम वैखानसं शास्त्रं कहा है। ३.२९.) अग्निवेश्य गृहसूत्रमें वैखानसों की गृहस्थों द्वारा राजा के समान आदर प्राप्त करने का अधिकार दिया है। वानप्रस्थ आश्रम अपत्नीक या सपत्नीक भी हो सकता है।

वानप्रस्थ आश्रम की तैयारी भी एक प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण कार्य है। ज्येष्ठपुत्र को ही गृहभार समर्पित कर तृतीयाश्रम में प्रवेश करे ऐसा नहीं है। योग्य पुत्र को गृहभार सौंपे। भार्या को आदर और स्नेह के साथ देखेगा या नहीं ऐसा सन्देह होने पर सपत्नीक ही तृतीयाश्रम में प्रवेश करे* (*वानप्रस्थस्य द्वैविध्यम् -पचमानका अपचमानकाश्चेति बोधायन धर्मसूत्र ३.२.१-२.) स्नेह स्रवन्ती की गति नीचे की ओर ही है ऊपर माता पिता की ओर

गतिशील नहीं होती। यहां पर वैखानस पद सामान्य वानप्रस्थ के अर्थ में प्रयुक्त है या विशेष सम्प्रदाय के अर्थ में यह स्पष्ट नहीं है।

कायनिर्माण या देह निर्माण जैसी प्रक्रिया मुमुक्षुओं के लिए पालनीय कही गयी हैं। वैखानस सम्प्रदाय शरीर को कष्ट देकर शमदमादि के लिए अत्यन्त उपयुक्त बनाता है। शरीर को सुख से दूर रखने का वैखानस सम्प्रदाय का मुख्य अवदान है।

मनुस्मृति :

मनुस्मृति में छठे अध्याय में वैखानस आश्रम के बारे में कहा है।* (*अंत: परं प्रवक्ष्यामि धर्मं वैखानसाश्रमम् मनु.६.१.) निश्चय ही यहां वैखानस पद का अर्थ सामान्य वानप्रस्थ या तृतीयाश्रम है। पर इस अध्यायमें प्रयुक्त वर्णन वैखानसों के विशेषतया विहित आचार से पूर्णतया मिलता है। प्राय: २८ श्लोक इसके लिए दिये हैं। हां ६.२१. 'वैखानसमते स्थित:' कहा है। इस पर टीका करते हुए कुल्लूकभट्ट ने पुष्पमूलफलैरेव वा कालपक्वै: नाग्निपक्वै: स्वयंपतितै: जीवेत्। वैखानसो वानप्रस्थ: तद्धर्मप्रतिपादकशास्त्रदर्शने स्थित: तेनेदमुक्तम्-- अन्यदपि वैखानसशास्त्रोक्तं धर्ममनुतिष्ठत्।* (*पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा कालपक्वै: स्वयं शीर्णै: वैखानसमते स्थित: मनु ४.२१ पर टीका) टीकाकार ने वैखानस शास्त्र का उल्लेख कर यह स्पष्ट कर दिया है कि यहां वैखानस पद शास्त्र विशेष का नाम है तथा सामान्य वानप्रस्थ नहीं।

वैखानस सम्प्रदाय के उपभेद :

वनों में एकान्त जीवन यापन करना चतुर्थ आश्रम की तैयारी का पूर्वाचार है। भोजन रस या जिह्वा लौल्य, वस्त्रपरिधान या सुख स्पर्शभूषा से पराङ्गमुख होने का दृढ संकल्पयुत आचार यहीं पर अक्लान्त हो सीखते हैं। परिपूर्णतया समदु:खसुखी होने की साधना इसी आश्रम में करते हैं। यह आश्रम सम्पूर्ण संन्यास के पूर्व की प्रयोगावस्था है। नव शिक्षा परवर्ती अवस्था की क्रमशिक्षा व्यवस्था है।

वानप्रस्थों को दो विभागों में बांटा है। जो अपचमानक हैं अर्थात् निरग्नि या अग्नि संस्कार के बिना ही भोजन करते हैं अर्थात् बिना पकाया खाते हैं। दूसरे हैं पचमानक जो खाद्य को अग्नि में सिद्ध करके खाते हैं।* (*वानप्रस्थस्य द्वैविध्यम्-पचमानका अपचमानकाश्चेति बोधायन धर्मसूत्र ३.२.१.२.)

अपचमानकों के पुन: पांच विभाग है-- १.उन्मज्जक, २.प्रवृत्ताशी,

३.मुखेनादायी, ४. तोयाहार एवं ५. वायुभक्ष। उन्मज्जक वे हैं जो देह धर्म या शरीर यात्रा के लिए खाते हैं। प्रवृत्ताशी वे हैं जो क्षुधा से विकल होने पर ही खाते हैं।

मुखेन आदायी : एकबार जितना मुख में समाये उतना ही खानेवाले। तोयाहार - वे हैं जो केवल पानी पीकर ही जीते हैं वायु भक्ष - जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य या पेय किसी भी प्रकार का अन्न या जल ग्रहण नहीं करते अर्थात् केवल श्वास निश्वास प्रक्रिया पर ही निर्भर करते हैं।* (*वैखानसानां विहिता: दशदीक्षा: यथाशास्त्रमभ्युपेत्य दण्डञ्च मौनञ्चाप्रमादं च वैखानसश्शुद्ध्यन्ति निराहाराश्चेति ३.३.१५-१७.)

पूर्ण वैखानसों के ऊपर परिपूर्ण वैखानसों की एक और कोटि है जिनको ब्रह्मवैखानस कहते हैं।* (*शास्त्रपरिग्रहस्सर्वेषां वैखानसानां ३.३.१८. इस पर टीका ब्रह्मणा दृष्टा वैखानसा ब्रह्मवैखानसा:।) अर्थात् वे जिन्होंने ब्रह्मका साक्षात्कार कर लिया है। वेदान्त परिकल्पना जीवन्मुक्त की एक कोटि है जो मुक्त तो हो गये है पर अभी भी देहपात नहीं हुआ है। जैसे किसी बर्तन में लहसुन रख दिया जाय तो लहसुन को बर्तन से निकालने के पश्चात् भी लहसुन की गन्ध उस बर्तन में रहती है वैसे ही प्रारब्ध कर्म जो 'अनुभवादेव क्षीयते' हैं वे मुक्ति प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी देह में वासना रूप से रहकर देह धर्म कुछ काल तक चलता है जैसे रथ का चक्र वेगस्तम्भित होने पर भी पूर्णतया निरुद्धगति होने तक गतिशील रहता है और क्रमेण रुद्धगति होता है।

गौतम धर्म सूत्र ने वैखानस की परिभाषा करते हुए कहा है-- जो बनों में रहते हैं मूल तथा फल का भक्षण करते हैं और तपस्या में लीन रहते है वे* (*वैखानसो वने फलमूलाशी तपश्शील: गौतम १.३.२५ इस पर हरदत्त की टीका वैखानसो वानप्रस्थो बने वसन् मूलानि फलानि च पक्वानि वाश्नीयान्न पुनरोदनम्। तप: कायपरिशोषणम्। ततश्च फलमूलान्यपि स्वल्पीयान्यैवाश्नीयात् इति।) वैखानस हैं। वानप्रस्थ पचमानक सर्वारण्यक, वैतुषिक, कन्दमूलभक्ष, फलभक्ष, शाकभक्ष, उन्मज्जक, पत्राशी, मुखादायी, तोयाही, वायुभक्ष, अपचमानक, इन्द्रावसिक्त, रैतावसिक्त। वैखानस सूत्रानुक्रमणिका में वैखानसों के कर्तव्यों का आचार संहिता का विशद वर्णन है। परवर्ती वाङ्मय में इन सभी सम्प्रदायों में अपनी अपनी आध्यात्मसरणि या तत्त्वावलोकन पद्धति को विकसित कर लिया था।

मूल विभाग अपत्नीक या सपत्नीकों का है। सपत्नीक चार विभागों में विभक्त है। १. औदुम्बर २. वैरिञ्चि ३. बालखिल्य और ४. फेनप। अपत्नीकों के असंख्य विभाग हैं।

विष्णुस्मृति में वानप्रस्थ आश्रम धर्म अध्याय में वैखानस पदका प्रयोग ही नहीं मिलता। मनुस्मृति ६.२२.३२.में वानप्रस्थ धर्म का वर्णन है। विष्णु पुराण ३.९.१९-२३. में स्मृतियों में वानप्रस्थों के लिए जो कहा गया है। वही है। काणे के मतानुसार वैखानस पद साधारण वानप्रस्थ के अर्थ में प्रयुक्त हैं। सम्प्रदाय विशेष के अर्थ में नहीं।*

(*काणे हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र खण्ड २, भाग२, पृ.९१७) में कूर्मपुराण के २७वें अध्याय में वैखानस को एक प्रकार का वानप्रस्थ बताया है। अध्याय का आरम्भ 'अथ वानप्रस्थाश्रमधर्मः?' से किया और २७ श्लोक में वैखानसमते स्थितः कहकर वैखानस मत विशेष को स्वीकार किया है। यह व्यास गीता का एक भाग है। अध्याय में कुल ३९ श्लोक है।

रामायण :

रामायण में वैखानस पद सामान्य अर्थ में प्रयुक्त है।*

(*तत्र वैखानसानाम बालखिल्या महर्षयः।
प्रकाशमाना दृश्यन्ते सूर्यवर्णास्तपस्विनः।। किष्किन्धा.४०.६०.
तं देशं समतिक्रम्य आश्रमं सिद्धसेवितम्।
सिद्धाः विखनसास्तत्र बालखिल्याश्च तापसाः। वही.१३.३३.
हेमपुष्करसंच्छन्नं तस्मिन् वैखानसं सरः।
तरुणादित्यसंकाशैः हंसैर्विरचितं शुभैः।। वही.४३.३५.

राम जब वनवास में जा रहे थे तो अनेक प्रकार के साधुसन्त उन्हें देखने के लिए आये जिनका नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं। बालखिल्य, मरीचिप, संप्रक्षाल, अश्मकुट्ट, पत्राहार, दन्तोलूखल, उन्मज्जक, गात्रशय्या, अशय्या, अनवकाशिक, सलिलाहार, वायुभक्ष, आकाशनिलय, स्थण्डिलशायी ऊर्ध्ववासी आद्रपटवासी इत्यादि*

(* वैखानसा बालखिल्याः संप्रक्षालाः मरीचिपाः
अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः।।२।।
दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकापरे
गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानवकाशिकाः।।३।।
मुनयः सलिलाहारा वायुभक्षास्तथापरे।
आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थाण्डिलशायिनः।।४।।
तथोर्ध्ववासिनो दान्तास्तथार्द्रपटवाससाः।
सजपाश्च तपोनिष्ठास्तथा पञ्चतपोन्विताः।।५।। वाल्मीकि अरण्य ६.२.

ये सब सम्प्रदाय विशेष के नाम हैं या तितिक्षा की अनेक प्रक्रियायें हैं नहीं कह सकते। आजकल प्रचलित वैखानस मत या सम्प्रदाय के लोग अग्नि और मूर्ति दोनों के पूजक हैं। यहां पर रामायण में वैखानस का नाम अलग पढा गया है तथा पञ्चाग्नि तपस्वियों का नाम पृथक्। वैखानस वैष्णव या श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में (रामानुज द्वारा स्थापित नहीं। अन्यतम है तथा सम्प्रदायपरक टीकाकारों ने जैसे तिलक, भूषण और शिरोमणि ग्रन्थ टीका निर्मातों ने वैखानस पद का श्रीवैष्णव सम्प्रदाय का एक उपविभाग या भागवत धर्म के श्रेणिविशेष के अर्थ में कोई परिष्कार नहीं किया है। यद्यपि वैखानस राम के उपासक और पूजक हैं। हां वही घिसा पिटा वाक्य--- ये नखा: ते वैखानसा:' सबने दोहराया है। ये सब सुतीक्ष्ण आश्रम से राम के पास आकर रावण या अन्य राक्षसों से अपनी रक्षा की याचना कर रहे थे। पर एक अन्य स्थल पर रावण मरीचि के पास आकर सीता हरण के लिए सहायता की याचना करता है। वहां इस सन्दर्भ में वैखानस पद का प्रयोग प्राप्त है। यहां पर टीकाकार ने वैखानस पद का अर्थ अलग ढंग से किया है।

जित कामैश्च सिद्धैश्च चरणैश्चोपशोभितम् ।
आजैर्वैखानसैर्बालिखिल्यैर्मरीचिपैः ।। राम.३.३५.१३.

इस पर गोविन्दराजीय टीका -- आजै: अयोनिजै: वैखानसै: ब्रह्मनखजै: अज जो मनुष्यों की तरह योनिद्वार से उत्पन्न नहीं हुए हैं, वैखानस -- ब्रह्म के नख उत्पन्न हैं, आजै: वैखानस का विशेषण है या नहीं स्पष्ट नहीं है।

इस पर तिलक टीका -- अजो ब्रह्मा तत्पुत्रैर्वैखानसैरयोनिजै: प्रसिद्धै: अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र जो कि अयोनिज हैं वैखानस।

इसी पर शिरोमणि टीका -- आजै: अजस्य ब्रह्मण: इमे तै: किञ्च शरीरसम्बन्धेनोत्पत्तिरहितै: मानसैरित्यर्थ: किञ्च स्वसिद्ध्यानेकशरीरधारिभि: वैखानसै: ब्रह्मनखोत्पन्नै: श्रुतिश्च 'ये नखास्ते वैखानसा' इति। रामायण ३.३५.१५. पर टीका।

यहां पर यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि आचार्य रामानुज ने तिरुमलवास काल में (जहां आज भी वैखानस सम्प्रदाय का बोलवाला है) तिरुमल नम्बी से रामायण रहस्यों का अध्ययन किया और तत्पश्चात् ही मत प्रवर्तक बने।

रामायण में एक तीसरे स्थान पर वैखानस पद का प्रयोग मिलता है* (* प्रष्टव्या चापि सीतायां प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः। हिमपुष्करसञ्छन्नं तत्र वैखानसं सर:।। रामा. ४.४३.३३.) पर यहां किसी तपस्वी संघ के अर्थ में नहीं वरन् एक तालाब के विशेषण के रूप में।

महाभारत

महाभारत में वैखानस पद का प्रयोग अविरलतया प्राप्त है और साधारण वानप्रस्थ के अर्थ में प्रयुक्त है पर आदर के साथ। आदि पर्व में अनेक प्रकार के मुनि बृन्दों के नाम गिनाये गये हैं जिनमें वैखानसों का नाम प्रमुखतया लिया गया है। वैखानस और वानप्रस्थ अलग अलग पढे गये हैं।* (*वैखानसा बालखिल्या वानप्रस्था मरीचिपा:। अजाश्चैवाविमूढाश्च तेजोगर्भास्तपस्विन:।। महा आदि २११.५. चित्रशाला)

उद्योगपर्व में गरुड ने गालव को उत्तर दिशा के प्राशस्त्य के बारे में बताया। नारायण उत्तर में हैं, गंगा उत्तर में है वैखानसाश्रम भी उत्तर में हैं।* (*अधिपत्येन कैलासे धनदाप्येभिषेचित:। अत्र चैत्ररथं रम्यं अत्र वैखानसाश्रम:।। उद्योग ३.११. चित्रशाला)

धौम्य ने पश्चिम का वर्णन किया। वहाँ पर भी वैखानसों के पवित्र आश्रम हैं।* (*पितामहसर: पुण्यं पुष्करं नाम नामत:वैखानसानां सिद्धानां ऋषीणामाश्रम: प्रिय:।। अरण्य ८९.१६.) महाभारत के प्रसिद्ध व्याख्याता विद्वान नीलकण्ठने वैखानस पद का अर्थ कर्म मार्ग का परित्याग करनेवाले ऐसा किया है जब कि क्रियायोग वैखानसों का मोक्ष लाभ प्रयत्न में सब से महत्त्व पूर्ण प्रस्थान है।

विमानार्चनकल्प में आराधना के दो प्रकार दिए हैं। अमूर्त और समूर्त कहा है। अग्नि में हवन के मुकाबले प्रतिमाराधन को श्रेष्ठतर कहा है।* (*तदाराधनं द्विविधम्-- अमूर्तम्- समूर्तमिति। अग्नौ हुतममूर्तम्, प्रतिमाराधनं समूर्तम्। तच्छ्रेष्ठम्। विमानार्चनकल्प पृ.५.)

महाभारत में मोक्ष धर्म पर्व में नारद ने भगवान की स्तुति की 'नमस्ते देवदेवेश' इत्यादि इस स्तोत्र में फेनपाचार्य बालखिल्यविखनो इत्यादि आया है विखनसाचार्य का स्मरण किया है।

पुन: शान्ति पर्व में ध्यान से आविष्ट होने पर विखनस मुनि पैदा हुए--

विशेषेणाखनत् यस्मात् भावना मुनिसृष्टये।

तस्माद्विखनसो नाम आसीदण्डज: प्रिय:।

....

ध्यानमाविश्य योगेन ह्यासीद्विखनसो मुनि:।

द्रौपदी एवं अन्य पाण्डवों के साथ वन में भ्रमण करते युधिष्ठिर वैतरिणी के

समीप पहुंचे वहां पर जप में संलग्न वैखानसों के देखा। जप का शब्द दूर दूर तक सुनाई पड रहा था। ये जप सम्प्रदाय के सन्त हैं। मूर्तिपूजक नहीं। ऐसा प्रवर्तन होना चाहिए कि इनके कार्य में किसी प्रकार का व्यवधान न हो।

मूर्ति पूजक पद शायद वैखानसों के लिए प्रयुक्त है। जप भी उनके प्रधान सम्पाद्यमान कृत्यों में अन्यतम है पर दोनों के अलग अलग सम्प्रदाय कहे हैं।

शल्य पर्व में कुमार के सेनाधिप के पद के लिए अभिषिक्ति होने के समय समस्त योनियों के प्राणी आये। ऋषिगणों में वैखानस भी आये। इन्हीं का नाम सर्वप्रथम लिया गया है।* (*वैखानसैर्बालखिल्यैवाय्वाहारमरीचिपैः। भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च यतिभिः महात्मभिः।। शल्य ४५.८.) भृगु और अङ्गीरसों का नाम ऐसे लिया है मानों ये भी कोई ऋषिगण हो।

शान्ति पर्व में युधिष्ठिर को यज्ञ यागादिकों का अनुष्ठान करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। गृहस्थ ही तो सारे आश्रमों का उपजीव्य है जो अपने वर्णाश्रम का पालन करता है वह निश्चय ही अनन्त पुण्यफल का भागी होता है। इसी सन्दर्भ में वैखानसों का प्रसङ्ग भी आया है। लोभ या धन लोलुपता सब पापों का मूल है।* (*स्वाध्याय-यज्ञा ऋषयो ज्ञानयज्ञास्तथापरे।।५।। कर्मनिष्ठाश्च बूद्ध्येथास्तपोनिष्ठाश्च पार्थिव। वैखानसानां कौन्तेय वचनं श्रूयते यथा।।६।। ईहते धनहेतोर्यस्तस्यानीहा गरीयसी। भूयान् दोषो हि वर्द्धेत यस्तं धनमुपाश्रयेत्।।७।। शान्ति २०.६-७.) वैखानस मत प्रकाश के लिए आठ श्लोक दिए हैं।* (*शान्ति २०.६-१४) अन्तिम श्लोक में यज्ञ में सब कुछ लगा देना चाहिए ऐसा उपदेश दिया है।* (*तस्मात् यज्ञे सर्वमेवोपयोज्यम् शान्ति २०.१४) धन पराङ्मुखता वैखानसों के लिए कोई साम्प्रदायिक आचार नहीं है। हां यज्ञ सम्पादन है पर यज्ञ में भी सब कुछ लगा देने पर बल नहीं है। कुटुम्बपोषण प्रथम एवं प्रधान दायित्व है। दान ही देना है तो उतना ही दो जिससे पुत्रकलत्र को कष्ट न भोगना पडे। यहां पर टीकाकार ने वैखानस पद के विशेषण के रूप में हिरण्यगर्भ पदका प्रयोग किया है। इसीको पर्यायवाची पद भी माना है। विखना महर्षि के ब्रह्मा या ब्रह्मा के पुत्र होने की चर्चा पहिले की जा चुकी है। महाभारत के इसी स्थल पर स्पष्ट रूपसे वैखानस मत प्रतिपादन के अवसर पर यज्ञ यागादि सम्पादन करना ही वैखानस मत का परमलक्ष्य है ऐसा प्रतिपादित किया है।

राजधर्मानुशासन पर्व में युधिष्ठिर ने अर्जुन को उपदेश दिया धन का प्रमुख प्रयोजन यज्ञ में विनियोग है। व्यक्तिगत सुख के लिए धनका दुरुपयोग नहीं करना

चाहिए* (*यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा यज्ञाय सृष्टा पुरुषो रक्षिता च। तस्मात् सर्वं यज्ञ एवोपयोज्यं धनं न कामाय हितं प्रशस्तम्।। शान्ति२६.२५.) इसके पूर्व श्लोक में इस श्लोक को एक प्रस्थान विशेष का मत बताकर यज्ञगीता में पढा है।* (*अत्र गाथां यज्ञगीतां कीर्तयन्ति पुराविदः शान्ति २६.२४) पुराविद् का अर्थ वैखानस है ऐसा समझना होगा।

इसके पूर्व सन्तों की तीन कोटियां बताई है* (*स्वाध्यायनिष्ठान् हि ऋषीन् ज्ञान-निष्ठास्तंथापरान्। बुद्ध्येथाः सततं चापि धर्मनिष्ठान् धनञ्जय।। शान्ति २६.५.) १)ज्ञान-निष्ठ २)स्वाधायनिष्ठ और ३)धर्मनिष्ठ। इनमें ज्ञाननिष्ठ ही ज्ञान वृद्ध हैं अतः उनके ऊपर उत्तर दायित्व का भार सौंपा जा सकता है और विश्वस्त रहा जा सकता है। मन्दिर प्रशासन में तो वैखानसों का एक छत्राधिकार रहा पर राज्य प्रशासन में प्रबन्ध चातुरी के कारण वैखानसों को उपयुक्ततर समझा जाता रहा। मध्यकाल में धार्मिक उथल पुथल के बीच अनेक राजे महाराजाओं ने मन्दिर बनवाकर विशेषतः दक्षिण में जो कि अनेक शिलालेखों से पुष्ट है खोजकर वैखानसों के मन्दिर के कार्य सञ्चालन में लगाया।* (*ज्ञाननिष्ठेषु कार्याणि प्रतिष्ठाप्यानि पाण्डव। वैखानसानां वचनं यथा नो विदितं प्रभो। शान्ति २६.६.) राज्य प्रशासन में भी मन्त्री या परिषत् के सदस्य के रूप में इनकी त्याग और सहिष्णुता प्रवृत्ति के कारण नियुक्ति की जाती भी* (*कार्याणि राजकार्याणि धर्माधर्मनिर्णयार्थं पर्षदमुपक्रम्य एको वा आध्यात्मवित्तम इति स्मरन्ति पर्षदत्वेन वरणीय इति विशेषः। ज्ञाननिष्ठेषु .... प्रतिपाद्यानि इत्यैव वैखानसानां वानप्रस्थानां वचनम्। नीलकण्ठ शान्ति २६.६. पर)

शान्ति पर्व के ६० वें अध्याय में पुनः वैखानसों के बारे में एक मत व्यक्त किया गया है। ये लोग मुनि थे तथा यज्ञ करने के इच्छुक। श्रद्धा सबसे उत्तम और प्रशस्त है। भगवत प्राप्तिका परमसोपान है।* (*श्रद्धा वै कारणं महत्। शान्ति ६०.४९) यहीं पर वैखानसों के विषयमें भी कहा गया है।* (*शान्ति ६०.४८-५४ गीता प्रेस संस्करण) टीकाकार नीलकण्ठ ने गाथा शब्द पर टीका करते हुए लिखा है कि गाथा तो यज्ञ के लिए किये गये स्तुति श्लोक है।* (*वैखानासां वानप्रस्थानां गाथाः यज्ञस्तुति श्लोकाः शान्ति ४०-४८ पर नीलकण्ठ) यहीं पर वैखानस को वानप्रस्थ कहा है। शान्ति पर्व के २४४वें अध्याय में दिये गये सन्तसम्प्रदायों के नाम और क्रम प्रायः वाल्मीकि रामायण में दिए गये नाम और क्रम से मिलते हैं।* (*शान्ति २४४.४-१४ वाल्मीकि रामायण अरण्य ६.२-५.)

श्लोक संख्या ५ में 'तामेवाग्नीन् परिचरेत्' लिखा है। यहां पर गृहस्थाश्रमकी

गार्हपत्य अग्नि को पुत्र को सौंपकर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं। तब फिर 'तान्येव' का क्या अर्थ है। इसके साथ साथ भगवदर्चा का परित्याग नहीं करना है।

अमूर्त अग्नि में हविर्द्रव्य प्रक्षेपसे ऐहिक और आमुष्मिक फल मिलते हैं यह स्थिर हो जाने के पश्चात् अग्नि की एक अगोचर शक्ति में विश्वास का आधार दृढ होता है। वैसे ही प्रस्तरमूर्ति भी पूजा किये जाने पर नयनागोचर फल प्रदान में सक्षम है। ऐसा विश्वास करने का पुष्ट आधार प्राप्त होता है। अत: यज्ञीय प्रक्रिया के साथ साथ देव पूजा करनी चाहिए ऐसा सम्प्रदायाचार पालन करने का विधान है। यही शास्त्राचार भी है।

'वैखानसगतिं स्थिता:' में गति पद अर्थ शायद मार्ग होगा। तब तक यान पद प्रचलित न हुआ होगा अन्यथा यह भी हीनयान महायान के समान वैखानस गति न होकर वैखानस यान होता।

सात्वत धर्म का वर्णन महाभारत में शान्ति पर्व ३४८वें अध्याय में श्लोक ४-५७ तक में प्राप्त है। जनमेजय ने कहा कि भगवान 'विधि-प्रयुक्त' पूजा को स्वीकार करने हैं। विधि प्रयुक्त पद शायद वैखानस सम्प्रदाय की पूजा पद्धति को परिलक्षित करता है।* (*अहो एकान्तिन सर्वान् प्रीणाति भगवान हरि:।

विधिप्रयुक्तां पूजां च गृह्णाति भगवान् स्वयम्।। शान्ति ३५८.१.)

इन ५४* (*गृहस्थस्तु यदा पश्येत वलीपलितमात्मन:।

अपत्यस्यैवापत्यं वनमेव तदाश्रयेत् ।।४।।

तृतीयमायुषो भागं वानप्रस्थाश्रमे वसेत्।
तानेवाग्नीन् परिचरेत् यजमानो दिवौकस: ।।५।।

नियतो नियताहार: षष्ठभक्तोऽप्रमत्तवान्।
तदग्निहोत्रं ता गावो यज्ञाऽङ्गानि च सर्वश: ।।६।।

अफलाकृष्टं ब्रीहियवं नीवारं विघसानि च।
हवींषि संप्रयेच्छेत् मुखेष्वत्रापि पञ्चसु ।।७।।

वानप्रस्थाश्रमेप्येताश्चतस्रो वृत्तय: स्मृता:।
सद्य: प्रक्षालका: केचित्केचिन्मासिकसञ्चया: ।।८।।

वार्षिकं सञ्चयं केचित्केचिद् द्वादशवार्षिकम्।
कुर्वन्त्यतिथिपूजार्थं यज्ञतन्त्रार्थमेव वा ।।९।।

अभ्रावकाशा वर्षासु हेमन्ते जलसंश्रयाः
ग्रीष्मे च पञ्चतपसः शश्वच्च मितभाजनाः ।।१०।।

भूमौ विपरिवर्तन्ते तिष्ठन्ति प्रपदैरपि
स्थानासनैर्वर्तयन्ति स वनेष्वभिषिञ्चते ।।११।।

दन्तोलूखला: केचिदश्मकुट्टास्तथापरे ।
शुक्लपक्षे पिबन्त्येके यवागूं क्वथितां सकृत् ।।१२।।

कृष्णपक्षे पिबन्त्यन्ये भुञ्जानैर्वा यथागतम् ।
मूलैरेके फलैरेके पुष्पैरेके दृढव्रताः ।।१३।।

वर्तयन्ति यथान्यायं वैखानसगतिं श्रिताः ।
एताश्चान्याश्च विविधा दीक्षास्तेषां मनीषिणाम् ।।१४।।शान्ति २४५.४-१४.)

श्लोकों में कहा कि नारायण ही मूल सृष्टिकर्ता हैं। नारायण के मुखसे मानसिक जन्म हुआ। यही इस धर्म के जन्म दाता भी हैं। नारायण ने ही इस विद्या का उपदेश सर्व प्रथम ब्रह्मा को दिया। ब्रह्मा ने तत्पश्चात् फेनप सम्प्रदाय के लोगों को और फेनप लोगों से वैखानसों ने यह ज्ञान प्राप्त किया। यह ब्रह्मा के प्रथमकल्प में हुआ।

द्वितीय कल्प में रुद्र से बालखिल्यों के पास आया।*

(*यथा कथितं तत्र नारदेन तथा शृणु ।।१२।।

यदासीन्मानसं जन्म नारायणमुखोद्गतम् ।
ब्रह्मणः पृथिवीपाल तदा नारायणः स्वयम् ।।१३।।

तेन धर्मेणः कृतवान् दैवं पित्र्यं च भारत ।
फेनपा ऋषयश्चैव तं धर्मं प्रतिपेदिरे ।।१४।।

वैखानसा फेनपेभ्यः सोमस्तु ततः सोन्तर्दधे पुनः ।
यदासीत् चक्षुसं जन्म द्वितीयं ब्रह्मणो नृप ।।१५।।

यदा पितामहेनैव सोमाद्धर्मं प्रतिश्रुतः ।
नारायणत्मको राजन् रुद्राय प्रददौ च तम् ।।१६।।

ततो योगस्थितः रुद्रः पुरा कृतयुगे नृप
बालखिल्यान् ऋषीन् सर्वान् धर्ममेतदपाठयत् ।।१७।।

अन्तर्दधे ततो भूयः तस्य देवस्य मायया ।।शान्ति ३४८.१२-१८.

यहां पर महाप्रभु वल्लभाचार्य का मत इस प्रसङ्ग में उद्धृत करना अप्रासङ्गिक न होगा। यह वैखानस मत भगवद्भजन प्रतिपादक धर्म है। और इसी पद्धति द्वारा पूजा किये जाने पर उस पूजा को भगवान स्वीकार करते हैं।* (*भागवत १०.२८.४ पर विखनसार्थितो श्लोक पर प्रभुवल्लभाचार्य टीका-- विखना ब्रह्म विशेषेण खनतीति सर्वथा वेदार्थविचारक:। एत एव वैखानसमतं ब्रह्मणाकृतं भगवद्भजनप्रतिपादकं तेनैव मार्गेण पूजां भगवान् गृह्णातीति। वेङ्कटाद्रौ तथैव पूजा।)

अनुशासन पर्व के ८५ वें अध्याय में भूत सृष्टि की प्रक्रिया दी है। अग्नि से मूल पुरुष या आदि पुरुष की उत्पत्ति हुई फिर भृगु अङ्गिरा कवि और मरीचि। मरीचि से कश्यप और उनके पश्चात् वैखानस। टीकाकारने वैखानस पद पर कोई टिप्पणी नहीं की है।

वैखानसों के एक सम्प्रदाय को ज्ञान योग में सिद्ध बताया है। ज्ञान का अर्थ है, वेदाध्ययन। अर्थात् वैखानस सम्प्रदाय के लोग वेदाध्ययन में निष्णात थे।* (*शान्ति २०.६ भागवत १०.२८.४) महाप्रभुवल्लभाचार्य की टीका का अर्थ होगा वह सम्प्रदाय जो वेद के अर्थ - समग्र अन्तर्निहित अर्थ - का बार बार आलोडन करनेवाले। श्राद्ध के लिए योग्य ब्रह्मणों के चयन निर्धारण के लिए वैखानसों द्वारा प्रयुक्त मानकों का अवलम्बन करने को कहा है। वह है, वेदपारग होना।* (*वैखानसानां वचनं ऋषिणां श्रूयते नृप। दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणान्। अनुशासन ९०.५३) मनु ने श्राद्धभोजन के लिए उपयुक्त ब्राह्मण के लक्षणों में उसका वेदपारग होना मुख्य लक्षण माना है क्यों कि वह हव्य कव्य का तीर्थ है, पात्र है, जैसे तीर्थ में मृत पितृपितामहों की अस्थि छोडते हैं उसको (उस जलाशय को) उन अस्थियों का विश्रामस्थल समझते हैं वैसे ही श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मण हव्यकव्य तीर्थ हैं।* (*दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम्। तीर्थं तद् हव्यकव्यानां प्रदाने सोतिथि: स्मृत:।। मनु ३.१३०.)

पुराण

भागवत

भागवत में भी मुनियों का वर्गीकरण प्राप्त है। उनको आठ विभागों में विभक्त किया है। वैखानस उनमें अन्यतम हैं। यहां पर ऐसा कुछ नहीं है, जिससे यह जाना जा सके कि वैखानस भागवत सम्प्रदाय विशेष के तपस्वी हैं* (*वने स्थिताश्चत्वार:। तत्र

वैखानसा अकृष्टपच्यवृत्तय:। बालखिल्या नवेऽन्ने लब्धे पूर्वसञ्चितान्नत्यागिन: औदुम्बरा प्रातरुत्थाय यां दिशं प्रथमं पश्यन्ति तत: आहृतै: फलादिभि: जीवन्ति। कुटीचक: स्वाश्रम कर्मप्रधान: वह्वोद: कर्मोपसर्जनीकृत्य ज्ञानप्रधान: हंसो ज्ञानाभ्यासनिष्ठ: निष्क्रिय: प्राप्ततत्त्व: एते च सर्वे यथोत्तरं श्रेष्ठा:। भागवत ३.१२.४३. पर श्रीधर की टीका।) एक बात कही है। वैखानस तपस्वी अग्नि से सिद्ध आहार ग्रहण नहीं करते तथा वन में रहते हैं। अन्यत्र पुन: एक वर्गीकरण में वैखानस सम्प्रदाय के तपस्वियों को भागवत सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त कर वर्णन किया है। अन्यत्र एक विभाग में १.कन्दमूल फलाहार, २.शुष्क पर्णाशिन, ३.अपभक्ष, ४.वायुभक्ष, ५.ग्रीष्म में पञ्चातप, ६.वर्षाऋतु में आकण्ठ जल में जप, ७.शिशिर में उदक में आकण्ठ निमग्न रहना, ८.पत्थरों पर निद्रा -- ये सब सम्प्रदाय विशेष के लक्षण न होकर सामान्य तितुक्षुओं के लक्षण हैं। वैसे आराधक कृष्ण की उपासना करते थे कहा है।* (*आरिराधयिषु: कृष्णमस्तप: भाग ४.३.२७.)

विष्णुपुराण :

विष्णुपुराण में भी वैखानस पदका सम्प्रदाय विशेष के अर्थ में प्रयोग उपलब्ध नहीं है।* (*वैखानसं वापि भवेत परिव्राडदथवेच्छया। पूर्वसंकल्पितं यादृक् तादृक् कुर्यान्नराधिप।। वि.पु.३.१०.१५.) वानप्रस्थ सामान्य अर्थ है। वैष्णवाकूतचन्द्रिका टीका में भी कोई विशेष समाचार प्राप्त नहीं है। अन्यत्र वैखानस निष्पाद्य क्रियाकलापों का वर्णन है सम्प्रदाय विशेष के अर्थ में नहीं* (*तत्राप्यनुदिनं वैखानसनिष्पाद्यं क्रियाकलापं निष्पाद्य क्षपित सकलपापपरिपक्वमनोवृत्ति: इत्यादि वि.पु.४.२.१३०.)

स्कन्दपुराण

हस्तिशैलादुत्तरत: पञ्चयोजनमात्रत:।
सुवर्णमुखरी नाम नदीनां प्रवरा नदी ।।४३।।
तस्या एवोत्तरे तीरे कमलाख्यं सरोवरम्।
तत्तीरे भगवानास्ते शुकस्य वरदो हरि: ।।४४।।
बलभद्रेण संयुक्त: कृष्णो भक्तार्तिनाशन:।
वैखानसमुनिगणैर्नित्यमाराधितोऽमलै: ।।४५।।
कमलाख्यस्य सरस उत्तरे काननोत्तमे।
कोशद्वायार्धमात्रे तु हरिचन्दनशोभिते

श्रीवेङ्कटाचलो नाम वासुदेवालयो महान् ।।४६।।वैष्णव खण्ड, प्रथमाध्याय.

पुष्करिणी का नाम कमला था।

वैखानस मुनि ही थे गृहस्थ नहीं। शायद साधारण वानप्रस्थ के वैखानस अर्थ में प्रयुक्त है नित्याराधन का भी सन्दर्भ कहा है। मौनधारण करनेवाले को मुनि कहते हैं। सप्ततीर्थ भी कहे गये हैं। ५१।।

वैखानससैर्महार्भागै ब्रह्मतुल्यैर्महात्मभि: ।।

वैखानसेन मुनिना गोपीनाथेन पूजितम् ।।२५।।

वनमध्ये तरोर्मूले स्वामि पुष्करिणीतटे।

तिष्ठन्तं पुण्डरीकाक्षं श्रीभूमिसहितं हरिम् ।।२६।। नवमोऽध्याय:

कृत्वा वैखानसाद्विष्णोर्नैवेद्यञ्च दिनेदिने ।।३०।।

पशूपहारसहितं धूपदीपसमन्वितम् ।।८८।।

सुराघटीशतं दत्वा जातीकेसरवासितम् ।।८१।।

प्रतिष्ठाप्य विप्रै वैखानसैश्च माम् ।

पूजयेद्विविधैर्भोगैर्तोण्डमान् राजसत्तम: ।।१७।।

अध्याय दस

वैखानसै मुनिवरैरर्चयेत्तोण्डमानपि ।।३०।।

प्राकारमात्रे कुरु मे द्वारगोपुरसंयुतम् ।।४६।।

विमान भवद्वंश्ये नाम्ना नारायणो नृप: ।।४७।।

पूजमामास मुनिभि वैखानससकुलोद्भवै: ।।४९।।

वैशिकी वासिष्ठो वीरशर्माहं सामवेदी नृपोत्तम ।।५५।।

नगन्तव्यमकाले तु त्वया नृप कदाचन एव कालार्चनं कृत्वा

गत्वात्वं स्वपुरे वस।।८३।।

कुलाल भीमनगमानं स्वपुत्रं श्रीनिवासाख्यं।

वायुपुराण

वायुपुराण में भी वैखानस पद साधारण वानप्रस्थ के अर्थ में प्रयुक्त है।* (*साधनात्तपसोरण्ये साधुर्वैखानस स्मृत:। यतमानो यतिस्साधु स्मृतो योगस्य साधनात्।। वायु.५९.२४.) अन्यत्र पर सामान्य अर्थ में पुन: प्रयुक्त है।* (*वैखानसै: प्रियसखै: बालखिल्यैर्मरीचिपै:। अन्यैश्च मुनिभिर्जुष्टं सूर्य वैखानसप्रभै:।। वायु.२.५६.) एक अन्य सन्दर्भ में वालि ने एक यज्ञ किया उसमें ऋषि लोग आये। वैखानस भी थे। वैखानसों के जन्म व्यपोहिनी से हुआ यह लिखा है।*

(*कुशोच्चया बालखिल्या: सम्भूता: परमर्षय:
मनोजवा: सर्वगता: सार्वभौमाश्च तेऽभवन्
जाता भस्मव्यपोहिन्यां ब्रह्मर्षिगणसंमता:
वैखानसामुनिगणास्तप: श्रुतिपरायणा:।। वायु.अनुषंग.६५.५५.-५६.)

ये तप पारायण थे।

ब्रह्माण्डपुराण

ब्रह्माण्डपुराण में वैखानसों का नाम बडे आदर से लिया गया है। वे अति पुनीत है अत: संयोगजपातक उन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते।* (*सेवक: पुरसंस्थश्च कुग्रामस्थोभिशस्तक: वैद्य: वैखानसश्शैवो नारी जीवोन्नविक्रयी।। ब्रह्माण्ड.४.८.४४.) वैखानस एक मुनि का नाम दिया है।* (*तृणकाष्ठजलैर्युक्ते युक्ते परमसात्त्विकै:।। गत्वा तस्मिन् महात्मानं वैखानस ऋषिं तदा।। ब्रह्माण्ड अध्याय.७.७१.) वायुपुराण ५९.२४. श्लोक को ब्रह्माण्डने पुन: दोहराया है। यह श्लोक बहुत पुराना है और लगता है दोनों पुराणों ने कहीं तीसरे स्थान से इस श्लोक को अपनाया है। श्लोक से एक बात स्थिर है कि वैखानसों का समाज में आदर था और वे साधना में लगे रहते थे। तप और योग दोनों प्रकार की साधना करते थे। नहुष पुत्र द्वारा यज्ञ सम्पादन किये जाने पर यज्ञ में भाग लेने के लिए जो लोग आये उनमें वैखानस भी थे।* (*विश्वंसिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव।। वैखानसै: प्रियसखैबालिखिल्यै: मरीचिभि:।। ब्रह्माण्ड.१.२.२७.) वैखानसों की उत्पत्ति के बारे में भी एक श्लोक है। यज्ञ के अवशिष्ट भस्मचय से कई साधु सम्प्रदाय उत्पन्न हुए जिनमें वैखानस भी अन्यतम हैं। वे सब तप: परायण और श्रुतिपरायण थे।* (*जाताश्च भस्मनो ह्यन्ये ब्रह्मर्षिगणसंमता:।।५६।। वैखानसा: मुनिगणा: तप:श्रुतिपरायणा:।।५७।। ब्रह्माण्ड.

३.१.५६-५७. वैखानसा: ये मुनयो मिताहारा: जितव्रता:। तेपि मुह्यन्ति संसारे जानन्तोऽपि ह्यसत्यताम्। देवीभागवत.१.१९.१७.)

ब्रह्माण्ड पुराण ४.८.४४. में एक अन्य सन्दर्भ प्राप्त है यहां पर उग्र तप: स्थित वैष्णव सन्तों से तात्पर्य हैं।

मत्स्यपुराण

मत्स्यपुराण वैखानसों को मलयपर्वत वासी कहता है।* (*मलयस्यैक देशेतु वैखानसविधानत:। सभार्य: संवृत्तो विप्रैस्तपश्चक्रे सुदुश्करम्।। मत्स्य.६१.३७.) मलय पद तामिल का है जिसका अर्थ पर्वत होता है। जैसे तिरुमलै अन्नामलै। पर मलय पर्वत श्रेणी भी प्रसिद्ध है। आन्ध्र और तामिलनाडु में वैखानस लोग आजकल प्राप्त हैं। सपत्नीक रहना इनकी एक और विशेषता है। वानप्रस्थ आश्रम में सपत्नीक अपत्नीक दोनों प्रकार के होते हैं। पर वैखानस सम्प्रदाय में चतुर्थाश्रमी भी सपत्नीक होते हैं। यह चिन्तन का विषय है उनका एक विशेष विधान वैखानस विधानत: से स्पष्ट मालूम पडते हैं।

देवीभागवत

देवी भागवत में वैखानसों को शमपरक और प्रतिग्रहपराङ्गमुख बताया है।* (*वैखानसै: शमतपै: प्रतिग्रहपराङ्मुखै: देवीभागवत ४.३.१३.) अन्यत्र वीतराग गततृष कहा है मानों उनको दृष्टान्त के लिए बनाया गया हो। अन्यत् सब कु[illegible] छलमय है।*

(*वैखानसश्च मुनयो निस्सङ्गनिष्प्रतिग्रहा: ।।२६।।

सत्ययुक्ता भवन्त्यत्र वीतरागा गततृष:।

दृष्टान्तदर्शनार्थाय निर्मितास्ते च तादृशा: देवीभागवत ४.४.२७.)

पर वैखानस तो तप्त मुद्राङ्कित नहीं होते पर जो हैं उन वैखानसों को भी वेद बाह्य कहा है।* (*तप्तमुद्राङ्किता ये च वैखानसमतानुगते सर्वे निरयं यान्ति वेदमार्ग वहिदुष्कृता देवीभागवत ११.१.३९.)

विधानपारिजात: अनन्त भट्ट कृत:

विधान पारिजात दो उप सम्प्रदायों का नामोल्लेख करता है। ये है पाञ्चरात्र और भागवत। भागवत पदमें वैखानस सम्प्रदाय अन्तर्भुक्त है कि नहीं स्पष्ट नहीं है।

पाञ्चरात्रं भागवतं तत्रं वैखानसाभिधम्

वेदभ्रष्टान् समुद्दिश्य कमलापतिरुक्तवान्।। अनन्तभट्ट. विधानपारिजात पृ.५९४.

कमला पति ने स्वयं इसको कहा वेदभ्रष्टों के लिए विशेषतया वैखानस को तन्त्रका नामोल्लेख नहीं है ठीक ही है क्यों कि वैखानस तन्त्र या आगम पाञ्चरात्र नहीं है। तब यह मानने का कारण है कि वैखानस सम्प्रदाय भागवत मत में स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में पनपा होगा।

जयाख्य संहिता

पाञ्चरात्र वैखानस आगमों में अनेक विषयों में समानता होने पर भी परस्पर निन्दावचन प्राप्त है।

जयाख्य संहिता. २२.३४-३७. वैष्णव सम्प्रदाय को तीन भागों में बांटती है। वेदमें निष्ठा, २.वर्णाश्रम में श्रद्धा, ३.स्मृतियों का पालन पाञ्चरात्रियों के तीन भेद, १.यति, एकान्दिन्, वैखानस, कर्मसात्वत् शिखिन् २.आप्त आनाप्त आरम्भिन् संप्रवर्तिन्, ३.योगी जपनिष्ठ तापस शास्त्रज्ञ शास्त्रधारक।*

(*वर्णधर्ममनुज्झित्य ह्याप्तादिष्टेन कर्मणा
यजन्ति श्रद्धया देवं अनाप्तास्ते प्रकीर्तिता:
विना तेनार्थ सिद्ध्यर्थ विश्वात्मानं यजन्ति ये
आरम्भिनस्ते बोद्धव्या: वैष्णवा ब्राह्मणादय:
श्रद्धया ये प्रवर्तन्ते स्वयं सम्पूजने हरे:
अमार्गेण तु विप्रेन्द्र विद्धि तान् संप्रवर्तिन:।)

श्रीप्रश्नसंहिता

श्री प्रश्नसंहिता में लिखा है कि वैखानस ऋषि ब्रह्मा के नख से निकले है। हिमालय में गंगाद्वार यानि हरद्वार में तपस्या कर पाञ्चरात्र के समान एक शास्त्रका निर्माण विष्णु की पूजाके लिए करेंगे। अनेक शिष्य भृगु मुख्य उसका अध्ययन कर उस शास्त्र के अनुसार बिम्ब और आलय दोनों बनायेंगे और उसी शास्त्र के अनुसार प्रतिष्ठा करके पूजा करेंगे।* (*श्रीप्रश्न संहिता अध्याय.५०. श्लोक १६०-१६४.)

वेदान्त देशिकने पाञ्चरात्ररक्षा में पाञ्चरात्र वैखानस शैवागम इत्यादि कहकर वैखानस आगम की पूजा पद्धति को स्वीकार किया है।

शरणागतिदीपिका में त्वं पाञ्चरात्रिकनयेन पृथक् विधेन वैखानसेन च यथा नियताधिकारा: संज्ञा विशेषनियमेन समर्चयन्त: प्रीत्या नयन्ते फलवन्ति दिनानि धन्या: ।

विष्णु संहिता

यत्र वैखानसं कुलम् वैखानसा सात्वताश्च शिष्यैकान्तिन भूतका
गोचाराश्च समाख्याता: वासुदेवाय चाश्रया:
विधेतृपञ्चदैते तु गोचरा: परमार्थका:
अर्चनं सर्वकालं तु देवदेवस्य नित्यश:
वृत्तिभेदक्रियाश्चेति यत्र वैखानसं कुलम्

पद्मपुराण

श्रौतं वैखानसं प्रोक्तम् अर्थात् श्रौत कर्मकाण्डका नाम ही वैखानस है।

अगस्त्य इति शान्तात्मा वभूव ऋषिसत्तम: ।
मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानत: ।। पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड २२-४०.

पर अगस्त्य का नाम तो श्रेण्य मुनियों में वैखानस सम्प्रदाय में नहीं पढा गया है। हां शिल्प शास्त्र के आचार्यों में उनका नाम है। कूर्मपुराण २२ वे अध्याय में ४६ वे श्लोक में वैखानसमर्क: कहा है अर्थात् वैखानसों में अर्क हूँ।

वैष्णव सम्प्रदाय का सूर्य के साथ सम्बन्ध था और वैष्णव धर्म के उत्थान में सूर्य का आदि स्त्रोत हटाया नहीं जा सकता। विष्णुसहस्रानाम में - सर्वग: सर्ववित् भानु: भानु को विष्णु का एक नाम ही कहा है। गीता में भी १०.२१ आदित्यो में मैं विष्णु हूं कहा है। आधुनिक विद्वान भण्डारकर आदि ने सूर्य का विष्णु में मिल जाने की बात कही है। स्कन्दवैष्णवखण्डे --

तपश्चकार धर्मात्मा वैखानसमते स्थित: वैष्णवखण्ड २१.३ पृ.१.

विष्णुपुराण

वैखानसो वापि भवेत् परिव्राडथवेच्छया।
पूर्वसंकल्पितं यादृक् तादृक्कुरु नराधिप ।। ३.१०.१५.

इस पर श्रीधर स्वामी ने टीका करते हुए वैखानसो वानप्रस्थ: कहा है।

कूर्मपुराण

पुष्पमूलफलैर्वापि कैवलैर्वर्तेयत्सदा।

स्वाभाविकैः स्वयंशीर्णै वैखानसमते स्थितः।। कूर्म.उत्तर.२७.२७.

दिव्य तेज का प्रातिनिधिक रूप गिनाते समय वैखानसों में अर्क अर्थात् सूर्य हूँ ऐसा कहा है। सूर्य और विष्णु के सम्प्रदायों का एक मूल या समूल होना विद्वानों ने प्रायः मान लिया है।* (*वैखानसानामर्कः स्यात् यतीनां च महेश्वरः कूर्म पुराण पूर्व.२२.४५ आदित्यानामहं विष्णुः गीता.१०.२१.)

कूर्म पुराण में अन्यत्र जो वैखानस मत का पालन करते है वे वन में प्राप्त पुष्पमूलफल और स्वयं शीर्ण पत्तों को खाकर रहते हैं।* (*पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा स्वाभाविकैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थिताः कूर्म उत्तर.२७.२७.)

अध्याय २७ में वानप्रस्थ धर्म दिया है।

श्रामणेनैव विधिना वह्निं परिचरेत् सदा।

यह श्रामणिक अग्नि वैखानसों की विशेष अग्नि है।

यहां स्त्री प्रसंग न करने का आचार है। वह वानप्रस्थों के लिए है गृहस्थों के लिए नहीं। अध्याय २७ उत्तर में यह और भी दिया है कि ऐसे पुत्र को वेद में अधिकार न होगा और उसका वंश भी पतित हो जायगा।* (*अध्याय २७ उत्तर १७-१८.)

कूर्म पुराण ३३.३२ में बालखिल्यों को रुद्र के गणों में पढा गया है। विभाति रुद्रै रुदितो दिविस्थैः समावृतो योगिभिरप्रमेयैः। स बालखिल्यादिभिरेष देवो यथोदये भानुरशेषदेवः स्वर्गलोक में रहनेवाले अप्रमेय योगी और बालखिल्यों से परिवृत रुद्र ऐसे लगते थे मानों अशेष देवों से परिवृत सूर्य। सर्पा वहन्ति देवेशं यातुधानाः प्रयान्ति च बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवायोर्दयाद्रविम्। कूर्म.४.२०.

कोश

त्रिकाण्डशेष कोष में वैखानस पदका अर्थ ब्रह्मज्ञाता ऐसा दिया है।* (*विखनसं ब्रह्माणं वेत्ति) अन्यकोशों में भी सम्प्रदाय विशेष के अर्थ में प्रयोग उपलब्ध नहीं है।

प्रतिष्ठाविधिदर्पण में ग्रन्थकार नृसिंह वाजपेयी ने वैखानस गुरुओं की एक तालिका दी है। नारायण ने ब्रह्म को सब कुछ बताया। उन्होंने विखना मुनीन्द्र को और

उन्होंने कश्यप आदियों को बताया।* (*वैखानसो वने वासी वानप्रस्थश्च तापस: वैजयन्ती कोश ब्राह्मण अध्याय १२४ वैखानसो वानप्रस्थो: भिक्षु सन्यासिनो यति: अभिधान चिन्तामणि ३.४७३) (*नारायणो ब्रह्मण आह सर्वं वैखानसं वैदिक मन्त्रयुक्तम् सोऽयं विराजो विखना मुनीन्द्र: सकश्यपादेरवदत्तदेतत्।)

साहित्य ग्रन्थों में कालिदास की अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रयुक्त वैखानस पद सर्व विदित है।

नवीं शती के जयन्तभट्टने भी अपने आगमाडम्बर नामक नाटकमें -- भार्गव वैखानस सम्प्रदाया: ऐसा लिखा है। भार्गव परशुराम का नाम है। परशुराम सूत्र तन्त्र ग्रन्थ है।

दण्डिन् ने अवन्ति सुन्दरी कथा में भी वैखानस रीत्या गृहार्चन इत्यादि लिखा है। अन्यत्र भी मामल्लपुर (महाबलिपुरम्) के त्रिविक्रम देवालय में वैखानस रीत्या अर्चना सम्प्रदाय था ऐसा अनुमान करने का संकेत मिलता है।

भट्टिकाव्य में भी वैखानस पद घुमक्कड साधुओं के अर्थ में पृथक् है--

वैखानसेभ्यः श्रुतराम वार्ताः ततोविशिञ्जान पतत्रिसंघम्।
अग्रं लिहाग्रं रविमार्गभृंगम् आहिरेद्रिं प्रतिचत्रकूटम्।। भट्टि ३.४६.

जमदग्नि स्मृति में--

वैदिकेन विधानेन पूजां कुर्याद्धरेस्ततः।।
अलाभे वेदमन्त्राणां पाञ्चरात्रोदितेन वा।।

यदि वैदिक मन्त्र प्राप्त हो तो हरि की पूजा वैदिक मन्त्रों से अर्थात् वैखानस मार्ग से और यदि प्राप्त न हो तो पाञ्चरात्र विधान से अर्थात् तामिल मन्त्र पढ कर भी विष्णु पूजा करे।

बौधायन धर्म के द्वितीय खण्ड में वानप्रस्थों वैखानसशास्त्रेण समुदाचारेण लिखा है।

बालखिल्य

वैखानसों के साथ बालखिल्यों का नाम प्राय: पठित है। एतरेयब्राह्मण में-- त.उ. तृतीय सवने वज्रेण बालखिल्याभिर्वाचकूटेनैकं पद या बलं विरुज्य गा आप्नुवन्ति।

बालखिल्यों ने बलासुरों को मारकर गायें विमुक्त कर ली। पुन: ऐतरेय ६/२८.गो.उ.२/८ में--

प्राणा: वै बालखिल्या प्राणानेवास्य तत्कल्पयति

बालखिल्य प्राण है। उनको मिलाओ।

स यत्प्रथमं षट् बालखिल्यानां सूक्तानि विहरति प्राणं च तद्वाचं च विहरति। यद्वितीयं चक्षुश्च तन्मनश्च विहरति। यत तृतीयं श्रोत्रं तदात्मना च विहरति-- ऐ.ब्रा.६.२.२४.

प्रथम ६ बालखिल्यों को मिलना एक प्रकार से प्राण और वाणी को परस्पर मिलाना है। और तृतीय स्थान पर श्रोत्र और आत्मा को परस्पर मिलना है।

कश्यप ज्ञान काण्ड ७८ में वैखानस और बालखिल्यों को अलग अलग माना है। वेङ्कटाचल पर्वत पर बालखिल्य रहते थे स्वाश्रमाचारनिरतै: स्ववर्णोक्तविधायिभि:। बालखिल्यैश्च ऋषिभि: समन्तात्मरिवेष्टितम्।। वेङ्कटाचल माहात्म्य १९.२८.

बालखिल्य के अन्य सन्दर्भ वामन २७.५६-५९, पाद्म १.१८.९६-१११ ब्राह्मण १.३५.९४ शिव २(३) ४९,१-४७, स्कन्द ६.७७.३०-७६; ६.७९, १-५४ तथा स्कन्द वैष्णव खण्ड में. २.१९.२८ में प्राप्त है।

अध्याय चार

अत्रि

अत्रि एक सूक्त दृष्टा के रूप में ख्यात है। वायु ने मन्त्रकार महर्षियों की एक तालिका दी है। जिसमें अन्य मन्त्रकार ऋषियों के साथ साथ अत्रि का नाम भी पठित हैं।* (*अत्रिरर्चिसनश्चैव श्यामावाश्चाथविष्ठुर: वल्गूतको मुनिर्धीमांस्तथा पूर्वातिथिश्च य: इत्येते चात्रय: प्रोक्ता मन्त्रकारा महर्षय: वायु ५९.१०४) ऋग्वेद के पांचवे मण्डल में अत्रि गोत्र के अनेक सूक्तकारों का उल्लेख है। अत्रि ने चतूराज यज्ञ भी आरम्भ किया था।* (*तै.सं. ७.१.८.) एक बार इसका शरीर अग्निकुण्ड में गिर गया और बरी तरह झुलस गया तब अश्विनों ने इसकी चिकित्सा की।* (*ऋ.१.११८.७;११९.६, १.११२.७.)

यह लोक हित की बात करता था। अत: राजा ने क्रोधित होकर इसे कैद खाने में बन्द कर दिया।* (*ऋ.५.६६.) इसका अपर नाम पाञ्चजन्य भी था।* (*ऋ.३.१.११५.) यह ज्योतिष का भी प्रगाढ पण्डित था। ग्रहण की जानकारी का यह सर्वप्रथम वेत्ता था। ग्रहण लगने पर अत्रि सूर्य को वापस लाते हैं ऐसा माना जाता है।* (*ऋ.५.४०.५-७, ब्रह्माण्ड ३.८.७७ हरिवंश १.३१.१३-१४.अनु.२०१.)

स्वायंभुव मन्वन्तर में सृष्टि प्रक्रिया के चालू रखने के लिए ब्रह्मदेव द्वारा निर्मित दस मानस पुत्रों में से एक था।* (*वायु.१.९.३४.१६८. अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमाङ्गिरसं तथा मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम्।)

यह ब्रह्मदेवके नेत्र से पैदा हुआ था।* (*भाग.२.९.२३) इसके अनेक पुत्र महर्षि थे। मत्स्य.१९७ तथा १९८ में अत्रि गोत्र और प्रवर का वर्णन उपलब्ध है। कर्दम पुत्री अनुसूया इसकी पत्नी थी। दत्तात्रेय, चन्द्र, दुर्वासा इसके पुत्र थे।* (*भाग.४.१.१५,३३; ब्रह्माण्ड.३.८.८२,६५; मार्कण्डेय.१६, अग्नि.२०.१२) इसका गौतम के साथ शास्त्रार्थ हुआ था।* (*वन.१८८) यह स्वायंभुव मनुका जामाता था। दक्ष के द्वारा सती और शंकर को न बुलाने के कारण सती ने स्वयं को अग्निकुण्ड में डाल दिया था। उसको बचाने के प्रयत्न में इसकी मृत्यु हो गयी।

अनसूया से इसको पांच पुत्र हुए-- श्रुति, सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति तथा सोम इस मन्वन्तर में असंख्य आत्रेय पैदा हुए।* (*ब्रह्माण्ड.२.१२.२५.) शंकर के घर से ही यह पुन: वैवस्वत मन्वन्तर में पैदा हुआ। यह एक प्रजापति था।* (*महा.स.११.१५.

शान्ति.२०१, मत्स्य.१७१,२६-२७) पुष्कल महर्षि इसका पुत्र था।* (*महा.आदि ६०.६में) स्वायम्भुव मन्वन्तर इसने उत्तानपादको दत्तक लिया।* (*ब्रह्मण्ड. २.३६.८४-९०.हरीवंश.१.२.) अत्रिको पैतामहर्षि कहा जाता है।* (*मत्स्य.१७१.२८.) वायु के अनुसार व्यास की पुराण शिष्यपरम्परा में यह रोमहर्षण का शिष्य था। वायुपुराण में अत्रि को दत्त दुर्वासा दो पुत्र तथा ब्रह्मवादिनी नामक कन्या उत्पन्न हुई ऐसा लिखा है। महाभारत शान्ति २०१ में भी अत्रिको सोम तथा अर्यमा नामक दो पुत्र थे ऐसा, लिखा है।

मीमांसक

आचार्य औडुलोमि ने ब्रह्मसूत्र ३.४.४५ में आचार्य आत्रेय के मत का खण्डन किया है। मीमांसा दर्शन में भी कृष्णजिनि और बादरि के मत का खण्डन करने केलिए आचार्य आत्रेय के मत का उल्लेख किया है। इनके मीमांसक होने की इससे पुष्टि होती है।

धर्मशास्त्रकार

आनन्दाश्रम से प्रकाशित ग्रन्थ स्मृतिसमुच्चय में अत्रि संहिता तथा अत्रिस्मृति नामक दो ग्रन्थ हैं। अत्रि संहिता में ९ अध्याय हैं। चार सौ श्लोक हैं। अनेक प्रायश्चित्त बताये गये है। योग, जप, कर्मविपाक, द्रव्यशुद्धि तथा प्रायश्चित्त का विचार किया गया हैं।

अत्रि स्मृति में जप, प्रायश्चित्त आदि का वर्णन है। मनु ने इनके मत का उल्लेख किया है।* (*मनु.३.१६) नन्दपण्डित कृत दत्तकमीमांसा में इनके मत का उल्लेख है।* (*तत्राहात्रि :--

अपुत्रेणैव कर्त्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिस्सदा।
पिण्डोदकीक्रियाहेतोर्यस्मात्तस्मात्प्रयत्तः।। ९.पृ.३.)

इनकी लघु अत्रि स्मृति तथा बृहत् आत्रेय स्मृति नामक ग्रन्थ भी उपलब्ध है। अत्रि का यह श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध ही--

अस्नाशी मलं भुङ्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम्
अहुताशी कृमिं भुक्ते ह्यदाता विषमश्नुते ।।

जो बिना स्नान के भोजन करता है वह विष्ठा खाता है जो बिना जप के भोजन

करता है वह मवाद और रक्त का भक्षण करता है। जो बिना आहुतियां दिए खाता है, वह कृमि कीडे खाता है और जो दाता नहीं हैं वह विष खाता है।

स्पृश्यास्पृश्यभेद अत्रि को मान्य नहीं था। अत्रि का यह श्लोक प्रसिद्ध है--

देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते ।। अत्रि पृ.२३.

देवयात्राओं में यज्ञ प्रकरणों में समस्त उत्सवों में स्पृश्यास्पृश्य दोष नहीं है। आत्रेय शाखा का उल्लेख काण्डानुक्रमणी और प्रपञ्चहृदय में मिलता है। आत्रेय एक गोत्र हैं। इस नाम को धारण करनेवाले अनेक आचार्य हो चुके हैं। स्कन्द पुराण नागर खण्ड अध्याय ११५ में ---

आत्रेया: दशसंख्याता श्शुक्लात्रेयास्तथैव च ।।१६।।

कृष्णात्रेयास्तथा पञ्च च ।।२३।।

अर्थात् आत्रेय गोत्रवाले दस शुक्ल और पांच कृष्णात्रेय गोत्र के है।

आयुर्वेद की चरकसंहिता में पुनर्वसु आत्रेय का मूल उपदेश है। इसी पुनर्वसु आत्रेय का सम्बन्ध इस आत्रेयी संहिता से हो सकता है। लगभग सातवीं शताब्दी के जैन आचार्य अकलंक देवने अपने राजवार्तिक के पृ. ५१ में तथा २९४ पर अज्ञान दृष्टिवाले वैदिक लागों की ३७ शाखायें गिनायी हैं। बहुत सम्भव है वसु भी उससे एक है। हो सकता है कि इस नाम से भी आत्रेय शाखा की प्रसिद्धि या पहचान हो। आत्रेय शाखावाले ही कृष्ण आत्रेय कहाते होंगे। चरक संहिता स्थान १६.१३१ पर टीका में चक्रपाणि ने लिखा है कृष्णात्रेय पुनर्वसोरभिन्न एवेति वृद्धा:। भैलसंहिता में पुनर्वसु को चान्द्रभाग लिखा गया है। इसका यही अभिप्राय है कि उनका आश्रम कहीं चेनाब या चन्द्रभागा नदी पर था। पुनर्वसु को भैलसंहिता में कृष्णात्रेय भी कहा है। महाभारत शान्तिपर्व में २१२ में लिखा है--

देवर्षि चरितं गर्गो कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम्।।३।। अर्थात् कृष्णात्रेय ने चिकित्साशास्त्र की रचना की।

आत्रेय संहिता-- काण्डानुक्रमणी में जिस संहिता का वर्णन किया गया है वह यद्यपि तैत्तरीय संहिता से बहुत मिलती है तथापि वह तैत्तरीय संहिता नहीं है। आत्रेय संहिता में याज्यानुवाक्यायें एक ही स्थान पर हैं। वर्तमान तैत्तरीय संहिता में वे पहिले चार काण्डों में

यत्र तत्र विखरी पडी थी। इस प्रकार आत्रेय संहिता में अश्वमेध प्रकरण भी एक ही स्थान पर प्राप्त है।

आत्रेय ऋषि तैत्तरीयसंहिता का पदपाठकार भी था। बोधायन गृह्य में ऋषि तर्पण के समय इसे पदकार आत्रेय कहा है।

देश

अत्रि दक्षिण देश का रहनेवाला था। वनवास काल में राम इनके आश्रम में रहे। भागवत में नारद आदि अनेक ऋषियों के साथ मिथिला जाने का वृत्तान्त प्राप्त है।* (*नारदो वामदेवोत्रि: भाग.१०.८६.१८.)

वास्तुशास्त्र विशारद

इसने वास्तु पर भी ग्रन्थ रचा। मत्स्य ने १८ वास्तु शास्त्र के आचार्यों की एक तालिका दी है। उसमें भृगु और अत्रि दोनों हैं।* (*मत्स्य.२५२.१२.)

अत्रि-कितने?

बृहत्संहिता ने पुण्यस्नानाध्याय में जिनसे राजा के अभिषेक की प्रार्थना की गयी है उनमें देवता ऋषि भी सम्मिलित हैं। ऋषियों की तालिका में अत्रिका नाम दो बार पढा गया है।* (*मरीचिरत्रि: पुलह: पुलस्त्य: क्रतुरङ्गिरा बृ.सं.४८.६३ ऊर्व: संवर्तकश्चैव च्यवनोत्रि: पराशर: ४८.६६) तब अत्रि एक नहीं अनेक हैं। मरीचि के साथ ब्रह्मा की मानसी सृष्टि में उत्पन्न अत्रि ऊर्व संवर्तक आदि स्मृतिकारों के साथ पठित अत्रि पृथक् व्यक्ति होंगे।

कूर्म ने अत्रि को रुद्र परायण कहा हैं।* (*गौतमोगस्तिरत्रिश्च सर्वेरुद्रपरायणा: कूर्म.२२.८३.)

अत्रि के वैखानस ग्रन्थ

अत्रि के आत्रेय तन्त्र , विष्णु तन्त्र तथा उत्तर तन्त्र इस प्रकार तीन तन्त्र ग्रन्थों का पता चला है जिनकी ग्रन्थ संख्या ८८,००० है। आजकल प्राप्त ग्रन्थ समूर्तार्चनाधिकरण ही है।

ज्यौतिष प्रवर्तक आचार्य

पराशर के मत से ज्योतिष, के १९ प्रवर्तक आचार्य हैं जिनमें अत्रि भी अन्यतम है।* (*विश्वसृङ्ग नारदो व्यासो वसिष्ठोत्रि: पराशर:

लोमशो यवनः सूर्यश्च्यवन कश्यपो भृगुः
पुलस्यो मुनिराचार्यः पौलिशः शौनकोऽङ्गिरा
गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया ज्योतिप्रवर्तका।)

आयुर्वेद

काश्यप संहिता के अनुसार कश्यप 'वसिष्ठ' अत्रि भृगु इनके पुत्र शिष्य एक आयुर्वेद परम्परा के चालक हैं।* (*अत्रिदेव विद्यालंकारः आयुर्वेदका बृहत् इतिहास पृ.४६१.)

परिवार

इसकी पत्नी का नाम अनसूया था। अनसूया कपिल की बहिन थी ऐसा पुराणों में सन्दर्भ प्राप्त है। वह कर्दम देवहूति की कन्या थी।

अत्रि एवं उसके वंशज ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल के ऋषि थे। ५.३९.५. तथा ५.६७.५. अत्रिन् शब्द का प्रयोग भी ऋग्वेद १.२१.५. में प्राप्त है। निस्सन्तान बनाने से लिए प्रार्थना की गयी है। एक राक्षस के नाम के लिए भी अत्रिन् शब्द पढा गया है। अत्रिसंहिता में ८३ अध्याय है। क्षेपक अध्याय १६ से अधिक हैं। ग्रन्थ का नाम समूर्तार्चनाधिकरण है। समूर्तार्चन के बारे में सर्वाङ्गीण जानकारी इस ग्रन्थ में उपलब्ध है। छ भागों में पूजा विषय की जानकारी है-- कर्षण, प्रतिष्ठा, पूजा, स्नपन, उत्सव और प्रायश्चित, पूजा का अर्थविस्तार गमनार्ह है। इसमें उपचार-- पूजा भी सम्मिलित है।

अत्रि वेदान्त का भी आचार्य है

वेदान्तभूमिकुशलो मुनिरत्रिवंश्यः संक्षेपशारीरक पृ.३.श्लोक २१८.

सुरेश्वराचार्य ने अपने बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक में स्वगुरु होने की बात कही है।

तं वन्देत्रिकुलप्रसूतममलं वेधऽभिधं मद्गुरुम् बृ.अ. भाष्यवार्तिक।

पोलहम् श्रीरामशास्त्री ने द्राविडात्रेयदर्शनम् नामक ग्रन्थ की रचना १९५१ में की है और यह ग्रन्थ संस्कृत कालेज, मैलापुर मद्रास से प्रकाशित है।

कश्यप

कश्यप या काश्यप का सन्दर्भ ऋग्वेद (१.११४.२) से लगाकर बौद्ध वाङ्मय में और अर्वाचीन पुराणों तक में प्राप्त है। शायद एक से अधिक मन्वन्तर में भी

आपका चरित्र फैला हो। देवताओं की सहायता, राक्षसों का संहार, सुदीर्घ यज्ञ कर्ता, पृथ्वी की सृष्टि, परिपालन, मान्त्रिक, बहु - प्रसिद्ध ज्यौतिषज्ञ, शिल्पशास्त्र पारंगत, भक्तिमार्ग का आचार्य,* (*बृहत्संहिता के एक टीकाकार ने वास्तु पर आप का मत उद्धृत किया है।) स्मृतिकार आदि रूप से आप की ख्याति भारतीय वाङ्मय में बिखरी पडी है। निश्चय ही इनकी तेजस्विता बुद्धि वैचक्षण्य इतना प्रशस्त था कि बौद्ध सम्प्रदाय ने इनको ही बुद्ध के महानिर्वाण के पश्चात् उनके वचनों का विश्वसनीय संग्रह करने के लिए नियुक्त किया।

इतने सब महान कार्यों का कर्ता एक ही व्यक्ति था या अन्य कई यह कहना अभी कठिन है।

वेद

ऋग्वेद :

ऋग्वेद में आपका सन्द्रर्भ एक बार उपलब्ध है।* (*ऋ..९.११४.२.) परवर्ती संहिताओं में बहुलतया प्राप्त है। ऐतरेय ब्राह्मण में जनमेजय के साथ इनका भी नाम पढा गया है। तैत्तरीय आरण्यक ने 'काश्यपाददिता: सूर्या:' कहा है।* (*कश्यप: पश्यको भवति यत्सर्वं परिपश्यति इति सौक्ष्म्यात्।) सूर्य की उत्पत्ति कहा है। एकाग्निकाण्ड में आपको दीर्घ आयुष देनेवाला कहा है। वंश ब्राह्मण ने सामवेद के विद्वानों की तालिका में आपका नाम पढा है। यजु: सम्प्रदाय में भी आपका नाम है।

उपनिषद्

उपनिषदों में आपका नाम बृहदारण्यक, महानारायण और जैमिनीय ब्राह्मणोपनिषत् में पढा गया है।* (*इमामेंव वसिष्टकाश्यपावयमेव वसिष्ठेयं कश्यप बृ.२.२.४; २.२.६. असितो वार्षगण्यो हरितान् काश्यपान् बृ.६.५.३. कश्यप उलूखल ख्यात बृ. ६.५.२०. तेन या ब्रह्मदत्तासि काश्यपेनाभिमन्त्रिता महानारायणोपनिषत् ५.४. जैमिनीय ब्राह्मणोपनिषत् ४.३.१.) आप गायत्री मन्त्र के प्रथम उपदेष्टाओं में है।* (*श्रुषो बृहेय काश्यप: जैमिनीयोपनिषत् ब्राह्मण ३.७.३.पृ.१३५.)

रामायण में इनका सन्दर्भ प्राप्त है। आरण्यकाण्ड में कद्रू और बिनता का भी। महाभारत में सांख्य श्रोताओं की एक तालिका दी है जिसमें आपका नाम पठित है।* (*शान्ति ३.८.;५८-६२. चित्रशाला) इन्द्र की पूजा करनेवाला एक ब्राह्मण बताया है।*

(*शान्ति. १७३.)

पुराण

स्कन्द पुराण ने आपको एक मान्त्रिक कहा है। इसकी एक कथा है।*
(*स्कन्दपुराण वैष्णव खण्ड २.१.११.)

यह एक प्रसिद्ध मान्त्रिक था। सर्पदंश के विषविद्या का विज्ञ था।* (*महा.आ. २.१०.१६.) सर्प सत्र के समय यह राजा के यहां जा रहा था। रास्ते में इसे तक्षक मिला। तक्षक सर्पराज है। इसकी मन्त्रविद्या विशेषकर विष मारक ज्ञान बहु प्रसिद्ध है। तक्षक ने राजा के पास जाने का कारण पूछा* (*तक्षक संवाद महा.आ.४२.३८.) तो इसने प्रत्युत्तर में राजा के प्राण रक्षण की बात कही। इससे तक्षक घबरा गया। प्राणरक्षा के लिए इसे राजा के पास जाने से विमुख किया। प्रलोभन भी दिया। यह न गया। पर वापस चला गया। राजा की मृत्यु हो गयी। परिवारवालों ने इसके प्रत्यागमन पर आश्चर्य और क्रोध प्रकट किया तथा इसे शाप देकर पतित घोषित कर दिया।

पाप प्रायश्चित्त के लिए यह वेङ्कटाद्रि आया। पाप विनाश तीर्थ में स्नान करने से इसका पाप प्रक्षालित हुआ।

पद्मपुराण

भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाये यह आख्यान लोकविदित है। पर पद्म पुराण ने गंगावतरण का श्रेय भी काश्यप को ही दिया है। किसी भी महत्त्वपूर्ण काम करने के लिए तपस्या जरूरी है। तपस्या तन्मयता है। अन्तर्ज्वाला के तेज को साध्येतर कार्यों में विश्रृंखलित होने से बचाने का नाम है। सुरसरित् द्युलोक मात्र में प्रवहित होनेवाली विष्णुपाद सम्भूता को पृथ्वी पर लाना पृथ्वी को सस्य श्यामला बनाना, 'सर्वेजना: सुखिनो भवन्तु' का उद्घोष उसको कार्य रूप से परिणत करना क्या तप के बिना सम्भव है? अर्बुद पर्वत पर घोर तपस्या की। भोले शंकर प्रत्यक्ष हुए। तपस्या का कारण पूछा। कश्यप ने लोक कल्याण ही प्रमुख ध्येय कहा -- लोक कल्याण के निमित्त तो सहायता देने के लिए तुरंत तैयार हो गये। कैसे और कहां ? शिवशीर्षशिरोजाल के अतिरिक्त उस जल प्रपात के घोर घुर्घुरायमाण आवर्तन को कौन सम्भाल सकता है ? काश्यप तीर्थ स्थान चुना गया। जहां से सर्व प्रथम गंगा पृथ्वी तल पर प्रवाहित होगी। पृथ्वी की प्यास बुझायेगी। लोगों की भूख। इसीलिए जैसे गंगा का नाम भागीरथी है, जह्नुतनया है उसी

प्रकार काश्यपीया भी है।

शिवपुराण

देवासुर संग्राम में इन्होंने इन्द्र की सहायता की। इनका सर्वतोमुख पाण्डित्य देव संरक्षण कार्य में असीम कार्यकारी हुआ। आयुर्वेद और मन्त्रविद्या का ज्ञान सारी स्थितियों को तुरंत सम्भाल लेता। अपना सामर्थ्य कम समझकर ये काशी आये। तीन लोक से न्यारी नगरी में जहां आनन्दवन में भैरवों से उपस्कृत शिव वास करते थे। भूतनाथ से प्रार्थना की कि देवगण विकट परिस्थिति में हैं इनको कौन बचा सकता हैं ? आप ही केवल। शिवजी ने सहायता का वचन दिया। कश्यप की पत्नी सुरभि के गर्भ में प्रवेश किया। ११ अवतार ग्रहण किये। ये अवतार आज भी आकाश में दक्षिण पूर्व कोण में देखे जा सकते हैं।

भागवत

भागवत पुराण में भी काश्यप का प्रसंग आया है।* (*पत्नी मरीचेस्तु सुषुवे कर्दमात्मजा। कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् भाग ४.१.१३.) षष्ठ स्कन्ध में पत्नियों का नाम दिया है जो महाभारत से पृथक् है। भागवत अदिति दिति दनु काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला मुनि क्रोधवशा ताम्रा सुरभि सरमा तिमि* (*६.६.२५.भाग.) महाभारत में -- अदिति दिति दनु कला (काष्ठा) दनायु (अरिष्टा) सिहिंका (सुरसा) क्रोधा (इला) प्राधा विश्वा विनता कपिला (मुनि) कद्रू* (*आ.६६.११.) बच्चों के नाम भी दिये हैं।* (*आ.६६.११.५२.)

अग्नि पुराण (१९.१.) में कश्यप और अदिति से १२ आदित्यों की उत्पत्ति की कथा दी है। ये सब वैवस्वत मन्वन्तर में पैदा हुए थे। उनके नाम हैं-- विष्णु, शक्र, त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, भग तथा, अंशु। कश्यपके दिति से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष एक कन्या संहिका भी थी जिसका विवाह विप्रचित्ति से हुआ।

भक्ति मार्ग का आचार्य

शाण्डिल्यिने अपने भक्तिसूत्र में आपके मत का उद्धरण दिया है।* (*'तामैश्वर्यपरां काश्यप: परत्वात् ' शाण्डिल्यभक्ति सूत्र २.१.२९. इस पर टीका-- एतन्मते

जीवब्रह्मणोरत्यन्तं भेद इति) बुद्धि जब एक मात्र परमेश्वर का ही आश्रय लेती है तभी मोक्षदायिनी हो सकती है। जीव ईश्वर को पृथक् मानते हैं। सांख्य के मुनियों मे आप की परिगणना की जा चुकी है।

बौद्ध धर्म--

बौद्ध धर्म में कश्यप एक महान आचार्य था। बौद्ध अभिधर्म का प्रमुख ज्ञाता था। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् सर्व प्रथम कश्यप को ही बुलाकर बौद्ध दर्शन का स्वरूप स्थिर करने के लिए कहा गया। निश्चय ही अपने समय का क्रान्तदृष्टा होगा। सांची पूर्व तोरण द्वार पर कश्यप के धर्म परिवर्तन की कथा दी है जिसमें बुद्ध ने पानी पर चलकर उनको सगोत्र बौद्ध धर्म में दीक्षित किया।

व्यक्तिगत जीवन

ब्रह्मर्षि। मरीचि ऋषि का पुत्र। माता का नाम कला और पुत्री कर्दम। पत्नियां अनेक। विभाण्डक का गुरु और अग्नि का शिष्य। पुत्र की कामना से यज्ञ किया* (*महा.आ.३१.५.) सौतेली मां का नाम ऊर्णा था। स्वयम्भू और वैवस्वत मन्वन्तर दोनों में एक ही कश्यप था। सुरूपा इसकी बहिन थी जिसने ब्रह्मा के पुत्र से विवाह किया था।

सप्तर्षियों में अन्यतम। गोत्रकार ऋषि। प्रवर आवत्सार-- नैध्रव -- काश्यप। यह आयुर्वेद का विद्वान था। शिल्प शास्त्र के मूल आचार्यों में इस की गिनती है। स्मृतिकार होने के नाते आपका मत हेमाद्रि, विघ्नेश्वर, माध्वाचार्य ने अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। इसने ही बालखिल्यों और इन्द्र के बीच मैत्री सम्बन्ध स्थापित कराया। यह वसिष्ठ का समकालीन था। ताक्ष्र्य और अरिष्टनेमि भी शायद इसीके नाम हों।

भीष्म को अन्तिम समय में देखने केलिए जानेवालों में आप भी थे। (भीष्म स्तवराज श्लोक १०.)

क्षत्रियों की रक्षा

ऐसा समझा जाता है कि परशुराम ने वैवस्वत मन्वन्तर में एक अश्वमेध यज्ञ किया। यह यज्ञ सरस्वती नदी के किनारे राम तीर्थ नामक स्थान में किया गया। इस यज्ञ में अध्वर्यू कश्यप था। परशुराम ने इस यज्ञ में अध्वर्यू कश्यप को सारी पृथ्वी दान

में दे दी।* (*शान्ति.४८,६४) पर अन्यत्र इस दान को विश्वकर्मा द्वारा प्रदत्त कहा गया है। समस्त पृथ्वी को दान में पाते ही इसने अपनी भूमि से हट जाना के लिए परशुराम से कहा। परशुराम को दान में दी गयी भूमि पर से हटने में तो कोई आपत्ति न थी, पर सन्देह था कि शायद कहीं कोई क्षत्रिय चूडी पहिन कर बैठा न हो? और कश्यप उन्हें बचाने का प्रयत्न करते हों।

क्यों कि सारी भूमि दान में दे दी थी अत: स्थित भूमि पर तो परशुराम जा नहीं सकते थे अत: उन्होंने समुद्र में से नयी भूमि निकाल ली। वहीं पर रहने लगे। यह क्षेत्र कोंकण क्षेत्र होगा। वैसे केरल को भी परशुराम क्षेत्र कहते हैं और समुद्र तीर पर बसे होने के कारण भूमि में नमी अधिक मात्रा में होने के कारण अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दीखता। परशुराम कल्पसूत्र भी वहीं प्रचलन में है।

परशुराम के जाने बाद, कश्यप ने भी समस्त भूमि को योग्य और विद्वान् ब्राह्मणों में बाँट दी। स्वयं तपस्या करने जंगलों में चले गये।

महाभारत आदि पांचवें अध्याय में भृगु की उत्पत्ति अग्नि से बताई गयी है। महाभारत ६.६.५५. में एक काश्यप द्वीप का वर्णन है। क्या काश्यप द्वीप से कश्यप का कोई सम्बन्ध हो सकता है? इसकी शश के कान से उपमा दी है। इस द्वीप को उत्तर में स्थित बताया है। इसके साथ ही नाग द्वीप का नाम भी पाया गया है जो दक्षिण में स्थित बताया गया है। नाग जाति का भारतीय वाङ्मय में विपुल रूप से सन्दर्भ प्राप्त है और आज पूर्वोत्तर में भारत नागालैण्ड में रहते हैं और प्राय: ईसाई हो गये हैं। वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों में आपका विशेष स्थान है। बृहत्संहिता में आपका मत दिया है तथा टीकाकार ने आपका अनेक स्थलों पर आपके ग्रन्थ के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

बोधायन धर्म सूत्र १.१२.२० पर आप का एक श्लोक उद्धृत है। वन पर्व २९.३५-४० में भी आपका धर्म सूत्र का सन्दर्भ है। अपरार्क ने कम से कम १३ बार आपका नाम लिया है। तथा स्मृतिचन्द्रिका ने १८ उपस्मृतियों में आपका नाम लिया है। दीघनिकाय तेविज्जसुत में बुद्ध ने दस मनीषियों के नाम गिनाये हैं जिनमें काश्यप और भृगु का पाठ है। पर मनु १.३५. मरीचि अत्रि भृगु शामिल हैं।

भृगु

भृगु एक महर्षि जो ब्रह्मा के पुत्र थे। कहा जाता है कि ये ब्रह्मा के हृदय के उत्पन्न हुए थे। भृगु वंश के आदि प्रतिष्ठापक भार्गवों का योगदान अनेक पुराणों में विखरा पडा

है। जन्म की अनेक कथायें है। ब्रह्मा की त्वचा से उत्पन्न हुए।* (*उत्संगात् नारदो जज्ञे दक्षोऽगुंष्ठात् स्वयंभुवः। प्राणाद्वशिष्ठः संजातः भृगुस्त्वचः करात्क्रतुः।।)

भृगु ने विष्णु के वक्षस्थल पर पादप्रहार किया। रामावतार में भी शिव धनुषभङ्ग पर राम परशुराम का युद्ध हुआ यह प्रसिद्ध ही है। भृगु वैखानस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों में अन्यतम है यह सर्वविदित है। अतः भृगु एक नहीं अनेक होंगे। काल भी अनेक हैं क्यों कि उद्योग पर्व में कृष्ण के साथ दक्षिणावर्त की यात्रा का वर्णन भी प्राप्त है।* (*उद्योग ८३.८७) सारे भारत में भृगु के नाम से तीर्थस्थल प्रसिद्ध हैं। केरल का तो नाम ही परशुराम क्षेत्र है। परशुराम कल्पसूत्र एक तन्त्र ग्रन्थ है। महाभारत आदि पांचवे अध्याय में भृगु की उत्पत्ति अग्नि से बताई गयी है।

भृगुकुल के वंशज मन्त्रद्रष्टा और गोत्रप्रवर्तक हैं। मनुस्मृति के छठे अध्याय के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है-- इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां षष्ठोऽध्यायः' क्या मनुस्मृति ने यह अध्याय भृगुसंहिता से लिया है? भृगुनाडी ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। महाभारत, भागवत, वायु, ब्रह्म, मत्स्य, स्कन्द आदि पुराणों में आपकी कथा दी है।

जीवन वृत्त

जब तक यह न समझ लिया जाय कि भृगु नाम से अनेक [illegible] अनेक युगों में हुए हैं तब तक परिवार जनों की विविधता तथा उनमें नामों की अ[illegible]ता बनी ही रहेगी। कम से कम दो तो मानकर चलना चाहिए।

<u>प्रथम</u> : शिवजी की जटा से निकले मणिमान भैरव ने दक्ष यज्ञ ध्वंस के समय भृगु को पकड लिया।* (*भृगुं बबन्ध मणिमान् भाग.४.५.१७ भृगो र्लुलुञ्चे सदसि योहसच्छ्मश्रुदर्शयन् भाग. ४.५.१९.) और शायद मार भी डाला। यह जन्म ब्रह्मा के हृदय से हुआ होगा। पुत्र कवि धाता विधाता च्यवन आदि* (*आनु. ६७.४१-४५.) अमरकोश करने लक्ष्मी के अनेक पर्यायों में भार्गवी भी एक नाम दिया है।* (*भार्गवी लोकजननी क्षीरसागरकन्यका अमरकोश) पत्नी का नाम ख्याति था।* (*भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् भाग. ४.१.४३.) में भी इसकी पुष्टि है।* (*वि.पु.१.१०.)

<u>द्वितीय</u> : दक्षयज्ञ में मारे जाने के बाद वरुण के क्रतु में जन्म। वैवस्वतमन्वन्तर में पावक से जन्म।* (*आ.५.७.) भार्या का नाम पुलोमा जिससे सात पुत्र हुए-- च्यवन,

वज्रशीर्ष, शुचि, और्व, शुक्र, वरेण्य तथा सवन।* (*अनु.१३२.४०)

भृगु ने जीवन दर्शन का उपदेश दिया।* (*शान्ति १८७.) क्षत्रियों के संहार की कथा पुराण प्रसिद्ध है। सगर महाराज को पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद दिया।* (*रामा बाल. ३८.६-७)

भृगु ने ब्रह्मा से क्रियायोग का ज्ञान प्राप्त किया।

भृगु का नाम वास्तु शास्त्र के १८ प्रवर्तकों में मत्स्य ने पढा है।* (*भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मामयस्तया। नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्ष: पुरन्दर: ब्रह्मा कुमारो नन्दीश: शौनको गर्ग एव च। वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती। अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशका: मत्स्य.२५२.२-४.)

वायु ने १०३८० ऋचाओं तथा १००० मन्त्रों के रचयिता के रूप में इनका नाम लिया है।* (*एकादशसहस्त्राणि दशचान्या दशोत्तरा: ऋचा दशसहस्त्राणि अशीति त्रिशातानि च।।७०।। सहस्त्रमेकं मन्त्राणामृचामुक्तं प्रमाणत: एतावद्भृगुविस्तरम्।। वायु. ६१.७०-७१.)

मनुस्मृति के अन्तिमश्लोक में यह भृगुप्रोक्त है ऐसा लिखा है।* (*इत्येत - मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन्द्विज: भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम्। मनु.१२.१२६.) ग्यारहवें अध्याय के अन्त में भी पुष्पिका में भृगु प्रोक्तायां संहितायां ऐसा लिखा है।

प्रतिमाविधिवर्णं च विस्तराद्भृगुरूक्तवान्
सर्वं च शिल्पशास्त्रेण शिल्पिभिः कारयेत् क्रमात्

अत्रि समूर्तार्चनाधिकार२९.३७.

प्रतिमाविधि तथा प्रतिमावर्णों का भृगु ने विस्तार से वर्णन किया है।

श्रुति: 'तस्य यद्रेतस: प्रथमं देदीप्यते तदसावादित्योभवत् द्वितीयमसीद्भृगु:।' भ्रष्टाद्रेतसा उत्पन्नत्वाद्भृगु:।

मनु ने १.३५ में--

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं च नारदमेव च।।

इन दस ऋषियों की पहले सृष्टि की। साहित्यशास्त्र में भी भृगु का नाम है।

काव्यमीमांसा आठवें अध्याय में- तन्मनो जन्मानो भृगुप्रभृतय: पुत्रास्ते. पृ.२८.

मरीचि

मरीचि : एक ब्रह्मर्षि। ब्रह्मा का मानसपुत्र। उसका पुत्र कश्यप। आदि ६३.२; ६६.१०; ६७.४; सभा.७.१७; ११.१८ शान्ति २०७.४.

मरीचिरङ्गिराश्चात्रि: पुलस्त्य: पुलह: क्रतु: वसिष्ठ इति सप्तैते मनसा निर्मिता हि ते
एते वेदविदो मुख्या वेदाचार्याश्च कल्पिता: प्रवृत्तिधर्मिणश्चैव प्राजापते च कल्पिता:
शान्ति.३४०/६९-७०.

विष्णु सहस्रनाम में एक नाम मरीचि भी है। रावण की सहायता के लिए जो राक्षस आया था उसका नाम भी मरीचि था और तब से मृग - मरीचिका पद भ्रान्ति पैदा करने के अर्थ में प्रयुक्त है।

षटकर्माभिरतानित्यं शालिनो गृहमेधिन:
तुल्यैर्व्यवहरन्ति स्म अदृष्टै: कर्महेतुभि:।
आग्राम्यैर्वर्तयन्ति स्म रसैश्चैव स्वयं कृतै:
कुटम्बिन: ऋद्धिमन्तो बाह्यान्तरनिवासिन:
कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुन: पुन:
वर्णाश्रमव्यवस्थानं क्रियते प्रथमं तु वै।। वायु.६१/९५-९७.

देवर्षीधर्मपुत्रौ तु नरनारायणावुभौ
बालखिल्या: क्रतो: पुत्रा कर्दम: पुलहस्य तु
पर्वतो नारदश्चैव कश्यपस्यात्मजावुभौ
ऋषन्ति देवान् यस्मात्ते तस्माद्देवर्षय: स्मृत: वायु. ६१/८३-८५.

भृगुं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं कुतुम्
वसिष्ठं च महातेजा: सोसृजत् मनसा सुतान्
सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गता:। गीता.१०.५. पर मधुसूदनी.
भृगु र्मरीचिरत्रिश्च अंगिरा पुलह: क्रतु:
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति दश
ब्रह्मणो मनसा ह्येतदुद्भूता: स्वयमीश्वरा:। वायु.६१.८८.

सात चित्र शिखण्डियों में महाभारत में मरीचि की गणना है। ३३५.४६ इन्द्र

की उपासना करते थे सभा ७.

अंशावतार पद्म सृष्टि - १. गर्ग गो.१.

जीवन वृत्त

मरीचि की अनेक पत्नियां थीं। कर्दम की पुत्री भाग.४.१. कला से विवाह किया। यह देवहूति - कर्दमप्रजापति से उत्पन्न थी। मरीचि के दो पुत्र थे। कश्यप और पूर्णिमन्। यो दोनों कला की सन्तति थी। यह कश्यप ही प्रथम प्रजापति - जीवमात्र का अदि प्राण था। पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा (कश्यपं पूर्णमानञ्च भाग. ४.१.१३) पूर्णीमन् के दो पुत्र थे। विरज तथा विश्वग तथा एक कन्या जिसका नाम देवकुल्या था। देवकुल्या ने महाविष्णु का पाद प्रक्षालन किया और आकाशगंगा में विलीन हो गयी।

मरीचि की अन्य पत्नी का नाम ऊर्णा था। ऊर्णा के ६ पुत्र ब्रह्मा के शापके कारण पहले हिरण्यकशिपु के पुत्र के रूप में पैदा हुए और बाद में वासुदेव देवकी के पुत्र जिनको कंसने मारा था। इन्हीं में से छः पुत्र कृष्ण पूर्व पैदा हुए थे। भागवत.१०.८५.४६-४९.

मरीचि की एक और पत्नी थी जिसका नाम सम्भूति था। उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम पूर्णमास था। उसके दो पुत्र हुए जिसके नाम विरजस् और पर्वत हैं।

मरीचि की एक अन्य स्त्री का नाम धर्मव्रता था। यह धर्म देव और धर्मवती की कन्या थी।

धर्म व्रता के साथ मरीचि दीर्घकाल तक सुखपूर्वक रहा एक बार वन प्रान्त से कुश पुष्प आदि लाने के कारण अत्यन्त परिश्रान्त था। उसने अपनी पत्नी से पैर दबाने के लिए कहा और पाद संवाहन के मध्य में ही मरीचि निद्राधीन हो गये। इसी बीच ब्रह्मा वहां आ पहुंचे। उनके आने से धर्मव्रता बडे धर्म संकट में पड गयी। ब्रह्मा जैसे अतिथि का आदरसत्कार करना नियत धर्म तथा उठने पर पति को निद्राभंग से क्रुद्ध करने का भय। ब्रह्मा मरीचि के गुरु भी थे।

अन्ततोगत्वा धर्मव्रता ने अतिथिसत्कार को अधिक महत्त्वपूर्ण समझ अपना स्थान छोड दिया। और अतिथि सेवा में लग गयी। उसी बीच मरीचि जाग गये। पत्नी को वहां न पाकर आग बबूला हो गये। और शिला हो जाने का शाप दिया। धर्मव्रता ने

भी समझाने की कोशिश की। ब्रह्मा उनके गुरु हैं अत: उनका आदर अतिथि के रूप में करना उनका प्रथम कर्तव्य था। उस पर भी जब मरीचि प्रशान्तचित्त न हुए तो उसने भी प्रतिशाप दिया। शिव तुम्हें क्षमा नहीं करेंगे।

महाव्रता ने पञ्चाग्नितप किया। श्रीमहाविष्णु प्रसन्न हुए। वर मांगने को कहा। वर उसने मांगा - शापविमोचन। विष्णु ने कहा - मरीचि के शाप से विमुक्ति नहीं है पर तुम्हारा नाम बदल जायगा। तुम धर्मव्रता के स्थान पर देवव्रता हो जाओगी। और कालान्तर में यह शिला देवशिला कहलायेगी। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, लक्ष्मी सब उस शिला में वास करेंगे।

ऐसा कहकर महाविष्णु अन्तर्धान हो गये। धर्म देव ने उस शिला को यागके ऊपर रख दिया। और तब से गय तीर्थ प्रसिद्ध है।

अर्जुन के जन्म महोत्सव पर आये आदि.१२२.५२.६७४.६३.२,६६,१०.

इन्द्र के परिवार के सदस्य थे। महा ७.१७; ११.१८.

भीष्मको शरशय्या पर देखनेवालों में अन्यतम शान्ति.४७.१०. मरीचि प्रजापति भी हैं शान्ति ३३४.३५.२०७.४.

मरीचि की कथा वायु, स्कन्द, अग्नि, पद्म, मार्कण्डेय और विष्णु पुराण में तथा महाभारत में प्राप्त है। महर्षि कश्यप इन्ही के पुत्र हैं। ब्रह्मा जी ने इनको पद्म पुराण का कुछ अंश सुनाया।

मरीचि का नाम ऋग्वेद में आया है। पर ऋषि के लिए नहीं वायु के ६५वें अध्याय में ऋषियों ने सूत से प्रश्न किया। कथं सप्तर्षय: पूर्वमुत्पन्ना: सप्तमानसा:।। पुत्रत्वे कल्पिताश्चैव तन्नो निगद सत्तम।।१५।।

यज्ञाग्निसे भृगु की उत्पत्ति प्रथम हुई। ब्रह्मा ने महादेव की प्रार्थना पर भृगु को महादेव को पुत्र के रूप में दे दिया दूसरे अङ्गीरस और तीसरे अत्रि। उसके पश्चात् ब्रह्मा ने पुन: षट् कृत्वा अग्नि में आहुति डाली और उसमें से छह ब्रह्मा पैदा हुए। उन छह में से प्रथम मरीचि था।

मरीचि : प्रथमस्तत्र मरीचिभ्य: समुत्थित: ६५.४४ ये मरीचि ब्रह्मा ही थे। उसके पश्चात् एक और मरीचि पैदा हुए जो ऋषिगण में अन्यतम थे।

अपरे पितरो नाम एतैरेव महर्षिभि:।।४९।।

उत्पादिता ऋषिगणाः सप्तलोकेषु विश्रुताः।
मरीचा भार्गवाश्चैव तथैवाङ्गिरसोऽपरे
पौलस्त्याः पौलहाश्चैव वासिष्ठाश्चैव विश्रुताः।।५०।। अध्याय ६५.

आसन् मरीचेः षट्पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेन्तरे।
देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम्।।४७।।

तेनासुरीमगन् योनिमधुनावद्यकर्मणा
हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया।।४८।।
दैवक्या उदरे जाता राजन् कसं विहिंसिता ।। भागवत.१०.२८.

मुख्यतया चारों आचार्यों की विषयसूची इस प्रकार है----

मन्दिर निर्माण

भूपरीक्षा : अत्रि २, भृगयज्ञ २, कश्यप ११-१३, मरीचि विमान २.

भूकर्षण : अत्रि ३ भृगु ३ कश्यप २२ मरीचि ३.

गर्भस्थापन : अत्रि १० भृगु, कश्यप १६ मरीचि १३.* (*देखिये-स्टला क्रेमरिशः हिन्दु टेम्पल्स्१.१०५.)

बालालय : अत्रि ४.७४, भृगु ५ कश्यप २३-२५ मरीचि १५,१७.

वस्तुसंग्रह : अत्रि २, भृगु ११, कश्यप २७, मरीचि१५,१७.

निर्माण : अत्रि ६, भृगु ८, कश्यप २३-२५, मरीचि ४.

आवश्यक वस्तु : अत्रि १४, भृगु ११, कश्य ४०, मरीचि १५.

अन्यसामग्री : अत्रि १६, भृगु१३, कश्यप ४१,४६, मरीचि १७* (*ब्रूनरः इण्डो. इरानियन जर्नल ११ पृ.२९८.)

पञ्चाग्नियों में आहुति : अत्रि १७, २९, कश्यप ४४, मरीचि ३०.

मृत् : अत्रि १९, कश्यप ४७-४९, मरीचि १८.

अंकुरार्पण : अत्रि २६, कश्यप ५८, मरीचि २६* (*गोण्डाः एसपेक्टस आफ अर्लि वेष्णाविज्म पृ. २५९.)

प्राणप्रतिष्ठा : अत्रि २७, कश्यप ५९, मरीचि २७.

नित्यपूजा : अत्रि ४०, भृगु ३२, कश्यप ६९. मरीचि ४०* (*गोर्डियान: इण्डो इरानियन जर्नल १२ पृ.१६७.१९७०)

परिचारक कर्तव्य : जलानयन, ध्यान, अभिषेक, स्तुति पूजा, पुष्प योग्य-अयोग्य, अत्रि ९६, ९२, कश्यप ७१, मरीचि ४२, ९५.

अवतार : कश्यप ३४-३९, अत्रि ३७, ४१, ५८, कश्यप ७७, मरीचि ४४, ५५, अत्रि ५८, ३.

अभिषेक : अत्रि ४९, भृगु ३४, कश्यप ८८, मरीचि ५७, (गोण्डा : एस्पेक्टस पृ.२४१, २४४.)

अत्रि, कश्यप, भृगु और मरीचि ये चारों ज्योतिष के आचार्य प्रवर्तक हैं--

विश्वसृङ नारदो व्यासो वसिष्ठोत्रि: पराशर:
लोमशो यवन: सूर्यश्च्यवन कश्यपो भृगु:
पुलस्त्यो मुनिराचार्य: पौलिश: शौनकोऽङ्गिरा:
गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया: ज्योति: प्रवर्तका:।।

अध्याय पांच

वैखानस दर्शन

सकल से निष्कल की यात्रा या रूप से रूपहीन तक पहुंचने का मार्ग ही वैखानस दर्शन है। यज्ञ के भौतिक पदार्थों से प्रारम्भ कर ध्यान से परम पद प्राप्ति का मार्ग है।

नारायण ही परम तत्त्व है। तत्त्वं नारायण: पर:* (*निष्कलात्मको विष्णु: ध्यान मथनेन भक्त्या संकल्पनात् सकलो भवति) इसी ज्ञान को परमज्ञान या ब्रह्मज्ञान कहते हैं। अर्थात् नारायण ही ब्रह्म हैं। जीवात्मा ज्ञाता है। परमात्मा ज्ञेय है। श्रुतियां ही ज्ञान हैं।

ब्रह्म दो प्रकार का है।* (*द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे-मूर्तं चामूर्तं च। शतपथ १४५य ३.१ सकल और निष्कल। ये अविभाज्य हैं। निष्कल परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हैं। जैसे दूध में नवनीत, तिल में तेल मरीचि पृ.४९२ पुष्प में गन्ध और फलों में रस रहता है वैसे ही निष्कल तत्त्व भीतर बाहर सर्वत्र व्यापकर रहता है। अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायण: स्थित:' वह अशरीरी है पर सारे शरीरों को व्याप कर रहता है। विश्वव्यापक है। अमल है। नित्य है। अमेय है। अचिन्त्य है। निर्गुण है। निश्चल है। निरयवव है अनाद्यन्त है। निर्विकल्प है। निर्द्वन्द्व है। अतीन्द्रिय है। सदसत् है। सूक्ष्म होने के कारण अनिर्देश्य है। परमधाम है। परम ज्योति है। सर्वशक्तिमय है। सर्व देवमय है। सर्वाधार है। सर्व धर्ममय है। सनातन है। ज्ञातृ-ज्ञेय ज्ञान हीन है। ज्ञानघन है। जाग्रत स्वप्नसुषुप्ति से परे तुरीय स्थान में रहता है। सबकी आत्माओं में वास करता है। अणु से अणु और महान् से महत्तम आत्मा गुहायां निहितोस्य जन्तो:। हृदय कमलान्तराकाशोपलब्धवैश्वानर शिखा में त्रिगुणात्मक विष्णु ही परमात्मा है। 'स ब्रह्म सशिव:' अत: हृदयकमल के अन्तराल में उपलब्ध वैश्वानस शिखा में त्रिगुणात्मक विष्णु परमत्मा रहता है। निर्गुण का अर्थ गुण रहित है ऐसा नहीं है पर गुण व्यक्त नहीं है। गुण पद का अर्थ स्पष्ट नहीं किया है पर सांख्य में प्रयुक्त अर्थ ही ग्रहण करना होगा।

सकल जैसे काष्ठ मथन के पश्चात् दीप्त होता है वैसे ही ध्यान रूपी मथन द्वारा भक्ति पूर्ण संकल्प से निष्कलात्मक विष्णु सकल हो जाता है। जैसे अग्नि से विस्फुलिंग, ब्रह्मेशादिदेवता नारायण से, कुलाल चक्रस्थित मिट्टी जैसे घट शराव आदि

भेद से भिन्न हो जाती है उसी प्रकार विष्णु भी जिस रूप से मन में ध्यान किया जाता है तद् रूपी हो जाता है।

द्वे ब्रह्मणि वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परं च यत्।।१।।

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।२।।

दो ब्रह्म निष्कल और सकल दोनों का महाशान्त मोक्ष ज्ञान आवश्यक है।

श्री सांख्य की प्रकृति के समान है। पर अन्तर इतना है कि वैखानस सम्प्रदाय में श्री व्यक्ति रूप से प्राप्त है। तथा गुणों की साम्यावस्था नहीं है। विष्णु भी सांख्य के पुरुष के समान है। परमूर्तरूप है। विष्णु निर्गुण है पर धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्यगुणों से युक्त हैं।

शुद्धसत्त्वकूटस्थ है। मायाविष्णु की शक्ति भी है और सृष्टि भी अत: ही श्री के साथ विष्णु का पूजन करते हैं। सारे पुरुष विष्णु स्वरूप और सारी स्त्री श्री स्वरूपा।

भगवत्प्राप्ति का नाम ही ज्ञान है। या ज्ञान से ही भगवत्प्राप्ति होती है। भगवान की प्राप्ति के चर्या क्रिया ज्ञान योग उपाय हैं। उपेय भूत विष्णु ही हैं। निमित्त और उपादान विष्णु ही है।

जीव प्रकृति और परमात्मा तीनों नित्य हैं। परमात्मा एक ही है अद्वय। स्वतन्त्र तथा नियामक। आत्मा के बजाय जीव पद का प्रयोग दर्शन के स्वतन्त्र प्रस्थान का बोधक है।

जीव असंख्य एवं परतन्त्र हैं। माया लक्ष्मी और विष्णु मायी हैं। लक्ष्मी भगवान की शक्ति है। जीव से परा है। विशिष्टा है उन्नता है।

प्रकृति भी अचेतन और अस्वतन्त्र है। बौद्ध धर्म में भी वासनाक्षय का नाम निर्वाण है। वैखानस में प्रकृति चेतन अचेतन दोनों प्रकार की है। प्रकृति पुरुष दोनों अनादि हैं। इन्हीं से लोक प्रवृत्ति है। सारे विकार गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। कार्यकारण कर्तृत्व की हेतु प्रकृति ही है। प्रकृतिस्थ पुरुष प्रकृति के गुणों को भोगता है। मरीचि विमानार्चन पृ. ३०९. श्रुति भी है-- विश्वत: चक्षु उतविश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वत: स्यात्। सं बाहुभ्यां नमति संपतत्रै द्यावाभूमि जनयदेव एक* (*विमानार्चन पटल ८०).

सर्वव्यापी विष्णु ही समस्त जीवों के कल्याण केलिए शरीरी बनता है। वही

सबका पालक है।

काष्ठ में विस्फुलिंग या अग्नि का उदाहरण निष्कल सकल दोनों प्रकार के ब्रह्म के लिए दिया गया है। शायद एक अव्यक्तावस्था है दूसरी व्यक्तावस्था जैसे काष्ठ में विस्फुलिंग। जैसे घर्षण के बिना काष्ठ में विस्फुलिंग पैदा नहीं होता वैसे ही ध्यान के बिना सकल ब्रह्म नहीं है। तब जीव भी निष्कल के समान अनादि और ध्यान गुणवाला होगा।

वैखानस सम्प्रदाय में चित् अचित् और ईश्वर तीनों नित्य हैं। परमात्मा एक ही है। अद्वय स्वतन्त्र और नियामक। लक्ष्मी माया और विष्णु मायी हैं। लक्ष्मी भगवान की शक्ति है। जीव से परा है। विशिष्टा है। प्रकृति भी अचेतन और अस्वतन्त्रा है। विमानार्चनकल्प पटल ८०.)

वैखानस दर्शन में विष्णु ही परम एवं सर्वोच्च हैं। वैखानस श्रौत यज्ञ करनेवालों के लिए केवल नारायण परायण होना आवश्यक है। नारायण निष्कल और सकल दोनों है। यह दोनों भेद अविभाज्य हैं। सर्वत्र निष्कल सकल स्वभाव से उपस्थित रहते है।

श्री या लक्ष्मी उनकी विभूति या ऐश्वर्य है। यह नित्यानन्दमयी मूल प्रकृति शक्ति है। और विष्णु के लीला संकल्प के अनुरूप रूप ग्रहण करती है। यह दिव्य भूषणायुध के समान नहीं है। वह चेतन अचेतन दोनों प्रकार की सृष्टि की उपकर्त्री है। अचेतन पांच तत्त्व पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश और मन, बुद्धि, अहंकार इस तरह से आठ प्रकार की है विष्णु के पांच व्यूहों में सदा साथ रहती है। ये है- -पर -व्यूह- वैभव अन्तर्यामी और अर्चा।

श्री के साथ ही नारायण परम पद हैं। पर यह स्वरूप ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होता है। जैसे शमी काष्ठ से अग्नि, अव्यक्त रूप से व्यक्त रूप में घर्षण द्वारा प्रकटित होती है वैसे ही भक्ति सहकृत नित्यध्यान से नारायण प्रकट होते हैं। प्राणायाम ध्यान द्वारा अन्तर्यामी स्वरूप प्राप्त होता है। परन्तु भक्ति और प्रपत्ति से भगवत्कृपा प्राप्त हो सकती है।

अर्चना - - वैखानस सम्प्रदाय का मुख्य अवदान है। अर्चा मूर्ति स्थूल शरीर नहीं है। यद्यपि पर इत्यादि अनेक सम्प्रदायों में है पर अर्चा विग्रहाराधन वैखानसों की मुख्य देन है। इसी पर उनकी विशेष बल है। अर्चा आराधना के समान कुछ नहीं है। यह सर्वोत्तम उपाय है।

उस विष्णु को ध्यान से ज्ञान चक्षु से देखा जा सकता है। सदा पश्यन्ति सूरय: उस विश्वव्यापी विष्णु को ध्यान -मथन द्वारा आविर्भूत 'तेजो - भास्वर' भक्ति से सकल मूर्ति को संकल्प द्वारा आवाहन कर पूजा करे। 'पव: पान्थमान्धसो धियायते महेशूराय विष्णवेऽर्चत।' अत: द्विजों का यह कर्तव्य है कि प्रति दिन विष्णु अर्चना करे।

ईश्वर साकार है और निराकार है। निरुक्त है अनिरुक्त है। अर्थात् शब्दों से कहे जाने योग्य है अर्थात् उक्त है और शब्दों से कहे जाने के अयोग्य है। परिमित है अपरिमित है। यदि उपाधि रहित है तो परिच्छिन्न है। गुणधर्मादि रहित होने का कारण शब्दों से अभिधेय नहीं है। क्योंकि निरुपाधिक है अत: विभु है* (*उभयं वा तत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चनिरुक्तश्च परिमितश्चापरमितश्चशतपथ. १४.१.१.)

भगवान की सेवा (समाश्रयण) के चार प्रकार हैं-- जप, हुत, अर्चना, ध्यान। समाश्रयण को ही समाराधन भी कहते है। भगवान का ध्यान करते हुए सावित्री पूर्वक विष्णु ऋचाओं का पारायण जप है। यदि वेद पारायण सम्भव नहीं तो भगवान का अष्टाक्षर मन्त्र का ही जप करे।

अग्निहोत्रादि होम में जो होम किया जाता है वह हुत है।

घर या देवतायतन में वैदिक मार्ग से जो पूजा की जाती है, वह अर्चा है। निष्कल सकल के भेद को जानकर अष्टांगयोग मार्ग से जो परमात्म का जीव द्वारा चिन्तन है, वह ध्यान है।

बार बार वैदिक मार्ग से पूजा करने के लिए कहना तदितर मार्ग से नहीं का तात्पर्य है कि वेदेतर मार्ग भी प्रचलित था और उनको विदित था। वह मार्ग तन्त्र मार्ग ही होगा। तन्त्र का अभ्युदय काल गुप्त साम्राज्य के बाद का काल होगा जब हिन्दु धर्म में अनेक सम्प्रदाय अपना सिर वेद के विरुद्ध उठाने लगे थे।

वैखानस सम्प्रदाय में लक्ष्मी

लक्ष्मी उनकी विभूति है। विष्णु के संकल्प के अनुरूप रूप ग्रहण करती है। विष्णु के पांच व्यूहों में सदा साथ रहती है।

वैखानस सम्प्रदाय ने लक्ष्मी को एक स्त्री न समझा। एक शरीरधारिणी रक्त मांस का पिण्ड। वह तो शक्ति है। जिसको वैखानस विभूति कहते हैं। शायद तन्त्र सम्प्रदाय में प्रयुक्त पद कुलकुण्डलिनीशक्ति का पर्याय या निकट पर्याय हो।

भगवान प्राप्ति के चारों उपाय हैं ज्ञान, चर्या, क्रिया और योग। पर क्रिया ही सरलतम उपाय है। पर अन्य तीन उपायों की किसी भी आचार्य ने विस्तार से मोक्षोपयोगिता नहीं बताई है। ज्ञान से प्राप्त मोक्ष का स्वरूप क्या है चर्या से मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकते हैं इत्यादि। तब क्या ये अन्य दर्शनों की और संकेत हैं?

भगवान की प्राप्ति के लिए चर्या क्रिया ज्ञान और योग चार उपाय बताये हैं। इन चारों में क्रिया सरलतम उपाय है।

चर्या देहशुद्धि विना सदाचार के सम्भव नहीं अत: वर्णाश्रम धर्म का पालन आवश्यक है। 'नित्य एवं नैमित्तिक धर्म का पालन आवश्यक है। नित्य एवं नैमित्तिक कृत्य पर्वों पर पूजा उत्सव आदि।'

क्रिया धार्मिक कृत्य कर्मकाण्ड पूजा उत्सव आदि का परिपालन। इसीमें मन्दिर मूर्ति निर्माण भी सम्मिलित है।

ज्ञान केवल दर्शन तत्त्व का ही विचार है। ईश्वर जीव जगत् का पारस्परिक सम्बन्ध भी।

योग मन और देहशुद्धि के लिए। योग से आत्म दर्शन होता है।

ज्ञान से ही भगवत्प्राप्ति होती है या भगवत्प्राप्ति का नाम ही ज्ञान है।* (*अयं तु परमो धर्म: यद्योगेनात्मदर्शनम् - याज्ञवल्क्य।)

भगवद्दर्शन दर्शन है -- यह बताने का कि तुम ईश्वर की देख में हो। जैसे वृत्त की परिधिका कोई भी बिन्दु केन्द्र स्थान स्थित भगवान से समान दूरी पर स्थित है। उस परिधि से केन्द्र की ओर सरकना ही कर्म है।

जीव असंख्य एवं परतन्त्र हैं। जीवभूत चेतन प्रकृति से भिन्न है। अनादि भी है। अनादि अविद्या से प्रेरित पाप पुण्य करते हैं। फल भोगने के लिए अनेक शरीरों में जन्म जन्मान्तरों में घूमा करते हैं। प्रकृति से पर विष्णु सदा संश्लिष्ट रहते हैं। जीव प्रकृतिस्थ रहते है। क्षेत्रज्ञ हैं और अनेक हैं। अनित्य भी। अनाद्यविद्या संचित पुण्य पाप फल को भोगने के लिए अनेक विध शरीर धारण कर उस शरीर की अभिमानी आत्मा होकर इस उस शरीर में शुभाशुभ कर्मों को करके तत्तत्फलानुरूप देह में पुन: प्रविष्ट हो संसार चक्र में घूमते हैं।

प्रकृति पुरुष दोनों अनादि हैं। उन्हीं से लोक प्रवृत्त चलती है। विकारगुण सारे

प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। पुरुष प्रकृति का कर्ता नहीं है। वह तो उसके कर्म कलाप को देखता भर है। यद्यपि नारायण गुण रहित है पर जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि अवस्थाओं का अनुभव करता है।

विखना मुनिने ही मूलग्रन्थ लिखा जिसका विस्तार भृगु, मरीचि, अत्रि और कश्यप ने किया। सीतोपनिषत् में अधिक विस्तार है।

भृगु संहिता क्रियाधिकार में पूजा तीन प्रकार की कही गयी है। मानसहोम बेरपूजा। इनमें बेर पूजा ही प्रशस्त है। बेर पूजा में भी आलय गृह इस प्रकार दो भेद हैं। आलय पूजा में पुन: तान्त्रिक वैदिक दो भेद है। अन्यत्र पूजा में पुन: तान्त्रिक वैदिक दो भेद है। अन्यत्र पूजा तीन प्रकार को कही गयी है।

त्रिविधार्चनं प्रोक्तं केशवेन परत्मना
वैखानसं पाञ्चरात्रं आग्नेयमिति त्रिधा।। १-२।
अमन्त्रार्चनमित्युक्तमाघ्नेयं तत्प्रचक्षते।। १३।।
यद्वेदमन्त्रैर्क्रियते तद्वैखानसमीरितः।। १६।।

भृगु कियाधिकार अध्याय २६.

मन्दिरों में पांच बेर रहते हैं -- ध्रुव, कौतुक, उत्सव, स्नपन और बलिबेर। पांच अग्नियां सभ्य, आहवनीय, अन्वाहार्य, गार्ह्यपत्य और आवसथ्य। इनके अतिरिक्त श्रामणकाग्नि और पौण्डरीकाग्नि भी है। ये सातों अग्नियां मिलकर सात ऊर्ध्वलोक बनाते हैं।

ध्रुवबेर गर्भगृह में ध्रुव या अविचल रूप से रहता है। यह प्राय: पत्थर का होता है और प्रधान विग्रह भी। अन्य चारों चल मूर्तियां हैं ध्रुव का प्रतिनिधि कौतुक बेर है। आराधनांग में स्नपन बेर, उत्सव बेर: उत्सव के लिए, बलिबेर: भोगलगाने के बाद मन्दिर की परिक्रमा में बलि दी जाती है। आलय निर्माण और भगवत प्रतिष्ठा को देव यजन कहते हैं।* (*मरीचि ३९ पटल.)

परिवार देवताओं के विषय में पाञ्चरात्र और वैखानसों में मतैक्य नहीं है। वैखानस सम्प्रदाय में स्त्रियों को स्त्रीदेवता को पुं देवता समान प्राधान्य प्रदान

लक्ष्मी की स्थिति के विषय में अन्य वैष्णव सम्प्रदायों से इनका म

लक्ष्मी विशिष्ट जीव मात्र नहीं हैं पर वह विष्णु की विभूति है।

वैखानस आल्वार या आचार्यों की पूजा नहीं करते तामिलभाषा या दिव्य प्रबन्धों का वैखानस धर्म या दर्शन में कोई स्थान नहीं है।

भगवान करुणामय हैं। मन्दमति भक्तों के प्रति वे अधिक करुणार्द्र रहते हैं। इसीलिए निर्विशेष रूप के साथ साथ सविशेष या सगुण रूप भी धारण किया है जिससे मन्दमति भी दर्शन कर सके।*

(*निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वरा:।

ये मन्दास्तेनुकम्प्यते सविशेषनिरूपणै:।।१।।

वशीकृते मनस्येषां सगुणब्रह्मशीलनात्।

तदेवाविर्भवेत्साक्षादपेतोपाधि कल्पनम्।।२।। कल्पतरु १.१.७.२०.)

विष्णु पुरुष सत्य अच्युत एवं अनिरुद्ध ये पञ्चबेर कहाते हैं। मुख्य विष्णु ही हैं पर समस्त देवताओं की नामोच्चारपूर्वक पूजा करनी चाहिए। इससे चारों वर्णों का उपकार होगा। समृद्धि और सुख शान्ति प्राप्ति होगी।

विष्णु ध्यान से ही गम्य हैं।* (*वैखानस स्मार्त सूत्र १०.७; १०.१० तै.आ.१०.११.१) विभु और सर्वव्यापक है। पुरुष जीव चैतन्य का अधिपति है। सत्य अनादि तथा कूटस्थ अच्युत अविपरिणामी और अनिरुद्ध जो अवरुद्ध नहीं किया जा सकता ये पञ्चाग्नियों को भी मानते हैं।

रामानुज के अनुसार ब्रह्म निखिल कल्याण गुणाकर है। दोष या निकृष्ट बिल्कुल नहीं है। दृश्यमान समस्त जीव और जड प्रपञ्च उसका शरीर है। ब्रह्म ही सर्वात्मा, सर्वेश्वर सर्वान्तर्यामी तथा सर्व कर्मफल प्रदाता है। वही कार्यकारण दोनों हैं। स्थूल रूप से कार्य और सूक्ष्म रूप से कारण। जीव जगत उसीके शरीर है और उसी के अंश है। उनका शरीर शरीरी या अशांशीं भाव सम्बन्ध है।

वैखानस नैतिक आचरण पर बल देते हैं। धर्म में नैतिक आचरण कोई नया नहीं है पर वैखानस सम्प्रदाय ने उन्हें विशेष स्थान दिया है।

साक्षात् ज्ञान मोक्ष का साधन नहीं है किन्तु मोक्ष ईश्वर प्रसाद द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

वैखानस वेदों को प्रमाण मानता है। सूत्र वेद के ही अर्थ को विस्तृत करते हैं और आगम, जो वेद विरुद्ध नहीं है क्यों कि वे वेद में बताए हुए अंश का ही प्रतिपादन करते हैं।

सकल ब्रह्म ही सगुण ब्रह्म भी है। सकल ब्रह्म के शरीर भी है। जगदात्मैवसकलं योगवासिष्ठ उपशम ७९.१९. अनेक गुण भी जिनको भागवत लोग कल्याण गुण कहते हैं। कल्याण गुण का अर्थ है दुर्गुण या गुणरहितावस्था से विरहित। प्रकृति या मूला प्रकृति ही उसका शरीर है। यह प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्य से बनी होती है। स्थूल प्रकृति तो बाद में संसार रूप में विकसित होती है। इसी प्रकृति में गुण रहते हैं। प्रकृति के मालिक होने के कारण गुण भोक्ता है।* (*संकल्पानुरूपा नित्यानन्दमयी मूलप्रकृतिरूपा शक्तिः। विमानार्चन कल्प पृ.४९४.) सारे विकार गुण प्रकृति से उत्पन्न हैं। कार्य कारण हेतु प्रकृति है। सुख दुःख भोकृत्व में पुरुष ही हेतु है। प्रकृतिस्थ पुरुष ही प्रकृति के गुणों का भोग करता है।

प्रकृति का अलग अस्तित्व नहीं है। मूला प्रकृति भी दो प्रकार की है। अधमा और उत्तमा। अधमा नाम ही प्रकृति है। उसी के आठ भेद है। पञ्च महाभूत--- मानस, अहंकार, बुद्धि। इन आठ गुणों के संयोग में उत्तमा प्रकृति जिस को जीवात्मा कहते हैं, उसके सम्पर्क से इस विश्व की रचना होती है। यही मूला प्रकृति वक्षस्थल पर श्रीवत्स होकर स्थिर रहती है। उसी के ऊपर श्री पद्म पर रहती है। इसी श्री को विभूति कहते हैं। मूला प्रकृति से श्री भिन्ना हैं। ज्ञेय परमात्मा सकल निष्कल भेद से दो प्रकार का है। निष्कल पुनः सगुण निर्गुण भेद से दो प्रकार का है। सारे विश्व में व्याप्त है जैसे दूध में मक्खन। पर जब ध्यान किया जाता है तो ध्यान गोचर होता है तब वह सकल अवस्था में होता है क्यों कि हृदयादिपरिच्छिन्न हो जाता है-- स्थूल रूप से सही ध्यान में आता है। यह अद्वैत ब्रह्म जैसा निर्गुण नहीं है क्योंकि वैखानस अव्यक्त गुणावस्था मानते हैं। केवल ध्यान रूप में शुद्ध निष्कल को केवल ध्यान मात्र से ग्राह्य होने पर वह, निर्गुण ही रहता है पर जब दिव्यायुध श्रीदेवी भूदेवी अलंकार शोभित मूर्ति का ध्यान हो तब सगुणध्यान होता है।

सौन्दर्य हृदयावर्जक होता है। मूर्ति तथा आलय के सौन्दर्य से मानव हृदय तरल हो जाता है। उस तरलावस्था में आत्मिक अनुसन्धान की छाप बाद में जब द्रवीभूत हृदय दृढ हो जाता है तो मन्दिर के दर्शनोपरान्त बाहर जाने के पश्चात् सांसारिक कार्यों में व्यापृत होने के बाद भी वह छाप अमिट ही रहती है।

चक्षुसो प्रीतिकरणान्मनसो हृदयस्य च।
प्रीत्या सञ्जायते भक्तिस्तस्य च सुलभो हरिः।। ११३

भृगुसंहिता क्रियाधिकार अध्याय २७.

आंखों को जो सुन्दर लगे वह मनको भी भाता है। और जो मन को आनन्द दे वह हृदयानन्द का कारण होता है। सौन्दर्य प्रेरित यह मूर्ति प्रीति को प्रसवित करती है और प्रीति से भक्ति दृढा होती है। अत: भक्त के लिए अत्यन्त सुलभ है। विष्णुधर्म में भी-

सुरूपां प्रतिमां विष्णोः प्रसन्नवदनेक्षणाम्।
कृत्वात्मनः प्रीतिकरीं सुवर्णरजतादिभिः।। ९९.२६

रूप-लावण्य से युक्त, मान-परिमाण से संस्कृत प्रतिमा ही हृदयाकर्षक हो सकती है; और साथ में --

अर्चकस्य तपो योगादर्चनस्यातिशायनात्।
अभिरूपाच्च बिम्बानां देवः सान्निध्यमृच्छति।।

बिम्ब अर्थात् मूर्ति के सुन्दर होने पर अर्चक के तपोयोग से अर्चना की अतिशय प्रक्रिया द्वारा देवसान्निध्य प्राप्त होता है। तब मूर्ति का सौन्दर्य आध्यात्म का एक अविभाज्य अंग है। अर्चक का भी वैखानस सम्प्रदाय में अत्युच्च स्थान है।* (*अधिक जानकारी के लिए अर्चक अध्याय देखिये।)

अर्चकस्तु हरिस्साक्षात् चररूपी न संशय: भृगु अ. २६ श्लोक. ६०.

विष्णुधर्मोत्तर में विखा है--

प्रसादकरणं पुण्यं देवार्चाकरणं तथा।
सुरार्चापूजनं पुण्यं तत्र पुण्या नमस्क्रिया।। ३.१.१०.

मन्दिर बनाना या बनवाना पुण्य कर्म है। देवता की मूर्ति बनाना पुण्य कर्म है। दैवता की मूर्ति का पूजन पुण्य कर्म है। पर सबसे अधिक पुण्य कर्म है नमस्क्रिया। मूर्तिमान् एवं पूज्योऽसौ अमूर्ते न तु पूजनम्। परमसंहिता ३.५.

जब चिन्मय मूर्तिमान होता है तभी पूज्य होता है क्यों कि मूर्तिमान् होने के पश्चात् ही पूजा की जा सकती है।

वैखानस सम्प्रदाय जप, हुत, अर्चना, उपासना की तीनों पद्धतियों को समान आदर का स्थान देता है। कायशुद्धि के लिए योग की आवश्यकता मानता है। मनको प्रवृत्तिमार्ग में जाने से रोकने के लिए काम्य कर्मों को त्याज्य कहता है। सदा ईश्वर चिन्तन द्वारा चित्तचापल्य को नियन्त्रित करता है। अर्थात् शरीर, मन और आत्मा की अम्लान स्थिति के लिए वैचारिक नियन्त्रण की मर्यादित परिमाण में वैचारिक स्वच्छता

का प्रयोग चाहता है। ठीक है, भागश: अवयवों के ज्ञान से अवयवी का सम्पूर्णात्मना ज्ञान नहीं हो सकता पर उसके लिए अभ्यास की आवश्यकता है और क्रमश: ही उस दिशा में प्रगति की जा सकती है। इन्द्रियां मन और आत्मा तीनों का समन्वित प्रयास ही फलदायक सिद्ध हो सकता है।

हृदय में शुद्ध और अशुद्ध रक्त दोनों आते हैं। अशुद्ध रक्त को शुद्ध कर रक्त प्रवाह को रक्त नालिकाओं द्वारा शरीर के समस्त अंग प्रत्यङ्गों में निरन्तर अविश्रान्त गति से भेजना हृदय का स्वाभाविक काम है। वैसे ही मन भी तामस सात्त्विक वृत्तियों को साफ कर सात्त्विक मात्र वृत्ति करने का काम कर सकता है यदि मानव यह जान ले कि ये वृत्तियां तामस है और शुद्धि सापेक्ष्य हैं। जब दृष्टि अन्तर्मुख होती है तो वृत्तियों की मलिनता दृष्टिगोचर होती है। यह दृष्टि अन्तर्मुख कैसे होती है? ध्यान से। ध्यान का वैखानस सम्प्रदाय में बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह वृत्तिमालिन्य को अपगत कर भगवद्दर्शन सहज और स्वाभाविक बनाता है।

देहादि बन्धनों से मुक्ति ही मानव नियति है। वासना मन अहंकारादि संस्कार का आश्रय है देह। जब देह आत्मासंयुत रहता है तो ये संस्कार प्रबुद्ध रहते हैं। अनेक विध कार्यों को करने के लिए प्रेरित करते हैं। कुछ पुण्येतर।

जब मानव कोई काम करता है तो उसके प्रति वह सचेतन होता है। मांस पेशियों के आकुञ्चन प्रसारण न चाहने पर भी मानव उसके प्रति सज्ञान या सचेतन हो जाता है। यही है बन्धन। न चाहने पर भी मांस पेशियों हस्तादि के चालन का बरवस ज्ञान होना। कितना भी प्रयत्न करो पर निर्लिप्त आत्मा का देहादि में, अभेदबुद्धि इस का कारण है। मुक्त इसी आत्मा की गति को देहादि वासना से, अहंकार की वासना से दूर रखता है। यह दूर रखना ही मुक्ति है मोक्ष है। आत्मा शरीर की आश्रित नहीं रहती स्वतन्त्र हो जाती हैं।

मन भी प्रकृति का ही विकार है। जब मन में कोई विचार आता है तो रोकनेके लाख प्रयत्न करने पर भी आत्मा उस विचार से संलग्न हो जाती है। बहुत से लोग सडक पर चलते समय विचार वितर्क करते हुए जाते हैं। शारीरिक गमन क्रिया मोटरादि वाहनों से अपने आप को बेखवर रखते हुए विचार मे डूबे रहते हैं उस समय उनका चैतन्य उस मानसिक विचार से जुडा है। सहकृत है। आत्मा का यह मन या मान्रसिक विचार से जुड जाना मन की अपने साथ एकता स्थापित करना है। मुक्ति इस बन्धन से मुक्ति का नाम है।

जीवन मुक्तावस्था यही है। मुक्त सदेह रहते भी मानसिक शारीरिक व्यापार से अपने आप को मुक्त रखता है।

मोक्ष

विमानार्चन कल्प में मरीचि ने वैखानस दर्शन को ज्ञान योग कहा है। संसार सागर को पार करने का उपाय केवल ज्ञान योग है। मैने ही इस शास्त्र का प्रणयन किया है। ज्ञानोपदेश गुरु शिष्य मार्ग से जानकर इसके पश्चात् परमात्मा का दर्शन करो।* (*इत्येवं संसार समुद्रोत्तरणोपायसाधनं ज्ञानयोगं च ब्रह्मणा पुरा मम प्रणीतम्। तदेव युष्माकं मया चोक्तम् । ज्ञानोपदेशं गुरुशिष्यमार्गेण ज्ञात्वा पश्चात्परमात्मानं सदा पश्येत् । विमानार्चन कल्प पृ.५२०.) ज्ञानोपदेश तब रहस्य विद्या है।

प्रतिमा पूजन का नाम ही ज्ञान योग दिया है। ध्यान किसी रूप हीन वस्तु पर नहीं किया जा सकता और यदि चिन्तन किया भी तो अत्यन्त स्वल्प काल के लिये होगा। सदा ध्यान नहीं किया जा सकता। अत: ध्यान के सौकर्य के लिए पञ्चमूर्तियों में नाम भेद जिनको कहा जा चुका है आवाहन कर पूजा करे। इसी का नाम समूर्तार्चन है। यह श्रुतियों में प्रतिपादित परमगुह्य ज्ञान योग है।* (*एवं सदा ध्यातुमशक्यत्वात् प्रतिमादिषु पञ्चमूर्ति नाम भेदैस्समावाह्य अभ्यर्चयेत्। एतत्समूर्तार्चनम्। तस्मात् श्रुतिचोदितं परं गुह्यमेंतत् ज्ञानयोगं च ज्ञात्वा समाचरेत्। विमानार्चनकल्प पृ.५२०.) पुष्पिका में इस अध्याय का नाम समाधिभेद दिया है।

जीवात्मा परमात्मा की समावस्था का नाम समाधि है। यह समावस्था क्या है? निश्चय ही यह अद्वैत की अनन्यावस्था नहीं है। जब जीव की कोटि ही पृथक् है तो पर वासुदेव से एकीभाव तो सम्भव ही नहीं है। तब समावस्था का अर्थ समानावस्था होगा। यह समावस्था इन चारों में से कोई एक हो सकती हैं। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य या सायुज्य। यह समाराधन विशेष के ऊपर निर्भर करता है। मरीचि पृ.५२०. भगवान के समान भोगसाम्य का नाम मोक्ष है।

ध्यान को परिभाषित करते हुए कहा है- सकल निष्कल के भेद को जानकर अष्टांग योग* (*योगाध्याय देखिये।) मार्ग द्वारा जीव परमात्मा का ध्यान करे।* (*सकलनिष्कल विमार्गं च ज्ञात्वा अष्टांगयोगमार्गेण परमात्मानं जीव आत्मना चिन्तयेत् -- विमानार्चनकल्प पृ.५०९.)

संसार बन्धन वासना से मुक्ति का नाम ही मोक्ष है। मोक्ष का दार्शनिक,

दैहिक या भौगोलिक कोई महत्त्व नहीं है। वासना क्षय ही प्रधान है। यह वासना क्या है? अनादि या सान्त?

यह वासना हमारा भूत है। हमारे जातीय संस्कार, हमारे राष्ट्रीय संस्कार है, हमारे धार्मिक, हमारे साम्प्रदायिक संस्कार हैं। हमारे परिवार हमारे अध्ययन स्वाध्याय से उद्भूत संस्कार हैं। उनको सत्य और सर्वश्रेष्ठ मानने के संस्कार हैं। हमारे समान जो पूजा नहीं करते वे निन्दित हैं, हेय हैं।

राजस, तामस, गुणों के प्रादुर्भूत ध्येय और परम ध्येय उनसे दूषित चित्त परम पुरुषार्थ के प्रति हमारी एकाग्रता को स्थिर नहीं होने देते। चित्त के वासनाक्षय के लिए यह आवश्यक है कि हम धार्मिक सामाजिक राष्ट्रीय पारिवारिक अविद्याजन्य सारे संस्कारों का जन्म जन्मान्तर की वासना का क्षय करें। निर्मल चित्त ही ध्यान कर सकेगा।

यह वासना सान्त अवश्य है। ध्यान करने से अपगतमल होते हैं। निर्मल चित्त अष्टांग योग से सम्भव है। भोग काय, धर्म काय आदि क्रमेण निर्मल चित्तता के निदर्शन हैं।

पूर्ण चित्तवृत्तिनिरोध मन की चंचलता का उपशामक है।

क्रियायोग से अविद्या* (*पातञ्जलयोग प्रयुक्त शांकराद्वैत की नहीं।) का नाश होता है। या कम से कम क्षीण बल होकर अविद्या नाश के लिए उपकारक सिद्ध होता है। तब वैखानस सम्प्रदाय में पूजा से अविद्यानाश और तद्द्वारा मोक्ष ऐसा सम्प्रदाय सिद्ध होने की सम्भावना है।

अन्यत्र भगवान भक्त वत्सल हैं। मानव मायामयपाश से निबन्धित होता है। यही भगवान की माया है। भगवान उपासना से प्रसन्न होकर अनुकम्पावश अपनी माया से मुक्त करते हैं। माया से मुक्त होने पर आत्मा ज्ञान (सम्यक्) से युक्त हो जाती है। तब व्यक्ति आश्रम धर्मयुक्त हो भगवदाराधना करता है। इस आराधन के कारण जीवात्मा परमात्मा को देखता है। तब भगवान उसको अपुनरावृत्तिक दिव्यलोक प्रसादित करते हैं।* (*अयं देह: भार्यामयपाशनिबन्धनो, भगवन्मायया मोहित....। भगवन्मयया मोहितत्वात् भगवन्तं नारायण भक्त्या उपासीत्। तदुपासनात् सोपि भक्तवत्सलत्वात् भक्तानुकम्पया स्वमायां मोचयति। तत आत्मा सम्यग्ज्ञानं प्रवेशति। पश्चादाश्रमधर्मयुक्तो भगवदाराधनं करोति। तदाराधनेन संसारार्णवनिमग्नो जीवात्मा परमात्मानं नारायणं पश्यति। सोप्यपुनरावृत्तिकं दिव्यलोकं प्रसादयति।) मरीचि पटल.९४.

काम का परित्याग करने के पूर्व काम का आश्रय या अधिष्ठान कहां है यह सोचना चाहिए। सोऽकामयत् वह उपचरित है कि अनुपचरित यह कभी सोचा न गया। यदि वह सोच सकता है बुद्धि का काम कर सकता है तो निर्गुण ब्रह्म कैसे होगा? चिन्तन यदि प्रकृति - सम्भव गुण है तो सगुण में भी कैसे सम्भव है? काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भव:। तब माया लीला अवतार विभव आदि पद प्रयोग में लाये जाते हैं। तो जाग्रत और व्यावहारिक अवस्थाओं का क्या भेद है? कूटस्थ और जाग्रत अवस्था क्या परस्पर विरोधी अवस्थायें हैं।

व्यक्ति की अवस्थाओं के पश्चात् समाज की अवस्था पर भी विचार कर लेना चाहिए। अवतार समाज की अवस्था पर होता है यह सामाजिक अवस्था १. धर्मग्लानि गीता ४.७; २. जाति धर्म, कुल धर्म का उत्सादन १.४२-३ गीता और कुल धर्म क्या हैं? मोक्षस्तु मानवे देहे -- मोक्ष मानव देह में ही सम्भव है।

मोक्ष अब तक जीवात्मा की मुक्ति माना जाता रहा है। पर वैखानस सम्प्रदाय ने धर्म को व्यक्ति मात्र का उत्तरदायित्व न मान कर समाज में विस्तृत और विप्रकीर्ण किया। देव-पूजा मानव अपने घर में करता था। पूजा के मन्त्र और तन्त्र दोनों को एक ही व्यक्ति करता था पर अब घर की पूजा और मन्दिर की पूजा इस भेद से मन्दिर में समाज के सभी वर्ग आने लगे। व्यक्तिगत मोक्ष की अपेक्षा सामाजिक क्रियाओं पर अधिक ध्यान जाने लगा। भोग, उत्सव उसी सामाजिक दायित्व के अंग हैं। अत: धर्म की परिधि व्यक्ति निष्ठ मात्र न रहकर अब सामाजिक कार्य हो गया। मन्दिर गरीबों का आश्रय और शरणस्थल बना। राजा-महाराजाओं को दान के लिए उकसाया गया। एक ईश्वर के बच्चे एक ही मन्दिर में। विश्व का कल्याण हो सारे जनों का कल्याण हो। धन धान्य पशु समृद्धि सब के लिए 'सकाले वर्षतु पर्जन्य:।' पुन: अर्चकविशेषज्ञ हो गया। उसे पुण्य नहीं चाहिए क्यों कि वह तो देवालय में अन्य के लिए पूजा करता है। पूजा का साधारणीकरण हुआ। अयोग्य व्यक्ति वर्णविचिकित्सा मन्त्र पूजादि विधान का अज्ञान आदि न्यूनता के कारण जो पूजा नहीं कर सकते थे वे अब पूजा में शामिल होने लगे। पूजा व्यक्ति विशेष की नहीं सर्वसाधारण समाज की हो गयी। पर मन्दिरों के निर्माण से पता चलता है कि मास-प्रेयर या सामूहिक आरती या पूजा जैसा कोई कार्य या उसके लिए व्यवस्था नहीं हैं। गर्भगृह - मण्डप या अर्द्धमण्डप में भी सामूहिक रूप से बैठकर या खडे होकर पूजा करने के लिए मन्दिर का स्थापत्य नहीं है।

भारतीय आध्यात्म व्यक्तिगत ही है सामाजिक नहीं। प्रत्येक व्यक्ति का परमेश्वर से सम्बन्ध अपना व्यक्तिगत सम्बन्ध है। सामाजिक रूप से स्वीकृत या नियमित 'मास' नहीं करुणासागर बुद्ध ने उपदेश दिया - चरत भिक्खवे चरत, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय। गृहस्थों से दूर रहने पर, एकान्त में अकेले रहने पर बुद्धत्व का कोई अर्थ नहीं है। धर्म तो सब लोगों के कल्याण के लिए है अत: घर घर जाकर धर्म का उपदेश देकर सबका भला करना यह धार्मिक काम है पर सामाजिक क्रान्ति। घर घर जाकर इस अनागारिक ने यह कर्तव्य निभाया। व्यक्ति मोक्ष के बजाय सामाजिक मोक्ष को अधिक महत्त्व दिया। तब से भारतीय धर्मों में घर घर जाकर गांव गांव जाकर पामर लोगों को धर्मोपदेश देकर मोक्ष के लिए उन्हें सन्नद्ध करना धार्मिक कार्य हो गया।* (*वैखानसमहाशास्त्रं सर्ववेदार्थसारभूतमप्रतर्क्यमनिन्दितं वैदिकैरूपसेवितं विष्णोराधनं सर्वभूत-हितार्थाय शब्दं प्रमाणमवलम्ब्य विष्णुना विखनसे उक्तम् मरीचि वैखानस आगम पटल.१०१.)

पर आज तक भी मुसलमान या ईसाइयों की भांति हिन्दू धर्म सामूहिक धर्म न हो सका। वैचारिक धरातल पर आज भी व्यक्ति हजारों की संख्या में मन्दिर में रहने पर भी व्यक्तिश: दर्शन करता है। उसका उसके परमात्मा का सम्बन्ध व्यक्तिगत है। सामूहिक नहीं एक जैसा नहीं।

एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च सम्मतम् ।
श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद।
एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबन्धविमोचनम् भागवत ११.२७.४.

मुक्ति

यदि मुक्ति का नाम स्वतन्त्रता है तो वैष्णव सम्प्रदाय में मुक्ति ही नहीं है क्यों कि मुक्ति होने पर भी जीव दास ही बना रहता है।

सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णान्ति विना मत्सेवनं जनाः। भागवत ३.२९.१३.

सालोक्य सारूप्य या ब्रह्मप्राप्ति वह तो भक्ति का आनुषङ्गिक फल है।

कोई भी व्यक्ति कुछ पाना चाहता है, खोना नहीं। मोक्षावस्था में जब व्यक्तित्व ही नष्ट हो जाता है तब अपने नाश के लिए कौन प्रयत्न करेगा? सर्वं खल्विदं ब्रह्म ठीक है पर अहं का 'स्व' का नाश-प्रयत्न 'स्व' करेगा? वैखानस ने यह समझाने की कोशिश

की है -- प्रयत्न करना अच्छी बात है पर किसी वस्तु को खोने के लिए प्रयत्न करना कौनसी बुद्धिमानी है हां, कुछ पाने के लिए प्रयत्न करो। सायुज्य-सारूप्य। यह बात साधारण लोगों की समझ में आई। आत्माहुति से श्लाघ्य है सामीप्य। इसमें वह सुख प्राप्त है जिसका व्यक्ति को अभ्यास हो गया है। अनभ्यस्त आनन्द घनता का अर्थ 'परं कैवल्य' आदर्श मात्र है। चित् और अचित का भेद, विवर्त और परिणामवादका विवाद साधारण बुद्धि के परे की बात है। चित्त-प्रायश्चित्त, रूप-स्वरूप, गति-प्रगति, आत्मा-अनात्म सब शब्दाडम्बर हैं। एक सीधी सी बात सब समझ सकते हैं--'न में भक्त: प्रणश्यति' यह भगवद्वाक्य, प्रतिज्ञा सब की समझमें सहज रूप से आती है।

मानव श्रम से घबराता है। यदि बेर-दर्शन से परम पुरुषार्थ प्राप्त होता है, तो क्यों कर तप तितिक्षा के पचडे में पडे? देह को, तद्द्वारा आत्मा को (लौकिक अर्थ में) क्यों कष्ट दे? उत्सव मनाकर क्यों न प्राप्तव्य को पाले? आनन्द के परिवेश में वैखानस सम्प्रदाय ने पार्थिव पदार्थ सेवन तथा आध्यात्म क्रिया का ऐसा सम्मिश्रण किया है मानों कोई रसायनिक घोल हो। प्रसाद-भक्षण* (*विष्णुप्रसाद-निर्माल्यं भुक्त्वा धृत्वा च मस्तके विष्णुरेव भवेन्मर्त्यो यमशोकविनाशन: ११ पद्म स्वर्ग ५०.१८) एक धार्मिक और आध्यात्मिक कार्य हो गया। लौकिक और पारलौकिक ऐसा भेद मोक्ष प्रयत्न से हटा दिया। सांसारिक कृत्य भी मोक्षोपयोगी हो सकते हैं यह सबको विश्वास दिला दिया। प्रसाद वितरण ने विश्व-बन्धुत्व की भावना को उत्तेजित एवं उद्दीप्त किया। पदार्थ से परमात्मा की ओर पराक्रमण। एक सरलमार्ग। मूर्ति की प्रसन्नमुखता, एक दया का भाव, एक सयोनित्व भाव भर देती है जिससे सारे भक्तों में सजातीय सोदर देखने का भावोदय होता है। यह विश्व-बन्धुत्व ही आध्यात्म की नसैनी है।

शंकराद्वैत में प्रलय या महाप्रलय की अवस्था में क्यों कि जीवात्मा नहीं है अत: पुन: होने का प्रश्न ही वहीं है परन्तु वैष्णव समुदायों में क्यों कि जीव ईश्वर से भिन्न है अत: पुन: जन्म होता है।

पर क्या अपना स्व मिटा देना मोक्ष है या दिव्य सन्निधि में रहने का नाम मोक्ष है?

शंकराद्वैत में जीवात्मा का लय हो जाता है नामरूप खो जाता है। पर वैष्णव सम्प्रदाय भगवत्सन्निधि को ही चरम-गति मानते हैं। भगवान से प्रार्थना करते हैं-- मेरा बार बार जन्म हो प्रत्येक जन्म में तुम्हारी भक्ति का भाग्य मिले। जन्मनि जन्मनि।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्न कृष्णो चेतो विधाय च।
तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवो ब्रह्मणि योजयेत्।। नारद पाञ्चरात्र।।

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेः भजन्नपक्वोऽथ पतेत् ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं कोवार्थाप्तोऽभजतां स्वधर्मतः।।

भागवत १.५.१७.

प्रलयकाल में सारूप्यादि स्वर्गादियों में जो लोग रहते हैं वे पुन: जन्म लेते है। 'शुचीनां श्रीमतां गेहे'गीता ६.४१ तब उनकी मुक्ति होती है। क्या वे कर्म से बंधे है? गीता ६.११-१७ तक उनका वर्णन है।

जैसे समुद्र में ज्वार भाटा आता है दब जाता है वैसे ही संसार में गुण साम्यावस्था से विषमावस्था में प्राप्त होते हैं। यह क्रम बराबर चलता रहता है। क्यों? कोई नहीं जानता। प्रकृति की सम्यावस्था में क्षोभ पैदा होता है। और यह क्षोभ ही कर्म है। सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ। व्यक्तिश: जब मन प्रशान्त रहता है, तो कोई गति नहीं होती पर जब क्षुब्ध होता है उद्वेल्लित होता है तो काम अच्छे-बुरे करने लग जाता है। यह क्षोभ मनको प्रशान्त करने से दबाया जा सकता है। हां पूजा-सेवा एक उपाय है-- मनको शान्त करने का। मन की शान्ति ही सायुज्य है। वैखानस दर्शन मानव को मानव की भाषा में समझाना चाहता है। मानव बुद्धि कारण कार्यभाव से ऊपर उठकर देखने को कहती है पर ऐसी स्थिति तर्कानुप्रणित नहीं है अत: बुद्धिग्राह्य भी नहीं। अत: मानव को मानव के धरातल पर लाकर मानव बुद्धि ग्राह्य प्रयत्नों द्वारा परमगति की ओर आगे बढाना है। निष्कल कारण का कारण है और स्वयं अकारण है यह बताता है।

यह कालातीत है यह बताना या समझना मानव बुद्धि के बाहर है। नित्य की कल्पना मरणशील मानव कैसे कर सकता है? हर वस्तु हर परिणाम, काल में ही घटित होते हैं। बालक युवा और वृद्ध काल के ही परिणाम हैं। काल के बाहर किसी के देख या समझ पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। घण्टा दिन पक्ष वर्ष ये समय नहीं समय के माप हैं। यदि पदार्थों में परिवर्तन न होते तो शायद समय की कल्पना ही न होती। समय या काल हमारे मस्तिष्क की उपज है।

और यह सर्वव्यापक है। जैसे वायु पंखा हिलाने पर इन्द्रिय ग्राह्य होता है। सर्वव्यापक अर्थात् दिक् देश से पर सीमित नहीं है। अर्थात् दिक् देश की सत्ता इसकी व्यापकता के बाहर नहीं है। हम क्यों कि प्रत्येक वस्तु को किसी देश में या दिशा में देखते

हैं अत: देश की परिसीमन रेखा के बाहर भी कुछ हो सकता है ऐसा सोचना मानव बुद्धि के बाहर की बात है। जैसे हम घण्टा दिन सप्ताह में समय को नापते है वैसे ही गज मील एकड़ आदि में दूरी को नापते है जो वास्तव में नहीं है। यह केवल दिमाग की उपज है।

संसार में जो भी अनगिनत रूप है जो अनेक प्रकार की भौतिक रासायनिक या अन्य शक्तियां वे सब उसी के रूप हैं। यह दिव्य सत्ता शास्त्र या जीव शास्त्र है। जिससे मानव चैतन्य देहधारी बनता है। परमात्मनोऽन्यत् न किञ्चिदस्तीति। अन्तर्बहिश्चतत्सर्व व्याप्य, अशरीर: शरीरे व्याप्यतिष्ठति विश्वव्यापक - मरीचि पृ.३०८.

अमूर्त और समूर्त, निष्कल या सकल सदसत् (मरीचि पृ.३०८) ऐसे परस्परविरोधी स्वभाव ख्यापित करनेवाले पदों का प्रयोग परमसत्ता को बताने के लिए वैखानस सम्प्रदाय करता है। ऐसे परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले पदों का अर्थ क्या है? स्वभाव क्या है? क्या यह इतरेतर व्यावर्तक है? प्रकाश अन्धकार दिन रात गरम ठण्डा? शायद एक कालावच्छिन्न कहने से लौकिक अर्थ समझ में आ जायगा। कल तक भारत अखण्ड था पर बाद में विभक्त हो गया यह काल कृत विरोध समभिव्यवहार है। माघने आकाश से पृथ्वी पर आते हुए नारद का वर्णन किया है। जब तक ऊपर आकाश में था तो एक प्रभापुञ्ज था। पर जब नीचे पृथ्वी पर आ गया तो विभक्तावयव हो गया। यह देशकृत विरोध व्यवहार है।

पर परमेश्वर तो देशकाल की सीमा के बाहर है अत: ये दृष्टान्त लौकिक हैं और अलौकिक सत्ता पर लागू नहीं हो सकते। पर अर्थ हमको समझने हैं। लौकिक अर्थ में। संसार के परिप्रेक्ष्य में विरुद्ध स्वभावता की प्रकटता दो प्रकार से सम्भव है। विरुद्ध धर्मी या विरुद्ध स्वभाववाले प्रतिपक्षी के रूप में रहते हैं। प्रतियोगी। जैसे सत्य असत्य। पर इसमें तर्क के नियम में विभाजन की परिभाषा ठीक नहीं बैठती क्यों कि परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले दोनों असत्य हो सकते हैं। सर्वत्र एक सत्य दूसरा असत्य रूप से सामने आवे यह सम्भव नहीं।

दूसरा पक्ष है सह अस्तित्व उनका जिनमें यत्किञ्चित् भी समानधर्मिता नहीं है जैसे साख्यं के प्रकृति पुरुष। परन्तु वैखानस के निष्कल सकल रूपवाले परमेश्वर का रूप इन दोनों कोटियों में से किसी भी कोटि का नहीं है क्यों कि न तो परस्पर विषम हैं और न प्रतिकूलपक्षी। यद्यपि ये दोनों रूप आपातत: परस्पर विपरीत धर्मी लगते हैं तथापि उसमें ऐसा कुछ नहीं है जो परस्पर विरुद्ध हो। इस परस्पर विरोधी गुणात्मकता

से परमेश्वर की परिच्छिन्नता का संकेत नहीं सोचना चाहिए। परमेश्वर को अनन्तता से या निस्सीमता से कोई पृथक् नहीं कर सकता है अनन्तगुणों वाला है। यही उसकी परिभाषा है क्यों कि सामान्य भाषा में इसका वर्णन नहीं किया जा सकता अत: अनन्तगुणों के समावेश के लिए परमेश्वर को परस्पर विरुद्ध धर्मिता का नियम यहां व्याप्त नहीं होता क्यों कि उसकी कोटि ही पृथक् है। राष्ट्र का राष्ट्रपति यूनियन नहीं बना सकता यद्यपि यूनियन का अर्थात् राष्ट्र का अधिपति है।

निष्कल वह सत्ता है जो अनिर्वाच्य है पृ.३०८. क्यों कि उस जैसा इस संसार में कुछ नहीं है अत: साधारणतया बुद्धिग्राह्य विषयता इस में नहीं है पर जान सकते हैं। 'न तस्य प्रतिमास्ति' इसके समान कोई नहीं है। यह एक अपरिभाषित शब्द है जिस की परिभाषा या गुण परिसीमन नहीं किया जा सकता। यह प्रकृति या अन्य किसी तान्त्रिक या यान्त्रिकी शक्ति से ऊपर है। सर्वशक्तिमय और सर्वधर्ममय है। (पृ.३०८)

यथाऽयसि महासारं मुकुले गन्धं क्षीरेसर्पी: मधुन्युदकं तिले तैलमिव सर्वव्यापिनो व्योमाभस्य ब्रह्माद्यैरप्यनभिलक्ष्यस्य विष्णो: आवाहनं पूजनमभिमुखी करणमुद्रासनं स्वेच्छानुमोदनमिति ब्रह्मवादिनो वदन्ति। अणेरणीयान् महतो महीयानात्मेति आत्मैवेदं सर्वं नेह नानास्ति किं चनेति श्रुतयो गृणन्ति। यथा आदर्शसहस्त्रेषु दृश्यते पुरुषोत्तम: अम्भस्यर्कबिम्बानि गिरिषु प्रतिशब्द इव तस्य नानात्वम्। यथान्धकारे रज्जुसर्पदण्डोदकधारा अवभासन्ते तथा विद्याद्धारम्। तस्मादात्मस्वभाव: प्रपञ्चो न प्रपञ्चस्वभाव आत्मा। समुद्रस्वभावस्तरङ्गो न तरङ्गस्वभाव: समुद्र इति यावत्। यथा ह्यरण्यामनल: सर्वगोऽप्येक देश मथनात् उज्ज्वलति तथा सर्वगतस्यात्राविर्भाव:। यथा सर्वगतोवायु: व्यजनेन प्रकाशते तस्मात् ध्यानमथनेन मथनात् हृद्याविर्भवति। पश्चादावाहनध्यानजप होमांद्यै: भक्तियुक्तै: तथात्मानो ब्रह्मेशेन्द्रादय:। तत् (ब्रह्म) अचलं चलमिति तत्त्वविदो वदन्ति चलेषु पूजितं सर्वमचलं गच्छति।

मोक्ष अमीर से ज्यादा गरीब को चाहिए। ये नोन तेल लकडी की चिन्ता जीवन का रस ही हडप जाती है। अकाल ही वृद्ध होने एवं अवयवों के शिथिल होने एवं दैनंदिन कार्य सामर्थ्य का लोप।

पादज माने गरीब चतुर्थ वर्ण। अनेक संस्कारों के लिए अनर्ह होने के कारण मोक्ष प्रयत्न में भारी अवरोध। कम से कम जो उपलब्ध उपाय है उनमें आस्था। इन अवरोधों के कारण जनित आत्मग्लानि अत्यन्त प्रेरक मोक्ष यत्न के प्रतिषिद्ध होती है।

इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में। दर्शन पद तत्त्व चिन्तन के अर्थ में नया है। वैशेषिक सूत्र २.१३. में प्रथम बार इस अर्थ में प्रयुक्त है। वैसे दिठ्ठा या संस्कृत दृष्टि पद का प्रयोग पालि वाङ्मय में प्राप्त है नुख्ते नजर दृष्टि बिन्दु भारतीय भाषओं में प्रचलित पद हैं। पांचवी शती के हरिभद्रसूरि ने षड्दर्शन समुच्चय ग्रन्थ लिखा है। उसके बाद तो इस पद का प्रयोग तत्त्व विचार के अर्थ में प्रयुक्त है। दार्शनिक पद फिर कम प्रचार में है। शंकराचार्य मतप्रतिष्ठापक है दार्शनिक नहीं। बौद्ध मत, जैन मत सांख्यमत आदि प्रयोग प्राचीन वाङ्मय में प्राप्त है जिससे पता चलता है कि मत पद का प्रयोग ही अधिक प्रशस्त था। गुरुमत या भाट्टमत ही कहा गया है। यह भारतीय दर्शन की विशेषता है। बौद्धिक विचार की तुलना में अनुभव को प्रधानता दी जाती थी और उस दृष्टि से मत पद से ही दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता था। अर्थात् यह अन्तिम सिद्धान्त नहीं यह तो व्यक्तिगत विचार है। बाद में दर्शन अर्थ में वाद पद प्रयुक्त होने लगा। अद्वैत वाद या चिन्त्याचिन्त्यभेदवाद इत्यादि।

वेदान्त सूत्रों को उत्तर मीमांसा कहते है। मीमांसा पद का निर्वचन मन् धातु से करते हैं जिसका अर्थ है विचार करना या मनन करना। इस अर्थ में सिद्धि या आत्मानुभवी ऐसा अर्थ नहीं प्राप्त होता। मन्त्र पद भी कुछ ऐसा ही अर्थ रखता है। वैखानस दर्शन का मुख्य उद्देश्य दूसरों धर्मों का, सम्प्रदायों का खण्डन नहीं हैं। वरन् अपने पूजा प्रकार को दृढतया प्रकट करना है। दर्शन हमको ईश्वर का ज्ञान नहीं देता वरन् ईश्वरके ज्ञान के प्रति सजग करता है। वैखानस अद्वैत के समान अधिकारी की तलाश नहीं करता मानवमात्र का मोक्ष में अधिकार है। इससे बढकर और योग्यता या अधिकार की आवश्यकता नहीं है। ब्र.सू.१.१.१. जब वैराग्य की उत्पत्ति हो तब मोक्ष का आश्रय लिया जाय यदहरेव विरजेत्तहरेव प्रव्रजेत् समुपजातवैराग्याणामेवाधिकार इति। वैखानस इस सिद्धान्त को नहीं मानता। मानव मात्र को जैसे भोजन वस्त्र की आवश्यकता है वैसे धर्म की भी। धर्म मानव की अत्यन्त स्वाभाविक प्रवृत्ति है जैसे संस्कार, सभ्यता आदि। धर्म ईश्वरीय या अतिमानव वत् भी हो सकता है जब कि मानव वर्ग विशेष का ईश्वर में विश्वास हो। ईश्वर में विश्वास को कुछ लोग ईश्वरानुग्रह मानते हैं। अच्छे बुरे की समझ है और इस समझ से बढकर अन्य किसी योग्यता की आवश्यकता नहीं। प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए पूजा प्रकार को बताना आवश्यक नहीं। वह विवेक से पूर्ण है। अत: अनुचित उचित कर्म का निर्णय स्वयं कर सकता है। नित्यानित्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी गुरुकुल में जाने की आवश्यकता है। मानव मात्र में जो दिव्यांश है वह इतनी

समझ के लिए काफी है। इससे अधिक तो सन्त को चाहिए धर्म गुरु को चाहिए। तर्क की कोटि दर कोटि सत् के परीक्षण के लिए काम में लाई जा सकती है सत् स्वरूप के परिज्ञान के लिए नहीं। तर्क अनुभव के आगे निस्सहाय और अगतिक है। इसीलिए श्रीहर्ष ने कहा है-- अनुभवं वचसा सखि लुम्पसि। अनन्त अनन्त है। सान्त की तुलना में अनन्त नहीं है। पर सान्त अनन्त की तुलना में सान्त है। अत: सान्त की कल्पना सम्बन्धों पर निर्भर करती है जब कि अनन्त की कल्पना स्वयं प्रतिपत्ति है। आत्मप्रकाश है। परप्रकाश की आवश्यकता नहीं।

प्रपत्ति

अनुग्रह भगवान का ऐश्वर्य है। यह हेतु पराधीन नहीं है। क्या करने से भगवान कृपा करेंगे कोई नहीं कह सकता। नैतिक मान में, जागतिक न्याय-व्यवस्था में, न्याय और कृपा के बीच का सन्तुलन कभी बिगडने नहीं पाया।

श्रीमहाविष्णु और श्री पृथक् भी हैं, अपृथक् भी। वैचारिक एकता उनको एकत्व प्रदान करती है तो आकृतिगण विष्णु के सत् का आकार लक्ष्मी को बताता है। कार्य निर्वाहक सामर्थ्य विष्णु की इच्छा पर निर्भर है पर विष्णु की इच्छा को परिच्छिन्नतया परिमार्जित करने का सामर्थ्य श्री को ही है। अनुकम्पा प्रधाना वही हैं। महाविष्णु ही उसके मुख्य प्रदाता है। ऐसा इसलिए सम्भव है कि लक्ष्मी कारुण्यरूपिणी है। तद्गुणसारभूता है। यह अनुग्रह या कृपा देश, काल, प्रकार, अधिकारी, नियम से परे है भगवान के सब बच्चे एक समान हैं। स्त्री हो या शूद्र, वियोनिज और अवान्तर जाति के बाल भी उन्हीं की सन्तान है अत: कृपा के अधिकारी हैं।

जब मानव स्वत्व को खो देता है, अहंता को खो देता है तो सारे मल अपने आप धुल जाते हैं। कबीरदास जी के शब्दों में बडे जतन से ओढि चदरिया, ज्यों की त्यों धर दीनि चदरिया। जब नये वस्त्र की तह ही नहीं खोली गयी तो गन्दा होने का सवाल ही पैदा नहीं होता। इस तन रूपी वस्त्र को जब सांसारिक कार्यों में लगाया ही नहीं गया तो प्रापञ्चिक पङ्क कैसे लग सकता है? जब 'दासोऽहं' का पाठ प्रशस्त रूप से हृदयंगम हो गया तो शरीर तो मालिक का ही हो गया। दास का तो कुछ भी नहीं है। अपनापा खो दिया तो फिर रहा क्या? जब सिर ही काट दिया तो सिर दर्द कहां?

सम्भवत: वैखानस सम्प्रदाय में प्रपत्ति से अधिक ऊँचा स्थान अर्चा का है। हरौ प्रसन्ने पापानि कुत्र तिष्ठन्ति देहिनाम्।* (*क्रियायोगसार ७.८०).

शास्त्रों में अनुष्ठान तीन प्रकार के विहित हैं। नित्य, नैमित्तिक और काम्य।

वैखानसों के लिए काम्य कुछ नहीं है अतः काम्य व्रत भी नहीं।* (*देखिये निष्काम कर्म अध्याय.) उनका अनुष्ठान भी नहीं है। नित्य नैमित्तिक कर्मों के लिए भी जब संकल्प पढा जाता है (आचरण काल में) तब भी नित्य नैमित्तिक कर्मों के फलत्याग प्रतिज्ञा पूर्वक ही पढा जाता है।

उपाय और उपेय भूत दोनों स्वयं विष्णु ही है। लक्ष्मी तो करुणा रूपिणी है। दयाब्धि की उर्मिमाला, भक्त पर भी पडे ऐसा उछाल लेती है। प्रतिबन्धक हटाकर। जैसे किसान मेड को काटकर सहज जल प्रवाह को दूसरी क्यारी में सेचन के लिए प्रयुक्त करता है। स्वयं - प्रवृत्त महाविष्णु की करुणा को कौन रोक सकता है?

कदाचित् प्रपत्ति के किसी क्षण में ईश्वर साक्षात्कार का अनुभव हो? ईश्वर की कृपा सदा ही प्रवहमाण रहती है। यह प्रवाह कभी प्रपन्न को भी स्पर्श कर सकता है। पर प्रपत्ति निरोधक तत्त्व भी क्षीणबल नहीं है। व्यक्तित्व अपने आपको फिर देखने लगता है। और खुदी फिर दृढता से खडी हो जाती है। बेखुदी का वह अनुभव फिर लुप्त हो जाता है। उस आत्म-परमात्मैक्य के सन्धान के आनन्द के पश्चात् जब बिछोह होता है, तो सभी सम्प्रदाय के सन्तों को, सूफियों को अश्रुप्रवाहित करते पाते हैं प्रस्यन्दमान नयनाम्बु परीवाहित अक्षियुगल से विकर्तितपक्ष विहग के समान तडपते पाते हैं। इस अर्थ में प्रपत्ति अपने आपमें भगवदनुग्रह का कारण नहीं है। भगवत्कृपा के हेतु तो स्वयं भगवान ही हैं। प्रपत्ति तो बीच की परिचारिका जैसे है बच्चा तो माता ही पैदा करेगी, दाई नहीं। वह (प्रपत्ति) खुदी को, अहंकार को, अहंता को, क्या मिटायेगी? 'स्व' का वासना लोप वही करेगा। उपाय तो स्वयं नारायण है। उपेय भी वही है।

जैसे डाक्टर शल्यचिकित्सा के पूर्व शल्य प्रयोग स्थली को कृमिनाशक औषधियों द्वारा, अन्य संक्रमण प्रभावशून्य बनाता है, यदि केशरोमादि हों तो उनको भी उस स्थान से क्षुरिकादि प्रयोग द्वारा हटाता है जिससे शल्य प्रयोग करने में अनुकूलता हो। प्रपत्ति भी एक ऐसा ही आनुकूल्य पैदा करती है। अहंकार का ढड्डा वहां से हटाने में सफल होती है। प्रपन्न की सांसारिक-इच्छाओं की निवृत्ति ही प्रपत्तिभाव को प्रबल बनाकर भगवदनुग्रहपात की योग्यता सम्पन्न करती है।

मैं भगवान को प्राप्त करूंगा ऐसा जीव का दावा झूठा है क्यों कि भगवत्कृपा के बिना कोई कुछ नहीं कर सकता। जीव तो पञ्चभूतों का संघात है। और ईश्वरानुग्रह

के अभाव की स्थिति शरीर आत्मा के बिना जैसी स्थिति है। मोक्ष तो प्राप्त नहीं होता खुद खो जाता है। जब जीव का व्यक्तित्व मिट जाता है, जब जीव प्रपन्न होकर 'मैं कुछ नहीं हूं', 'मेरा कुछ नहीं है', 'मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ', ऐसा दृढ विश्वास करता है तो मोक्ष या मोक्षरूपी भगवान स्वयं उपस्थित होते हैं। मोक्ष स्थिति और भगवत्सन्निधि एक ही अवस्था है। मोक्ष की स्थिति भगवदनुग्रह की स्थिति से कोई पृथक् स्थिति नहीं है। 'अहं त्वा सर्व पापेभ्य: मोक्षयिष्यामि मा शुच:' प्रपन्नावस्था में तो जीवका स्व -त्व ही नहीं रहता। तब क्या 'त्व ' प्रत्यय विहीन है? (जाति एवं जातिस्थगुण का अन्यत्र विचार है।)

प्रारब्ध कर्म का क्षय भी वही उपायभूत भगवान करता है और प्रारब्ध कर्म क्षय के पश्चात् ही मोक्ष दशा है। यह क्षय ही मोक्ष है।

प्रपत्ति की अवस्था में जीव कुछ नहीं चाहता। यदि कुछ चाहता है तो जीव की अलग सत्ता है और अलग सत्ता है, तो प्रपत्ति कैसी? तब वह प्रपन्न नहीं है। प्रपन्न तो वही है जिसको न मोक्षकी परवाह है और न किसी दशा विशेष की। चाहने का अर्थ है 'स्व' के प्रति विचार। अपना भला बुरा सोचना। यदि ऐसा विचार है कि जीव है उसका 'स्व' है तो यह तो अज्ञान ही हुआ। माया से या अज्ञान से उपहित होने पर ही ऐसा 'स्व' का विचार किया जा सकता है। तब प्रपन्न का खुदी को मिटाने का लक्षण या प्रथम उपाय भी नहीं प्रयुक्त है। अहंता का नाश ही प्रपत्ति का मूल है। कैंकर्य को ही परमपुरुषार्थ मानना आध्यात्मिक प्रगति की परम काष्ठा है। 'मैं' और 'मेरा' दोनों का नाश होना चाहिए। तभी सही अर्थ में प्रपत्ति होगी। मैं और मेरा सम्बन्ध को बताते है। सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध का लोप हो गया है। अत: मैं भी नहीं हूँ।

प्रपत्ति और भक्ति में मुख्य अन्तर

१. भक्ति अविच्छिन्न तैल धारा के समान अविरल की जानेवाली क्रिया है जब कि प्रपत्ति एक बार।

२. भक्ति से प्रारब्धकर्म नष्ट नहीं होते जब कि प्रपत्ति से भगवदनुग्रह द्वारा नष्ट हो सकते हैं।

३. भक्ति में सदा पूजा ध्यान करते रहना पडता है जब कि प्रपत्ति मे केवल श्रद्धा ही आवश्यक है।

४. भक्ति से दीर्घ काल के पश्चात् फल प्राप्त होता है जब कि प्रपत्ति से तुरंत फल

मिलता है।

५. भक्ति में फल की एकता नहीं है। क्यों कि ध्येय अनेक हो सकते हैं पर प्रपत्ति में एक ही फल प्राप्त होता है क्यों कि ध्येय एक ही रहता है सम्पूर्ण शरणागति अविचल विश्वास।

प्रपत्ति या अत्मसमर्पण अपने आप मे आत्म नियत्रंण है बौद्ध धर्म मे धर्मकाय, भोगकाय की बात कही गयी है। योग ने चित्तवृत्ति-निरोध की बात कही है। उपेयभूत भगवान शरीर और मन से नहीं हृदय के अन्दर बसते हैं। हृदय की शिक्षा चाहिए।

जैसे शंकर वेदान्त के लिए ज्ञानोदय प्रधान है जो वैराग्य से प्राप्त होता है वैसे ही वैष्णव सिद्धान्तों में प्रपत्ति प्रधान है जो प्रेम से प्राप्त है। प्रेम तो वात्सल्यादि अनेक प्रकार का है पर पति पत्नी का प्रेम आत्म समर्पण को सिखाता है इसीलिए चतुर्थाश्रम के पूर्व द्वितीयाश्रम का महत्त्व है। इसी आश्रम में - 'अद्वैतं सुखदु:खयो:' सुखदु:ख में अद्वैत रहते हैं। एक दूसरे के प्रति त्याग की भावना जाग्रत होती है। परिस्थितियों में सेवा सहज रूप की करते हैं। विशेषत: गर्भावस्था में प्रसूति के तुरंत बाद गात्रासौख्यावस्था में बच्चे के मरने की अवस्था मे पति पत्नी को किस तरह दिलासा देता है। ये सब आगे चलकर परिपक्वावस्था में प्रपत्ति के लिए अत्यन्त उपकारक सिद्ध होते हैं। इसीलिए स्त्रैण के प्रति घृणा नहीं 'तपो विखण्डी नरकस्य हण्डी' नहीं पर लक्ष्मी नारायण के राधा -कृष्ण की युगलमूर्ति के उपासक होते हैं। वैष्णव जन। पत्नी के साथ रहते रहते क्रमश: अहं भाव शिथिल हो जाता है। सुख दु:ख की समानुभूति ने एक दूसरे के व्यक्तित्व को आत्मसात कर लिया है। गंगा यमुना का पानी मिलजाने के बाद यह कौन बता सकता है कि --

जोरु, यह जल किस नदी का है का गुलाम पद प्राय: मातायें अपने विवाहित पुत्रों के लिए निन्दा के अर्थ में प्रयोग करती हैं। उसका अर्थ है कि तर्कानुगत परिस्थितियों में तथा तदेतर परिस्थितियों में भी पति पत्नी ही का पक्ष लेता है। यह उन दोनों के व्यक्तित्व के एकीकरण का परिणाम है। यही आगे चलकर शरणागति के लिए दोहद बनता है।

विवाह विच्छेद आजकल एक फैशन हो गया है। विच्छेद का अर्थ है पतिपत्नी के अहंता के गर्व का अतिस्फार होना। प्रेम और रति क्रिया के बीच अन्तर न जानना।

लक्ष्मी

मरीचि ने विष्णु को ही 'स एव स्रष्टा पाता हर्ता अखिलस्य' कहा है पृ. ३०९ इसको (श्री) सृष्टि में सहायक नहीं माना है। कोई पात्रता नहीं मानी है। पर तुरंत बाद तद्विष्णोर्विभूतिः श्रीः, सा च नित्या, आद्यन्तरहिता, अव्यक्तरूपिणी प्रमाणाप्रमाण-साधारणभूता विष्णोस्संकल्पानुरूपा नित्यानन्दमयी मूलप्रकृतिरूपा शक्तिः, तद्भिन्ना प्रकृत्यंशभूता पौष्णिः तद्भिन्ना स्त्रियः तदात्मिका माया प्रकृतिः मायी विष्णुः प्रकृति पुरुषावभावनादी ताभ्यां लोकप्रवृत्तिः विकारगुणाः सर्वे प्रकृत्युत्पन्नाः कार्यकारण कर्तृत्वहेतुः प्रकृतिः पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्व हेतुः प्रकृतिस्थः पुरुषः प्रकृतिजात गुणान् भुङ्क्ते।

सा प्रकृतिः द्विधा भवति - चेतनाचेतनेति अचेतना पञ्चभूतैः मनोबुद्ध्यहंकार रूपैरष्टधाभिन्ना अन्या जीवभूता चेतनेति। तथा प्रकृत्या सदासंश्लिष्टाः पुरुषाः, प्रकृतिस्थाः जीवात्मनः क्षेत्रज्ञाः बहवः तेपि नित्या अनाद्यविद्यासंचितपुण्यपापफलं भोक्तुं बहुविधं प्रविश्य तत्तदात्माभिमानिनः तत्र शुभाशुभकर्माणि कृत्वा तत्तफलानुरूपदेहं पुनः पुनः प्राप्य (नि) वर्तन्त इति विज्ञायते। प्रकरोतीति प्रकृतिः।

श्री प्रकृति नहीं है। तदात्मिका माया प्रकृतिः कहा है। तदधिष्ठित होने पर विभूति या शक्ति प्रकृति बन जाती है। विभूति का अर्थ शक्ति करना होगा। आद्यन्तरहिता कहा है। परम तत्त्व निष्कल या सकल भी समय की सीमा के परे है। तब भी पर महाविष्णु के साथ उनकी शक्ति के रूपमें उनके साथ ही पैदा हुई होगी पर उसका व्यक्तित्व पृथक नहीं है क्यों कि वह अव्यक्तरूपिणी है। यह अव्यक्त रूप कैसा है? जैसै प्रस्तरखण्ड में विष्णुका रूप छिपा है दूध ने नवनीत छिपा है वैसा? पर रूप तो है पर अव्यक्त है। क्या यह रूप समय में खिलता है जैसे स्त्रीके यौवन व्यञ्जकचिह्न?

नित्या और आद्यन्तरहिता है। नित्या का अर्थ आद्या और अन्त रहिता ऐसा नहीं कर सकते। तब नित्या का अर्थ समयसमुत्पन्नविकार से रहित ऐसा करना होगा पर बाद में सारे विकार गुण प्रकृति सम्भूत ऐसा कहा है माया - तदात्मिका - ही प्रकृति है। सांख्य में प्रकृति ही विकारयुत होकर सृष्टिकी प्रयोजिका होती है - जब कि वैखानस में तदाताभ्यां (प्रकृति पुरुषाभ्यां) लोकप्रवृत्तिः कहा है। माया का अद्वैत परक अर्थ ले सकते हैं क्या? मायोपाधिविशिष्ट या लक्ष्मी शक्तिविशिष्ट - इन दोनों मे अन्तर है। उपाधिशक्ति नहीं है। शक्ति शक्तिमान् की उपमा सूर्य सर्यप्रभाकी उपमा क्या ठीक बैढेगी? तदात्मिका पद का तद्युक्त या तद्विशिष्ट ऐसा अर्थ ही करना होगा। दोनों अर्थों में शक्ति स्वयं की

नहीं है विष्णु से अधिष्ठित होने पर ही शक्ति है लक्ष्मी की अन्यथा नहीं। पर क्या पृथक् रूप से रह सकती है। विष्णु के साथ तथा अकेले दोनों प्रकार की मूर्तियां बनाई जाती हैं। अत: स्वतन्त्र सत्ता भी एक प्रस्थान होगा। पर लक्ष्मी का स्वभाव विष्णोस्संकल्पानुरूप कहा है। विष्णु के संकल्प के अनुरूप। जब हम विष्णु के संकल्पके अनुरूप कहते हैं तो क्या लक्ष्मी में स्वयं विष्णु के संकल्प को जानकर तदनुकूल रूप धारण करनेकी शक्ति या सामर्थ्य है? या फिर विष्णु संकल्प करते हैं और उस संकल्प के सामर्थ्य से शक्ति उत्पन्न होती है तद्द्वारा लक्ष्मी रूपान्वित होती है। 'मायांतु प्रकृतिं विद्धि मायिनं तु महेश्वरम्' इस वचन का अर्थ क्या है नहीं कह सकते। अद्वैत वेदान्तमें इस मन्त्र के अनुसार माया तुच्छ है। परमेश्वर मायी है माया का मालिक पर यहां तो नित्यानन्दमयी है। आनन्द गुण नित्य से विशिष्ट है इस प्रकार के आनन्द को धारण करनेवाली है अर्थात् स्वतन्त्र सत्ता है। क्या लक्ष्मी विष्णु के सम सत्ताक है? पर नित्यानन्द धारण करनेवाली है। मूलप्रकृतिरूपा शक्ति कहा है तद्भिन्ना प्रकृत्यशंभूता कहा है। शक्ति दो प्रकार की है मूलशक्ति तथा गौण शक्ति मूल शक्ति विष्णु में ही रहती है तथा गौण शक्ति प्रकृति में। तब शक्ति के माया और प्रकृति ऐसे भेद करने होंगे। प्रकृति के पुन: दो भेद-चेतना - अचेतना प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं और दोनों के सम्मिलित रूपसे ही लोकप्रवृत्ति अर्थात् सृष्टिप्रक्रिया आरम्भ होती है। विकार गुण प्रकृति के हैं। ये कहां से और कैसे आते है पता नहीं। पुरुष पद का प्रयोग किया है। क्या यह पुरुष साख्यं पुरुष है?

गुण साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति: सांख्यसूत्र १.६१ गुणा एवं प्रकृतिशब्दवाच्य न तु तदारिक्ता प्रकृतिरस्ति योगवार्तिक २.१८ इस अर्थ में सांख्य प्रकृति भी अव्यक्तरूपिणी है। वैखानस लक्ष्मी भी अव्यक्त रूपिणी है। प्रकृति आनन्दमयी नहीं है। पर वैखानस लक्ष्मी नित्यानन्दमयी है। चेतना और अचेतना दोनों प्रकार की है। तब दोनों प्रकार की प्रकृति आनन्दमयी होगी पर अनुभव पुरुष ही कर सकता है। प्रकृतिस्थ: पुरुष: प्रकृतिजान् गणान् भुङ्क्ते। पुरुष ही भोक्ता है पर प्रकृतिस्थ होने पर ही--

जीव अनेक हैं तथा नित्य हैं। अनाद्यविद्या संचित पुण्यपापफल को भोगते हैं। कार्यकारणकर्तृत्वहेतु प्रकृति ही है। अर्थात् कारण रूप से और कार्य रूप से प्रकृति ही कारणभूता है। अन्य सम्प्रदायों में प्रकृति या माया कार्य रूप से और ब्रह्म या परमेश्वर

कारण रूप से फल हेतु है पर वैखानस सम्प्रदाय में कार्य कारण उभयविध हेतुता प्रकृति का ही है। जीवात्मा चेतन प्रकृति का ही रूप है। तत्तत् देह की अभिमानयुक्ता हो यह प्रकृति पुण्य पाप फल का अनुभव करती है।

यहां पर रूप शरीरी तथा निमित्त शरीरी। कुलालचक्रस्थ मृदो घटशरावादि भेद इव .... तत्तद्रूपो भूत्वा विष्णु: प्रकाशते (मरीचि पृ.३०८) जैसे कुलाल के चक्के पर गीली मिट्टी रहती है और उस एक ही गीली मिट्टी से घट शकोरा आदि भिन्न रूप आकारवाले पदार्थ तैयार होते हैं ठीक उसी प्रकार यद्रूपं मनसा भावितं तत्तद्रूपो भूत्वा विष्णु: प्रकाशते। विष्णु तब अव्यय पुरुष भी है और तद्भिन्न पुरुष भी वह विष्णु ही सर्वव्याप्य शरीर है।

यदा यदा प्रजास्सृजेयेति सोकामयत तदा तदा स्वभिमतानुरूपस्वरूपगुण-स्वशक्त्या स्वलीलयैव इमं प्रपञ्चं कार्यकारणभावेन यथापूर्वं ससर्जेति श्रुति: (मरीचि पृ.३१०) इस प्रपञ्च की कार्यकारण भाव से सृष्टि की। इससे यह स्पष्ट नहीं है कि सृष्टि प्रक्रिया अद्वैत वेदान्त के अनुकूल है या सांख्य के। कार्य में कारणता रहती है या कारण में कार्यता। पता नहीं। कारण से कार्य विकसित होता है यह उपादान कारणता है या कि फल - अनिवार्यता determinism फल परिणतिमें अनुकूलता या प्रतिबन्धक सामग्री की कारणवत्ता का क्या स्थान है? यथापूर्व का क्या अर्थ है द्रव्यनिष्ठता या द्रव्यान्तरता? पृथ्वीका परिणमन या विकास पृथ्वी में ही और अपका अप में ही यथा पूर्व का यही अर्थ है? तब यहां पर लक्ष्मी का क्या स्थान है। विष्णु ही निमित्त शरीरी है (मरीचि पृ.३०८) विभूति को ही शक्ति कहा है। गुण और सामर्थ्य को एक कैसे कहा जा सकता है यद्यपि दोनों व्यापकता को निगडित करते हैं।

ऋग्वेद में श्री और लक्ष्मी को सम्पत्ति - देवता के रूपमें प्रस्तुत किया गया है। श्रीसूक्त में यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।।२।। लक्ष्मी को हिरण्यवर्णा कहा गया है। रामायण में शुभ्रवस्त्रधारिणी कहा है तथा महाभारत में विष्णुलक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी कहा गया है। लक्ष्मी क्षीरसागर से उत्पन्न हुई है। विष्णुपुराण १.८ ख्याति से भृगु कन्या कहता है। स्कन्द रेवा खण्ड में लक्ष्मी का नरनारायण से विवाह कहा है। अहिर्बुध्नीय संहिता ३.७-२४ में लक्ष्मी के स्वरूप के बारे में कहा गया है।

निरपेक्षतयानन्दा स्वतन्त्रा नित्यपूरणात
स्वात्मभित्तिः समुन्मीलित्परावरजगत् स्थितिः ।।७।।

नित्या कालापरिच्छेद्याद्रिक्ता पूर्णाकारवियोगतः
व्यापिनी देश विभ्रशांद्रिक्ता पूर्णा च सर्वदा ।।८।।
जगत्तया लक्ष्यमाणा सा लक्ष्मीरिति गीयते
श्रयन्ती वैष्णवं भावं सा श्रीरिति निगद्यते ।।९।।
अव्यक्तकालपुंभावात्सा पद्मा पद्ममालिनी
कामदानाच्च कमला पर्याप्त सुखयोगतः ।।१०।। अर्हिबुध्न्य संहिता.३.

जिसको हम अद्वैत में आवरण और विक्षेपशक्ति कहते हैं उस को हम यहां दया या वात्सल्य कहते हैं। उभयत्र शक्ति है पर कार्य प्रणालिका में भेद है। स्वरूपगत में भी पार्थक्य हो सकता है। अद्वैत में वैराग्य को परिपक्व होने की आवश्यकता है यहां भक्ति की प्रगाढता। जीव जगत् परमात्मा से भिन्न है इस विषय पर सब अद्वैतेतर वेदान्तप्राय: एक हैं। परम विष्णु में परमैश्वर्य और सर्वकामदातृत्व है अनन्त कल्याणगुणवत्ता भी है। निर्गुण का क्या अर्थ है? जिसकी गुणवत्ता नहीं है उसका अस्तित्व और अस्तित्व में क्या कुछ प्रमाण कार्यकर ही सकता है? निर्गुणवादश्च प्राकृतहेयगुण - निषेधविषयतया व्यवस्थिता:- सर्वदर्शनसंग्रह रामानुजदर्शन। चेतनत्व क्या है? चेतनगुण संयोग का नाम ही चेतनत्व है। अन्यथा चेतन कहने का क्या अर्थ है? इस अर्थ में निर्गुण कहना क्या ठीक होगा? गुणों का समभावपन्न होना ही प्रकृति है। सांख्य में प्रकृति से महान् अहंकार प्रभृति तत्त्व वर्ग की उत्पत्ति होती है। वैखानस सम्प्रदाय में भी अचेतना (प्रकृति) पञ्चभूतैः मनो बुद्ध्यहंकाररूपैरष्टधा भिन्ना। पृ. ३०९. मूलरूपा पद प्रकृति के लिए वैखानस और सांख्य में उभयत्र प्रयुक्त है। पर वैखानस में विकारगुणा: सर्वे प्रकृत्युत्पन्ना: किन्तु सांख्य में कारणरूप है अनुत्पन्न होने पर भी उत्पादक धर्म विशिष्टा है। प्रकृति अव्यक्त है पर महदादि व्यक्त है सांख्य के अनुसार वैखानस में मनोबुद्ध्यहंकाररूपैरष्टधा भिन्ना। सांख्य में व्यक्त कहा है तो वैखानस में भिन्ना। तन्त्रसार २०.२४ में विभूति और विकृति कहा है --

तां वैष्णवीं महामायां विभूतिं विकृतिं विदुः।
श्रीवत्सकौत्सुभाविष्टां स्तनस्योपरि वक्षसि।।

अयोध्या के शासक वासुदेव, विशाखदेव एवं शिवदत्त की मुद्राओं पर गज लक्ष्मी का चित्र प्राय: अङ्कित है। ये मुद्रायें प्राय: इसवी पूर्व प्रथम शतीकी मानी जाती हैं। शक एवं यूनानी राजा शोडास की मुद्राओं में भी लक्ष्मी दोनों और अङ्कित है।

महाभाष्य में भी अनेक बार पठित है। प्रथमशती तक लक्ष्मी ने एक स्वतन्त्र देवता का रूप ग्रहण कर लिया था। ब्रह्मजाल सुत्त में लक्ष्मी के पूजन का विधान है। भरहुत के चित्रों में भी लक्ष्मी के चार चित्र उपलब्ध है तथा मिलिन्दप्रश्न में लक्ष्मी पूजा सम्प्रदाय बद्ध हो गयी थी। गृह्य सूत्रों में श्रीकल्प तथा षष्ठीकल्प करने का विधान है।* (*रामगोपाल: इण्डिया इन द वैदिक कल्पसूत्रज्ञ पृ.४६६-६७.) बौधायन धर्म सूत्रों में २.५.९.१० श्री सरस्वती तुष्टि एवं पुष्टि को वैष्णव सम्प्रदाय के देवताओं में गिना है। जयाख्यसंहिता में जया, कीर्ति, माया इत्यादि नाम गिनाये हैं पर इन देवियों का सृष्टि प्रक्रिया में कोई योगदान स्पष्ट नहीं है।

विष्णुधर्मोत्तर में लक्ष्मी को वैष्णवी शक्ति कहा है। सा शक्ति वैष्णवी मता १.४२.१४ तथा प्रकृतिस्सा विनिर्दिष्टा पुरुष: पुरुषोत्तम: १.४२.२. में लक्ष्मी को ही प्रकृति कहा है। वैखानस में लक्ष्मी को विष्णु की विभूति या शक्ति तो कहा है पर शाक्त सम्प्रदाय की शक्ति नहीं है। विष्णु के अधीन हो कर ही कार्य करती है।

गुप्तकाल के पश्चात् तो लक्ष्मी का स्वरूप ही बदल गया। पुराणों में विशद रूप से महिमा गाई गयी है। स्वतन्त्रदेवता के रूप में विष्णुवल्लभाके रूप में बहुल प्रचार में थी। विदेशियों से सम्बन्ध कुछ अधिक ही होगा क्यों कि पुराणों में प्रसिद्धि पाने के पूर्व विदेशी शासकों की मुद्राओं पर तथा शिलालेखों में प्रचुरतया प्राप्त है। कुमारस्वामी तथा वासुदेवशरण अग्रवाल दोनों लक्ष्मी का सम्बन्ध यक्षी से जोडते हैं। कुबेर की पत्नी होने का एक वाद भी है। पद्मिनी विद्या नाम से एक विद्या ही प्रसिद्ध है। पद्मिनी नाम या विद्या सर्वभोगोपपादिका मार्कण्डेय ६८.७९ 'पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याश्च देवता' पद्मिनी विद्या की देवता का नाम लक्ष्मी ही है। वैखानस सम्प्रदाय में सम्पत्ति या सम्पदा के साथ जुडने के पूर्व की लक्ष्मी है जो सृष्टि क्रिया में उपकारिका है। सागर मन्थन में पैदा होने की कथा गुप्तकाल में प्रचार में आयी वैसे महाभारत में भी यह कथा उपलब्ध है।

मूर्तिशास्त्र में पद्महस्ता पद्मेस्थिता सदा से है। पद्मवर्णा पद्मसम्भवा और पद्मालया उसके नामों में अन्यतम है।

वैखानस सम्प्रदाय को कभी कभी लक्ष्मीविशिष्टाद्वैत भी कहते हैं। पर यह सम्प्रदाय रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत से भिन्न है। इस वैभिन्र्य का आधार आचार कितना धर्म और दर्शन कितना नहीं कहां जा सकता। ब्रह्मसूत्रों पर विशिष्टाद्वैतपरक भाष्य से लक्ष्मीविशिष्टाद्वैत परक भाष्य कितना पृथक् है ग्रन्थ प्रकाशित होने के अनन्तर

ही पता लग सकेगा।

अनुगुणदशार्पितेन श्रीधरकरुणे समाहितस्नेहा।
शमयसि तमः प्रजानां शास्त्र शास्त्रमयेन स्थिरदीपेन।। दयाशतक १८.

जो लक्ष्मी अव्याजकरुणामूर्ति है वही शास्त्रमय स्थिर दीप से मूल अन्धकार का नाश भी करती है। अर्थात् शास्त्र ज्ञान प्रसादित कर निरपेक्ष रक्षा के योग्य बनाती है। निर्हेतुकी कृपा की कारणभूता ज्ञानमय आलोक भी देती है। श्री वैष्णवसम्प्रदाय में ज्ञान के द्वारा भक्ति उपजती है जिससे प्रपन्न होने में सहायता मिलती है।

जैसे कील को ठोकने केलिए एक छिद्र की आवश्यकता है वैसे ही करुणा सम्पत् सम्पादन के लिए मानव के तैयारी की आवश्यकता है उसी तैयारी को माता शक्ति या लक्ष्मी प्रदान करती है। जंगल में कली का फूल बनकर खिलना, कन्या अजातरजसा का गर्भधारण सामर्थ्य कृपापात के पूर्व की अवस्था है उस अवस्था के समुचित रहने पर कृपापात सम्भव है।

अब प्रश्न है-- यह क्या सामर्थ्य है जो कली को फूल बन कर खिलने के लिए प्रेरित करती है। कन्या को प्रौढा गर्भधारणार्हा बनाती है? अण्डा अपने आप फूटकर पक्षिशावक को बाहर करता है? क्या इस सामर्थ्य को जीव बिना किसी प्रयास के पाता है जैसे नदी में बहता हुआ काष्ठ जो पानी के प्रवाह के अनुकूल अपनी स्वतन्त्रगति का त्याग कर सोद्देश्य या निरुद्देश्य बहता है? या इसमें परमेश्वर का कोई क्रमवैचित्र्य है जिसके फलस्वरूप सब अपनी अपनी गति से सांसारिक क्रिया कलाप में निबद्ध रहते हैं। व्यक्ति का स्वातन्त्र्य क्या और कहां है?

शरीर शरीरी का सम्बन्ध क्या है। सूर्य और सूर्य प्रभाका सम्बन्ध कैसा है? क्या हम एक के बिना दूसरे का पृथक् रूप से चिन्तन कर सकते हैं?

कमलाकामुक और लक्ष्मीवल्लभ ऐसे दो नाम विष्णु के पर्यायवाची पद जयाख्यसंहिता में गिनाये हैं। पुरुष और प्रकृति के प्रथम मिलन का नाम काल है। यही मिलन क्षोभ पैदा कर सृष्टि प्रक्रिया आरम्भ करता है।

विष्णु सहस्र नाम में (७८) श्रीकरः, श्रीगर्भः, श्रीधरः, श्रीनिधिः, श्रीनिवास(२) श्रीपति श्रीमतांवरः, श्रीमान्(४) श्रीवत्सवक्षा श्रीवास श्रीविभावन श्रीशः ये नाम श्रीपूर्वक है लक्ष्मी नामों में एक बार ही पढा है ११३ श्लोक केवल लक्ष्मी। तब क्या यह माना जाय कि लक्ष्मी और विष्णु पर्यायवाची पद हैं?

श्रीपदका ही प्रयोग किया है। प्रकृति को ही श्री माना है। प्रकृति की परिभाषा सांख्य की ही होनी चाहिए। 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्' श्वेताश्वतरं उपनिषत् ४.१० की उक्ति को दोहराया है। परमेश्वर जो कि चिन्मात्र है वही निजरूप भी है। माया का अधिष्ठान भी वही है। परमेश्वर को मायी कहा है। पर जब परमेश्वर प्रकृति के संश्लेष या सम्पर्क में आते हैं तो सत्ता का संस्फुरण होता है तो लोकयात्रा चल पडती है। इसलिए परमेश्वर की पूजा श्री के साथ ही करते हैं। वही शक्ति है। सारी स्त्रियां इस श्री से अभिन्ना हैं। सारे पुरुष इसीप्रकार उस परमेश्वर से जीवरूप से अभिन्न हैं। अवयव रूप से स्थित या शक्ति रूप से स्थित समस्त जगच्चक्र का यही अधिष्ठान कारण भी है। जो सारे मानवों के हृदयमें चेतना रूप से रहती है वह शंख है। जो पृथिव्यादि रूपसे स्थित है वह गरुत्मान् है। इत्यादि।"* (*प्रकृतिः श्रीः। 'मायां तु प्रकृतिं' मिति तत्संश्लेषात् लोकयात्रा मूलादेवी तस्मात् तमनयैव सह देवेशमर्चयन्ति परमेर्षयः। सा देवी श्रीरिति प्रोक्ता, सा प्रकृतिः। सा शक्तिः। तदभिन्नाः स्त्रियः सर्वाः। पुरुषास्तद्भिन्नाः सर्वे। ताभ्यां स्थितिः। तस्मात् सहैवार्चयेत्। ताभ्यं यत्वर्तितं संसारचक्रं यत्सर्वंलोकसारं सर्वप्राणिहृदिस्थितं हंसाख्यं चेतो रूपं तत् शंखम्। इत्यादि अध्याय.३५.पृ.६६ काश्यपज्ञानकाण्ड यहां पर पुरुषास्तद्भिन्नास्सर्वे का अर्थ संदर्भ से पुरुष और जीव प्रथक् है ऐसा न होकर सारे पुरुष उसी परमेश्वर के रूप हैं ऐसा होना चाहिए क्यों कि वैखानस सम्प्रदाय में जीव जगत् और ईश्वर को पृथक् मानते हैं।)

प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं। ब्रह्मश्री और राजश्री दोनों श्री की पूजा से प्राप्त हैं। गीतामें भी कहा है -- 'कार्य और करणको उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है और जीवात्मा सुखदुःखों के भोगनेमें हेतु है। अतः श्री की सर्वदा पूजा करनी चाहिए क्यों कि श्री दया और ममता से परिपूर्ण है। सारे कार्य माया ही जीवके हस्तपादादि द्वारा करती है।

जगत्तया लक्ष्यमाणा सा लक्ष्मी। जिससे जगतलक्ष्यार्थ के समान स्फुट हो वह लक्ष्मी है। साहित्य में लक्ष्यार्थ सबको विदित है। जब 'गंगायां घोषः' कहते हैं तो निश्चय ही गंगा के द्रुततर प्रवाह में घोष या झोंपडा नहीं रह सकता अतः इसका लक्ष्यार्थ तट पर या अत्यन्त समीप ऐसा करना होगा। यह विष्णु से पृथक् है और ऐसी मिली है कि पृथक् नहीं हो सकती।

सूर्यस्य रश्मयो यद्वत् उर्मयोश्चाम्बुधेरिव।
सर्वेश्वर्य प्रभावेन कमला श्रीपतेस्तथा।।

यह अव्यक्ता है। सिसृक्षा रूप में उदित होती है। जब यह सिसृक्षा रूप है तो निश्चय ही विष्णु और विश्व के बीच की पहचान की शृंखला है। जैसे माता मानों पुत्र और पिता के बीच की कडी हो।

संस्कृत में तीन वचन हैं। एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन। इसका अर्थ हुआ एक को बहु होने के लिए मध्यस्थता या माध्यम की आवश्यकता है अर्थात् एक से दो हुए बिना बहु नहीं हो सकते। दो का होना ही विकास की एक कडी है पौराणिक भाषा में सिसृक्षा कहते हैं।

क्रिया शक्ति लक्ष्मी ही है। यह शक्ति दो प्रकार से काम करती है। उपादान रूप से और निमित्त रूप से। जैसे कुम्हार की चाकी मिट्टी न हो तब भी और घूमें नहीं तब भी घट नहीं पैदा कर सकती ।

इच्छा शक्ति भगवान में ही है। निष्कलावस्था से सकलावस्था में आने की प्रक्रिया संकल्प जन्य है। संकल्प या इच्छा शक्ति अव्यर्थ शक्ति है। संकल्प होते ही उस संकल्प के अनुरूप शक्ति अथवा कार्य निष्पादक सामर्थ्य प्रादुर्भूत हो जाता है। विष्णु षाड्गुण्य हो जाते हैं। ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजस्। इनके उद्भूत होने की अवस्था का नाम ही लक्ष्मी से संयुक्त होना।

वैखानस सम्प्रदाय में लक्ष्मी का स्वरूप अपना ही है। यह शक्ति तो है। इसे विभूति या ऐश्वर्य भी कहते हैं। यह स्थानान्तरित होता है और हो सकता है। ध्रुव बेर से कौतुक बेर में या उत्सव बेर में। काश्यप ज्ञानकाण्ड ने इस को एक उपमान देकर समझायाहै। 'यथा गार्ह्यपत्यादौ आहवनीयादिषु अग्निं प्रणीय जुहोति तथा ध्रुवबेरात् कौतुकबिम्बादिषु सामावाह्य अर्चयेत्। जैसे गार्हपत्य अग्नियों से आहवनादि अग्नियों को प्रज्वलित किया जाता है उसी प्रकार ध्रुवबेर से कौतुक आदि बेरों में देवांश का आवाहन करके पूजा की जाती है।

विष्णु के मोटामोटी तीन रूप देखे जा सकते हैं। १. वैदिक, २. पौराणिक एवं ३. आगमिक। यह विकास क्रम हो ऐसा नहीं है। शायद आगमों में वर्णित विष्णु सबसे पुराने हों। पर आगम एक ग्रन्थ नहीं है अत: विष्णु के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है। वेदों में विष्णु का त्रिविक्रमस्वरूप ही सर्व प्रधान स्वरूप है। पुराणों में विष्णु जगत् का पालक करनेवाले और आगमों में मानवों का उद्धार करनेवाले दया मूर्ति है। वैखानस सम्प्रदाय ने विष्णु का वैदिक रूप ही अपनाया पर अत्रि, कश्यप, भृगु और मरीचि के ग्रन्थों में तथा परवर्ती आचार में बदलाव के कारण भक्ति और भगवदनुग्रह

जैसे तत्त्व भी विष्णु के स्वरूप में समाविष्ट हो गये हैं। पर मुख्य देवता विष्णु ही हैं।
तिरोभाव: तथा सृष्टि: स्थिति: संहतिरेव च। अनुग्राह इति प्रोक्तं मदीयं कर्मपञ्चकम्।।

जिस प्रकार रामानुजमत श्रीवैष्णव धर्म और विशिष्टाद्वैत दर्शन के नाम से जाना जाता है। उसी प्रकार वैखानस सम्प्रदाय भी वैखानस धर्म और लक्ष्मीविशिष्टाद्वैत दर्शन नाम से जाना जाता है।

श्री और लक्ष्मी पर्यायवाची होने के पूर्व पृथक् पृथक् सत्ता धारिणी देवियां थी। वाँजसनेय संहिता में श्री तथा लक्ष्मी को स्वतन्त्रसत्ताधारिणी कहा है। श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ' ३१.२२.

विद्वान शेफ्टेलोविच ने श्री सूक्त का अध्ययन किया है। (Scheftelowit 3.I: Sri Sukta Z DMG P.75 P.43) आपके विश्लेषण के मुख्य नतीजे -- मन्त्र १.तथा २ केवल लक्ष्मी के लिए तथा मन्त्र ३१२ केवल श्री के लिए तथा मन्त्र १३-१४ में दोनों को मिला दिया गया है। निश्चय ही ये तब दो सम्प्रदाय होंगे।

श्री सूक्त में मन्त्रों की संख्या स्थिर नहीं है। चारों वेदों में प्राप्त है अत: श्री को किसी वेदविशेषमात्र से नहीं जोडा जा सकता। विष्णु धर्मोत्तर २.१२.२ में -- 'श्रीसूक्तं प्रतिवेदञ्च ज्ञेयं लक्ष्मी विवर्धनम्' में यह बात पुष्ट कर दी है। अग्नि पुराण २६३.१-४ में श्री सूक्त के चारों वेदों में पाये जाने की बात कही है। केवल १५ ऋचाओं के होने की बात कही है। ध्यान देने की बात है कि आफ्रेक्ट द्वारा सम्पादित ऋक् संहिता में २३ मन्त्र है तथा मेक्समूलर द्वारा सम्पादित ऋग्वेद में २७ ऋग्विधान २.१२.१ में य: शुचि: प्रयते। भूत्वा जुहुयाताज्यं अन्वहम्। सूक्तं पञ्चदर्शर्चं च श्रीकाम: सतत: जपेत्। इससे १५ ऋचाओं का होना ही नियत है। फलश्रुति जो मेक्समूलर संस्करण में प्राप्त है वे परवर्ती प्रक्षिप्तांश होंगे।

लक्ष्मी के जन्म की विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है:--

१) स्वयम्भू ब्रह्मा ने भृगु - पुलस्त्य - पुलह - क्रतु - अंगीरस - मरीचि - दक्ष - अत्रि - तथा वसिष्ठ इनकी सृष्टि की। ब्रह्माने स्वयम्भू मनु की भी सृष्टि की। मनु ने शत रूपा से विवाह किया जिससे प्रियव्रत और उत्तानपाद पैदा हुए। दो कन्यायें ऋद्धि और प्रसूति भी। प्रसूति की दक्ष से शादी हुई। दक्षने २४ कन्याओं को पैदा किया जिसमें लक्ष्मी भी अन्यतमा है।

२) लक्ष्मी भृगु की कन्या

३) सागर कन्या का

विष्णु पुराण १.९.१०० में--

ततःतुष्टुवुर्मुदा युक्ताः श्रीसूक्तेन महर्षयः १०१ लक्ष्मी के क्षीरसागर से निकलने के पूर्व ही श्रीसूक्त तैयार था और महर्षियों ने श्री सूक्त से लक्ष्मी की स्तुति की।

प्रथम शती के अमर कोशकार ने १.१.२७ में-- लक्ष्मी पद्मालय पद्मा कमला श्री हरि प्रिया इन्दरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा भार्गवी लोक जननी क्षीर सागर कन्यका लक्ष्मी की सागर से उत्पत्ति के दो नाम दिये हैं-- क्षीरोदतनया तथा क्षीरसागर कन्यका भृगु की कन्या होने का एक भार्गवी तथा दक्ष की कन्या होने का कोई नाम प्रस्तुत नहीं किया है। पत्नी होने का केवल एक सन्दर्भ हरिप्रिया दिया है पर लोक माता और लोकजननी ऐसे दो पद प्राप्त हैं।

कन्हैयालाल मुंशी (भारतीय विद्याभवन के संस्थापक) भृगु वंश के परम प्रशंसक थे। उन्होंने इस विषय पर स्वयं लिखा भी है। भण्डारकर प्राच्य शोधसंस्थान से प्रकाशित होनेवाले महाभारत के आदि सम्पादक सुकथंकर ने यह विश्वास जताया है कि भृगु गोत्रीय बडे शक्ति शाली थे। उन्होंने ही २४,००० श्लोकवाले जय को १ लाख श्लोकवाला महाभारत बना दिया और पुराणों में भृगु वंश की प्रशंसा भर दी। उन्हींके कारण लक्ष्मी को भी भृगु-कन्या कहा गया है। वे विष्णु के भक्त थे।

लक्ष्मी का सम्बन्ध निम्न रूप से प्राप्त है--

१. लक्ष्मी का इन्द्र के साथ रहना।

२. लक्ष्मी का कुबेर के साथ रहना।

३. लक्ष्मी का अग्नि के साथ रहना।

४. लक्ष्मी विष्णु की पत्नी।

१. लक्ष्मी का इन्द्र के साथ निवास महा. १२.२२१.१४; १२.२१८.११.

२. महा आदि ६७.१४ में धर्म ने तीन कन्यायों से विवाह किया जिनमें लक्ष्मी भी अन्यतमा थी। धर्म के साथ विवाह करनेवाली कन्या लक्ष्मी ही दक्ष की कन्या थी।

३. भृगु की कन्या लक्ष्मी ने विष्णु से विवाह किया।

४. सागर मन्थन से निकली कन्या लक्ष्मी का सम्बन्ध में अनेक पाठान्तर उपलब्ध हैं। यहां लक्ष्मी ने विष्णु को वर लिया।

लक्ष्मी विष्णु को छोडकर चन्द्रमा के पास चली गयीं।

लक्ष्मी नारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली च कर्दमम्

... ...

स्वकीया इव सोमोऽपि कामयामास तास्तंथा

श्लोक २४-२६ पुराणपञ्चलक्षण पृ.३५७.

यही कथा ब्रह्माण्ड २.६५ ब्रह्मपुराण ९.१३ तथा वायु ९०.२२ में उपलब्ध है।

तं (सोमं) सिनी चैव कुहूश्चैव वपुः पुष्टिः प्रभावसुः

कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नवदेव्यः सिषेविरे। वायु.९०.२५.

नारद पुराण ८४.१२ में तो साफ ही लक्ष्मी को कुबेर की पत्नी कहता है। महाभारत २.१६.१४ में भी कुछ ऐसा ही संकेत मिलता है। कुबेर धनाधिपति हैं इसमें कहीं भी सन्देह नहीं है। लक्ष्मी धन की देवी है। पद्मिनी विद्या

मार्कण्डेय पुराण में ६८.४ पद्मिनी नामक विद्या का सन्दर्भ प्राप्त है।

'पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याश्च देवता' लिखा है। अर्थात् पद्मिनी विद्या की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी ही है। और यह लक्ष्मी धर्म की पत्नी थी।* (*वासुदेव शरण अग्रवाल पद्मिनी विद्या आफ मार्कण्डेय पुराण. पुराण। संख्या १२, १९६० पृ.१८१. जे.एन.बेनर्जी: पद्मिनी विद्या - जर्नल आफद इण्डियनसोसाइटी आफ ओरियण्टल आर्ट १०. पृ. १४१. १९४१.)

लक्ष्मी पद का अर्थ जो लक्ष्य की जा सके सबका ध्यान आकर्षण कर सके। धन लक्ष्मी, धान्यलक्ष्मी, गृहलक्ष्मी, मोक्षलक्ष्मी, स्वराज्यलक्ष्मी और अब आन्ध्रलक्ष्मी, राज्यलक्ष्मी जैसे पद भी प्रयोग पें है।

स्त्री-पुरुष का आकर्षण मानव हृदय की प्राथमिक एवं मूल चेष्टा है। यह इतना स्वाभाविक है कि मूल प्रवृत्ति पुरुष का वियोग सांख्य मतानुसार मोक्ष है। ललितकलाओं और साहित्य शास्त्र का रसिक हृदय केवल आनन्दमयत्व ब्रह्मानन्द सहोदरत्व आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। शृंगार रस या रसोद्रेकता केवल स्त्री-साहचर्य से प्राप्त है। यह मानसिक भाव मानव का आदि भाव है। शृंगार ही आदि रस है। विष्णोर्विभूतिः श्रीनित्याः आनन्दसंहिता।

स्त्री-प्रकृति की सम-स्थिति : सृष्टि कर्तृत्व चाहे लता वृक्षादि का हो या पशु-मानव बच्चे का हो समान ही है। अतः अनादिकाल से मानव स्त्री और प्रकृति को अभिन्न

स्वभाव समझता है। उभयत्र सृष्टि रहस्य समान ही है। यह रहस्य-मयता ही दैवी शक्ति है। इसका प्रदर्शन ही दिव्य-विग्रह का ध्यान है। 'सा देवी श्रीरिति प्रोक्ता सा प्रकृतिः।'

पद्मसम्भवा इसका नाम है। स्वयं भूमि को स्पर्श के बिना पैदा होनेवाला कमल इस पद्म-सम्भवा का जन्म स्थान है। यह पद्मसम्भवा चाहे पद्मासना सरस्वती हो या लक्ष्मी पद्मा हो ये विद्या और धन की अधिष्ठात्री दैवी मानवमात्र की इच्छा आकांक्षा स्पृहा की जननी है उनको क्रमबद्ध करने की नायिका है। माता भागिनी एवं पत्नी जैसे सम्बन्धों - रक्त एवं सामाजिक सम्बन्धों की जननी है। विवाह सम्बन्ध विषम लिङ्गियों में ही सम्भव है। मर्मस्पर्शीहृदय के भावों की आलम्बनदात्री है। अत: भाई भाई सोदर और विश्वभातृत्व की उत्पादिका है। जहां कहीं भी मानव ने वास किया -छोटा या बडा गरीब या अमीर राजा या रकं यह नारी के इस रहस्यमय स्वरूप का पुजारी हो गया। चाहे क्लियोपेट्रा हो या नूरजहां हो एडवर्ड अष्टम या फरहाद हो पुरुष के हृदय की साम्राज्ञी बनी रही। लक्ष्मी ही सागरमन्थन में देवासुर संग्राम की कारणभूता है। रावण वध सीता के कारण हुआ और महाभारत युद्ध के द्रौपदी के क्रोध के कारण कुरुवंश संहार। पृथ्वीराज संयुक्ता का जादुई सम्मोहक प्रेम पाश भारत की १,००० वर्ष की अधिक पराधीनता का कारण बना।

भारत में आप कहीं जाइये - सडक के किनारे पेड के नीचे गांव के पोखरे के पास खेत में खलिहान में घर में मन्दिर में आप अनगिनत विचित्र नामों से लक्ष्मी को पायेंगे। कहीं लज्जा गौरी नाम से या मोढेश्वरी (मोढेश, गुजरात सूर्यमन्दिर के लिए प्रसिद्ध) मानव की हर आवश्यकता के लिए एक लक्ष्मी का आविष्कार कर मानव काम की मनौती माता से मांगता है। काम माने कोई भी इच्छा।

भारत में स्त्री-देवता दो प्रकार की हैं। स्वतन्त्र- और अस्वतन्त्र। अस्वतन्त्र में ब्रह्मा - सरस्वती, विष्णु -लक्ष्मी, शिव - पार्वती प्रसिद्ध ही है। स्वतन्त्र में दुर्गा महिषासुर-मर्दिनी प्रसिद्ध है।

अस्वतन्त्र में लक्ष्मी विष्णु के साथ है। रामानुजाचार्य का वैष्णव सम्प्रदाय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के नाम से ख्यात है इसी से श्री की या लक्ष्मी के महत्त्व की कल्पना की जा सकती है। वैखानस ब्रह्मसूत्र भाष्य का नाम लक्ष्मीविशिष्टाद्वैत है। श्री और लक्ष्मी का सम्प्रदायगत भेद है।

लक्ष्मी विष्णु के हृदय में वसती है और गंगा शिव के सिर पर वैसे यह श्लोक घर जमाई होने का अत्यन्तप्रसिद्ध है :-

असारेऽस्मिन् संसारे सारं श्वसुरमन्दिरम्
हरः हिमालये शेते हरिश्शेते महोदधौ।।

इस असार संसार में ससुराल ही सार है। भगवान महादेव अपनी ससुराल हिमालय में वास करते हैं और विष्णु अपनी ससुराल सागर (क्षीरसागर) में रहते हैं। स्त्रीशक्ति का इससे अच्छा क्या उदाहरण हो सकता। दिगम्बर श्मशानवासी स्त्रैण पराङ्गमुख के लिए पार्वती को इतनी तपस्या करनी पडी। स्त्री के लिए और संसार को धर्म का पालन करानेवाला - महाविष्णु अपना संसार की स्थिति को सम्भालने का काम छोडकर ससुराल में जा बसे। स्त्री शक्ति का इससे बढकर और क्या निदर्शन हो सकता है? स्त्रीशक्ति के सामने - भगवान को भी हार माननी पडी। साधारण मानवों की तो बात क्या?

भारत का समाज पुरुष प्रधान समाज है। स्त्रीदेवताओं को पुरुष के साथ न्यून स्थिति में दिखाया गया है। महत्त्वपूर्ण कार्यों की जवाबदारी उन पर नहीं है पर ये शक्ति हैं भगवान की। लक्ष्मी शक्ति के बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं होता पीठासीन स्थिति में कुछ नीचे दिखावे तो क्या बिगडता है? पर हां इन देवी को स्थानच्युत न किया जा सका। पर उन देवी मन्दिरों का क्या जहां पर देवी स्वतन्त्रा है जैसे दुर्गा। वहां पर तो महिषासुर जैसे विकट विराट पुरुष स्मेराननना दुर्गा के त्रिशूल के नीचे अपगतप्राण दिखाई देते हैं अन्य पुरुष तो - कहीं दिखाई भी नहीं देते। यह तो दक्षिणाचारवाले मन्दिर हैं - वामाचार के मन्दिरों में तो स्त्री - मूर्ति का ही बोलवाला है। काली कालकत्तेवाली, मीनाक्षी कामाक्षी और विशालाक्षी के (मदुरै काञ्ची काशी) के अतिरिक्त अनेक प्रसिद्ध मन्दिरों में देवी की मूर्ति ही प्रधानतया प्रतिष्ठित है। कहने का सार है भारतीय जनता के हृदय पटल पर माता का स्वरूप ऐसा छाया है कि उसे वहां से हटाना साध्य न हो सका। कोल्हापुर की महालक्ष्मी तथा बम्बई की महालक्ष्मी प्रसिद्ध ही है।

चतुर्विध पुरुषार्थों में अर्थ और काम द्वितीय तृतीय पुरुषार्थ हैं। वैसे चारों को मिला कर एक पद 'अर्थ' से बोध कराया जाता है। अत: धर्म और मोक्ष भी अर्थ में ही परिगणित है। मोक्ष की इच्छा भी काम ही है -- धन की इच्छा भी। बृहदारण्यक में कहा है -- पुत्र की इच्छा और धन की इच्छा में कोई अन्तर नहीं है। इच्छा इच्छा ही है। वरुआ सागर (झांसी के पास) वात्सल्य की मूर्ति 'जारका माता' का मन्दिर है। महेश्वर (मध्यप्रदेश) में 'आलय माता'का मन्दिर है निवास की कमी को पूरी करनेवाली माता। रायपुर में दुग्धधारिणी माता जितने प्रकार की मनुष्य की इच्छायें हो सकती हैं उन सभी प्रकारों में माता की मूर्ति उपलब्ध है।

यह तो हुई साधारण मानवों की भावना का उनके द्वारा लकडी पर पत्थर पर बिना किसी साम्प्रदायिक आकृति के पूजा करनेवाले का हृदय में विराज रही माता का कण कण में व्याप्त माता का क्या रूप - क्या स्वरूप ? वह तो समस्तात्मना श्रद्धावाहिनी है। रूप विरहिता, श्रद्धा मात्र से पूजिता। हृदय के अन्दर स्थित श्रद्धा के लिए रूप की क्या आवश्यकता?

हम रेणुका की बात नहीं करते जिसको उसके ही पुत्र परशुराम ने वध कर दिया था। हम समस्त दानवों की माता दनु की बात नहीं करते जो देवों से बराबर युद्ध करते रहनेवाले दानवों की माता थी पर वैदिक क्रिया में भाग प्राप्त करने वाले अन्य स्त्रियों की बात करते हैं।

वेद में स्त्रीदेवता :

वेद में मुख्यतया दो ही स्त्री देवता है - उषस् और सरस्वती।

दनु भारोपीय परिवार में एक प्रमुख स्त्री देवता है। Celtic एवं Teutonic भाषाओं में दनु, स्लाव भाषा में Dennitsa एवं ग्रीक में Danac है। भारत आते आते कमजोर हो गयी। कश्यप की पत्नी निन्दा का एक प्रकार। कश्यप कूर्म रूप है। यज्ञ में आहुति का लोप और अन्ततो गत्वा दानवों की माता।

कश्यप की स्त्री दिति - दूसरा उदाहरण । दैत्यों की माता। इन्द्राणी की कथा?

ब्रह्मा ने मानसी सृष्टि से पांच स्त्रियों को पैदा किया - शतरूपा सावित्री गायत्री ब्रह्माणी एवं सरस्वती। सरस्वती बाद में ब्रह्मा की स्त्री बनी।

सरस्वती का वाहन हंस, पद्मासना।

शोभा की रानी श्री भारत भर में पूज्या है। व्यापार करनेवाले लक्ष्मी की पूजा प्रतिदिन घर में करें या न करे दुकान में करते हैं - स्वयं, कदाचित ब्राह्मण द्वारा। घर में लक्ष्मी की मूर्ति या लक्ष्मी - यन्त्र प्राय: सब घरों में पूजा घर में रहता है। पुरुष घर पर पूजा करें न करें स्त्रियां अवश्य करती है। स्त्रियों की अर्थ कामना पुरुषों की अर्थ कामना के समान नहीं है। यश, पुत्र कामना, धन-धान्य समृद्धि सौन्दर्य और सबसे अधिक सम्पत्ति से प्राप्त होनेवाली सुखशान्ति । दीपावलि पर लक्ष्मी पूजा भारत पर दीप मालिका का प्रकाशपुञ्ज बखेरने का परस्पर मिलने का स्नेह बांटने का त्यौहार है। देह शुद्धि के नूतनवस्त्र चित्त शुद्धि के लिए पूजा सम्भार बच्चों का पटाखे, कान्याओं का गृह-अलंकरण

और सारे परिवार का मिलन नयी साज सज्जा में मनोदैहिक वृत्ति को पुलकित और प्रहर्षित रखता है। नया वर्ष आरम्भ होता है। वही खाते नये खोले जाते है। रुपया-पैसा कितना खोया कितना पाया। अगामी वर्ष में क्या क्या करना है। शायद पुण्य पाप का भी साल भर का लेखा जोखा करते प्रणति की उन घडियों में जब देवी-सान्निध्य अव्यवहित होता है। और संसारभर में प्रसिद्ध गरबानृत्य गुजरात की लावण्याढ्या नवयौवनायें अभी इसी अवसरपर करती हैं। आनन्दमय वातावरण स्वर्ग सुखको भुला देता है। जामाता-विवाहिता कन्या का पुनमिर्लन-सुसराल के कष्टों के भुलाकर मातृ-स्नेह का पुनरनुभव वात्सल्य को तरोताजा कर देता है यजमायिन का बचपन पुन:बोल उठता है। पौगण्डावस्था की स्मृति पुनरुज्जीवित हो उठती है। दीवाली मनाने का अर्थ साधारण भाषा में आनन्दविभोर होना है। जिसके पास पैसा नहीं भी है वह भी रुपया उधार लाकर बलात् परवश हो उत्सव मनाता है। नूतन वस्त्र घारण करता और दिव्य भोजन सुख प्राप्त करता है। जिन को जीवन में कभी सुख नहीं मिलता उनको भी धर्म, समाज जबरदस्ती उत्सव मनवाकर उल्लास के कुछ क्षण प्रस्तुत करता है। यह है समाज की सामाजिकता -व्यक्ति के प्रति उस का उत्तरदायित्व। लक्ष्मी माता की कृपा।

लक्ष्मी का वाहन उल्लू है। उल्लू को कौशिक भी कहते हैं। कौशिक एक वैदिक ऋषि हैं। कभी कभी कूर्म रूप के साथ इनका सम्बन्ध जोडा जाता है। कूर्म सारे अंगों को समेट कर खोल के अन्दर कर लेता है वैसे ही सारी चेष्टायें अर्थमूल हो जाती है यही है लक्ष्मी का रूप सब सांसारिक चेष्टओं के आत्मसात करना। अर्थमूलमिदं जगत्। लक्ष्मी स्त्रीत्व मात्र की प्रतिनिधि देवता हैं। सांसारिक क्रियाओं की आलम्बन यष्टि।

सरस्वती और लक्ष्मी :

लक्ष्मी की एकल मूर्ति :

विष्णु की देवी के रूप में लक्ष्मी की प्रसिद्धि सार्वत्रिक है। पर स्वतन्त्र मूर्तियों की भी कभी नहीं है। लक्ष्मी सहस्त्रनाम पूजा के काम आता है। रूप और नाम से परे एक लक्ष्मी है वही है, सर्वत्र पूज्या उस पद्मालया का सुन्दरतम खजुराहो, कोल्हापुर का लक्ष्मी मन्दिर मुंबई का महालक्ष्मी मन्दिर या दिल्ली का लक्ष्मी नारायण बिरला मन्दिर । कला की दृष्टि से सुन्दर मूर्तियों हो सकती है तीर्थयात्रियों की दर्शनार्थियों की संख्या की दृष्टि से ये मूर्तियां प्रसिद्ध हो सकती हैं पर सिद्ध मूर्तियों तो वे है जिन में आकार नहीं है किसी टेडेमेढे पत्थर के फूल माला पहिना कर या सिन्दूर लगा कर उपवास रखकर गांव की

महिला आत्म-प्रदक्षिणा करता है। माता से वरदान मांगती है। यही है आध्यात्म का हृदयस्थित स्पन्दन। इस अनुभव के लिए दार्शनिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं विशाल मन्दिर की आवश्यकता नहीं। कमल का आसन होना आवश्यक नहीं। किसी नाम विशेष या रूप विशेष का होना आवश्यक नहीं। पूजा का अर्थ, सच्चा अर्थ, बाह्य पूजा नहीं कर्म काण्ड नहीं शब्दाडम्बर नहीं वरन्, आन्तरिक पूजा है। समस्त मन सहित इन्द्रियों का भगवती माता के प्रति समर्पण। परिपूर्ण समर्पण। त्वमेव शरणं मम, अन्यथा शरणं नास्ति का मूर्त रूप।

मूर्ति कला की दृष्टि से पद्महस्ता पद्मासना लक्ष्मी के चिह्न हो सकते हैं। पर स्मेराननना, मन्दस्मितयुता, सर्वावयवशोभाढ्या कुवलयसमकोमलदेहयष्टि समन्विता समस्त शृंगार की रूपराशि लक्ष्मी पद्मा हठात् श्रद्धा को आवर्जित करती है।

श्रीसूक्त

लक्ष्मी पदका पद्म या कमलपद से किसी प्रकार धात्वर्थ का सम्बन्ध नहीं है। रूढार्थ भी कमल से किसी सम्बन्ध को घोषित नहीं करती। श्रीका भी नहीं।

कोशों में - अर्थ सौन्दर्य मूलक अधिक है। तब लक्ष्मी का और कमल का सम्बन्ध आध्यात्मिक सम्बन्ध होगा जो अब लुप्त हो गया है। वह गुण जो कमल के गुणों से अधिक मिलता है। सौन्दर्य राशि होने पर भी मलिन न होना। जल में रहने पर भी जैसे कमल पानी की बूंद नहीं ठहरती वैसे ही अर्थ या संसार में लिप्त रहने पर भी सांसारिकता से ऊपर। कीचड में पैदा होने पर भी शुभ्र और श्वेत (सात्विक गुण पूर्ण) कमल पानी में रहने पर भी पानी से नहीं डूबता।

चारों पुरुषार्थों के चार देवता हैं। धर्म और मोक्ष के, काम देव- काम के पर अर्थ का - कुबेर तो असली मालिक - पुं देवता नहीं - स्त्री देवता -महालक्ष्मी प्राय: श्री नाम के आगे लगाने का रिवाज है वैसे देवता के नाम के आगे भी श्रीराम श्रीकृष्ण पर श्री लक्ष्मी भी। शिव या महादेव के नाम के साथ श्रीपदका प्रयोग कम ही देखा गया है। श्रीलक्ष्मी का अर्थ होगा लक्ष्मी-लक्ष्मी यदि श्री आदरार्थक प्रयोग नहीं है। भारत में विष्णु या कृष्ण के उपासकों की संख्या से शिव के उपासक कम नहीं है। पर श्रीपद प्रयोग कृच्छ्र ही है।

लक्ष्मी की साधनता तब लक्ष्मी का अर्थ होगा उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्यणि न मनोरथै: न साहसमानारुह्य नरो भद्राणि पश्यति इत्यादि पद लोक में अति प्रसिद्ध है तब

लक्ष्य साधन की धारणा की देवी है लक्ष्मी।

भारोपीय भाषाओं में लक्ष्मी को खोजा जा सकता है। भारत में आर्यों के आगमन के पश्चात् ही लक्ष्मी का स्वरूप भारत के धर्म जिज्ञासा के अनुकूल हुआ होगा क्या बार बार पैदा होने के अर्थ में लक्ष्मी का प्रयोग हुआ है?

ये जो गांव की सीमा पर स्थित टेढा मेढा पत्थर सिन्दूर लिप्त लक्ष्मी का रूप है वह बताता है की सब मानव एक समान धनी नहीं है। ये टेढा मेढा रूप धन के स्वामित्व की एक रूपता की विधुरावस्था है नहीं सत्य है क्यों कि समाज में गरीब अतिगरीब धनी अति धनी सभी प्रकार के लोग है पत्थर में स्थित रूप हीन रूप की तरह। हां सब जीते हैं। यत्किञ्चित कृपा सब के ऊपर है।

अवतार

अवतार का अर्थ है अव्यक्त रूप का व्यक्त रूप से प्रकटित होना। जैसे केश अन्दर थे तो बाहर आगये। एडी तक छू जानेवाले सिर में कहा छिपे थे। और बाहर कैसे हर सांस में बढकर निकल रहे हैं। राजा की सत्ता सब लोग जानेते हैं सिपाही से लोग कितना भयभीत होते हैं क्यों कि वह राज सत्ता का प्रतीक है। पर राजा स्वयं प्रजा के पास जाता है तो भय नहीं आदर भाव प्रकट करते हैं। अवतार भी इसी प्रकार है जैसे राजा प्रजा जनों के पास जाता है वैसे ही भगवान भी सामान्य जनों के पास आते हैं। जैसे राजा का राज प्रासाद से बाहर आकर सामान्य प्रजा जनों से मिलने पर शक्ति का कोई लोप नहीं होता वैसे ही भगवान जब अवतार रूप में पृथ्वी लोक में अवतरित होते हैं तो। उनके और मूल के बीच किसी प्रकार से शक्ति में या सत्वांश में कोई कमी नहीं आती।

अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परंभावमजानन्तो मम भूत महेश्वरम् ।। ९.११.गीता.

मनुष्य रूप में अवतार लेने के कारण मानव मेरा तिरस्कार करते हैं। पर भाव को नहीं जानते।

अवतार के सम्बन्ध में विभूति शक्ति आदि पदों का प्रयोग किया गया है। व्यूह जैसे साम्प्रदायिक अर्थ गर्भित पदों का प्रयोग भी प्रचलन में है। सर्वोच्च सत्ता से अवतार भिन्न नहीं हैं तथा अवतार रूप में प्रकटित होने पर सर्वोच्च सत्ता का किसी प्रकार से लोप होता हो ऐसा नहीं हैं। अनन्त शक्ति है। अनन्त कल्याण गुणों से देदीप्यमान है। अत: अनन्त में किसी प्रकार के हानि की सम्भावना नहीं है। यह मूल शक्ति प्रक्रिया भी है

सशक्त पदार्थ भी। शक्ति भी है शक्तिमान् भी। जैसे यज्ञ - कुशोत्पाटन से लगा कर अवभृथ स्नान तक दीर्घ काल व्यापी अनन्त छोटे और महत्त्वपूर्ण प्रधान आहुति तक के सारे कर्मकाण्ड का नाम यज्ञ है और प्रत्येकश: क्रमबद्ध पद्धति या कर्मकाण्ड का नाम भी यज्ञ है। यज्ञ विष्णु के नामों में अन्यतम है। यज्ञो वै विष्णु: विष्णु सहस्रनाम में भी विष्णु भगवान के नामों में एक नाम यज्ञ है। यह इस जगत् की संसरण शी लता का एक निदर्शन है। कार्य सम्पन्न होने पर अवतार पुन:) मूल में लीन हो जाते हैं। अवतार अव + तृ धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ होता है ऊपर से नीचे उतरना। स्वर्ग से पृथ्वी पर आना। यह तो देश गमन है ऊर्ध्व दिक् से अधोदिक् के लिए। पर यह प्रदेशगमन मात्र न होगा। आत्मिक क्षेत्र से सांसारिक क्षेत्र में उतरने का नाम होगा। यह स्तर तारतम्य ही नीचे उतरना होगा। वैसे अखण्ड एक एवं अद्वय का अवतारों में विकार विघटन भी अवतार होगा। एक का भिन्न भिन्न होना सकल का शकल सम्पूर्ण का अपूर्ण होना। कभी पदार्थ प्रधान कभी काल प्रधान मन्वन्तरावतार शक्ति प्रधान कपिलावतार। वैभव प्रधान मोहिनी अवतार ज्ञान प्रधान ब्रह्मावतार इत्यादि भक्ति नारद भागवत १.३.१ में पुरुष प्रथम अवतार है। भौतिक्र तत्त्वों का भोक्ता भोज्य ज्ञाता कारणोदशायी काल प्रकृति कारण कार्य मानस अहंकार पञ्च तत्त्व प्रकृति के सत्त्व राजस तामस तीन भेद इन्द्रिया एवं विश्वरूप।

विश्वरूप

देश का अतिव्याप्त स्वरूप अर्थात् सारे भू मण्डल को व्याप्त २.९.१० भागवत ने दिया है। सांसर्गिक प्रकृति विरजा देश तक व्याप्त हो सकती है उसके आगे नहीं जासकती काम क्रोधादि अविद्यादि का उसके ऊपर प्रवेश नहीं है।

प्रकृति - माया और प्रधान दो प्रकार से काम करती है। माया मूलकारण है। प्रधान प्राकृतिक या उपादान कारण है। महाविष्णु प्रथम पुरुषावतार है। महाविष्णु ही प्रकृति की ओर देखता है और इस दृष्टिपात से ही क्षोभ पैदा होता है। इसी को महत् तत्त्व कहते हैं। महत् तत्त्व का ईश वासुदेव है। महत् तत्त्व में निक्षिप्त चैतन्य ही सत्त्व राजस् तामस् भेद से तीन प्रकार का होता है। भागवत के ११ स्कन्ध में सत्त्व का वर्णन दिया है। यही अनिरुद्ध नाम से जाना जाता है। प्रद्युम्न बुद्धि का काम करता है। राजस प्रधान है। ब्रह्मसंहिता ५.४८ लीलावतार मत्स्यकूर्मादि लीलावतार ही हैं। द्वितीय विष्णु का अवतार ब्रह्मा विष्णु महेश्वर गुणावतार है। ५.४९ ब्रह्मसंहिता।

भागवत १०.८८.३. में कहा है कि शिव वैकारिक तैजस् और तामस् के मिश्र चैतन्य रूप है। भाग.१.१.१. भाग.१०.८.१३ में सत्य युग श्वेत, त्रेता, रक्त, द्वापर, कृष्ण, कलि, पीत नमस्ते वासुदेवाय नम संकर्षणाय प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नम कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम् -संगोपांगास्त्र पार्षदम- यज्ञैसंकीर्तनप्रायैः यजन्ति हि सुमेधसः भाग. ११.५.३२; १२.३.५२. कृते यदध्यायन्तो विष्णुं त्रेताया यजतो मखैः द्वापरे परिचर्यायाम् कलौ तद्धरिकीर्तनात्। ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेर्चयन् यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् वि.पु. ६.२.१७.

जब प्रभु स्वयं अवतरित होते हैं तो साक्षात् अवतार या शक्त्यावेशावतार और जब किसी दूसरे को कर्म सौंपते हैं तो आवेशावतार रहते हां जैसे चार कुमार, नारद, पृथु, परशुराम। उनको किन्हीं खास काम के लिए शक्ति दी गयी है। भागवत १०.

साक्षात अवतार शेष अनन्त। अनन्तसारे ब्रह्माण्ड को देखता दें जब कि शेष भगवान की सेवा में रहता। गीता १०. में विभूति का विस्तार है।

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर भवतस्त्रिलोक्याम्।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्।। — *भाग.१०.१४.२१.*

यस्याननं मकरकुण्डल चारुकर्ण-
भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम्
नित्योत्सवं न ततृपुरदृष्टिभिः पिबन्त्यो
नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेशच। — *भाग.९.२४.६५.*

स्वयं रूप -- १) प्रभाव २)वैभव --

स्वयं रूप सदा वृदावन में ही रहता है प्राभव चतुर्भुज रूप है। यही वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध हैं। इनको चतुर्व्यूह रूप कहते हैं। ये चारों चतुर्भुज हैं। किन्हीं चारों प्राभव विलासों के २४ रूप हैं। जिन्हें वैभव विलास कहते हैं। ये इस प्रकार हैं- - वासुदेव - केशव, नारायण - माधव - संकर्षण - गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन -प्रद्युम्न त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर - अनिरुद्ध - हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर।

व्यूह विभव अन्तर्यामी और अर्चा रूप

जब मन्त्रोच्चार किया जाता है तो मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा होती है अर्थात् मूर्ति में

एक नयापन एक नयी शक्ति आती है। इस दिव्य शक्ति के मूर्ति में प्रवेश को विभव कहते हैं। इस विभव के पश्चात् ही वह प्रस्तरमूर्ति अर्चावतार रूप धारण करती है। अर्थात् इस मन्त्रपाठ द्वारा प्राकृत अप्राकृत संसर्ग होता है और तब यह मूर्ति प्राकृत और अप्राकृत दोनों रूप धारण करती है। विष्णु का यह देह अप्राकृत है और प्रस्तर मूर्ति प्राकृत। सर्वव्यापी विष्णु जो अन्तर्यामी भी हैं उस मूर्ति में दिव्य तेज को भर देते हैं। यह दिव्य तेज विभव कहाता है। उस मूर्ति में आवेशरूप से विष्णु तेज रहता है।

अवतार के दो भेद हैं मुख्यावतार विष्णु ही हैं। सारे विभव अवतार अनिरुद्ध से ही प्रसूत हैं।

अर्चावतारो नाम देशकालविप्रकर्षरहित: आश्रिताभिमत द्रव्यादिकशरीरतया स्वीकृत्य तस्मिन्नप्राकृतशरीर विशिष्टार्चकपराधीन स्नान- भोजनासनशयनस्थिति: सर्वसहिष्णु: परिपूर्णो गृहग्रामनगर प्रशस्तिदेशशैलादिषु वर्तमानो मूर्ति विशेष:

... ...

अर्चावतारस्तु आश्रितपराधीनैयत्येनात्यन्त-

सुलभ इति समाश्रयण्म् सुकरम्।* (*तत्त्वदीप पृ. २३४.)

वैखानस सम्प्रदाय में पुरुष - सत्य - अच्युत और अनिरुद्ध ऐसे चार प्रकार माने हैं। वैखानस पूर्व पांच अवतारों को आविर्भाव तथा उत्तर पांच अवतारों को प्रादुर्भाव कहते हैं।* (*अत्रि पृ.८.३.) बुद्ध के स्थान पर बलराम हैं। अवतारों में भी वामन नरसिंह को अधिक महत्त्व देते हैं।

क्रियायोगसार उपपुराण में अवतारों के सन्दर्भ के बुद्ध का नाम गिनाया है। पूर्व वैखानस ग्रन्थों में, तथा सम्प्रदाय बद्ध वैखानसों में बुद्ध की अवतारों में गणना नहीं है।

निश्चय ही क्रियायोगसार उप पुराण वैखानस सम्प्रदाय का आर्षग्रन्थ नहीं है। पूजाविधि आदि देकर क्रियायोग की परिभाषा का विस्तार किया गया है।

वैखानस सम्प्रदाय में तिरुमल पर वाराह का दर्शन प्रथम करके उसके बाद ही वेङ्कटेश्वर स्वामी का दर्शन करने का सम्प्रदाय है। इससे वाराह अवतार के वैखानस सम्प्रदाय में प्राधान्य का पता लगता है। सम्प्रदाय में नृसिंह और वामन का भी कम महत्त्व नहीं है।

अभी तक मानव पृथ्वी को तराजू पर रख कर तोल नहीं सका है क्यों कि पृथ्वी के बाहर जाकर मानव के लिए खड़े होने का स्थान नहीं है। तब वराह अवतार ने पृथ्वी

का उद्धार किया। कितनी शक्ति की आवश्यकता है इस काम के लिए।

शक्ति को हम पहचानते हैं जब हम कुर्सी को बैठने के स्थान पर खींचते है या पुस्तक को यथास्थान रखते है पर फेक्टरियों जो बडे बडे तेल के ड्रम या कपडे की गांठे बडी आसानी से उठाई और रखी जाती है या मकान तोडता बुलडोजर या लान की घास काटता मोअर किस शक्ति से काम करता है?

प्रकृति में किसी प्रकार की शक्ति नहीं है सांख्य ने पुरुष के देखने पर क्षोभ होता है ऐसा माना है अन्य भारतीय दर्शनों ने भी पुरुषाधिष्ठित होने पर ही प्रकृति काम करती है ऐसा माना है। तब जिनको प्राकृतिक नियम कहते हैं वे क्या हैं? क्या वे प्रकृति के स्वयं संचालन के नियम है? सेनाओं के बिना विजय नहीं होती। तब वाद की सारी शक्ति पुरुषाधिष्ठित होने पर ही काम करती है।

भगवान ने गीता में कहा है--

भूमिरापोनलोवायुः खं मनोबुद्धिरेवच
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। ७.४.

अपरे यमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। ७.५.

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।। ७.६.

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
त्वयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। ७.७.

जड वस्तु में भी चेतन वत उपचार दीखता है अथात् अचेतन में कार्य सामर्थ्य है वह भी मेरा ही अंश है चेतनायत्त शरीर होने पर ही शरीर काम करता है। जैसे हाथ से पत्थर के टुकडे में या गेंद में शक्ति भर देने पर वह गति शील हो जाता है इसी प्रकार इस सारी आठ प्रकार की प्रकृति में मैं ही समाया हूं अत: यह नियमानुसार काम करती है। हर वस्तु में मैं ही हूं जिस प्रकार छोटी वस्तुओं में व्यक्ति शक्ति भर देता है। उसी प्रकार विशाल प्रकृति में मेरी ही शक्ति है।

आयुर्वेद में हीरे की भस्म मोती की भस्म सोने की भस्म बनाते हैं और अत्यन्त पौष्टिक मानकर विज्ञ लोग उसका सेवन भी करते हैं। पत्थर में यह शक्ति कहां से आई? वनौषधि की बात सब लोग जानते हैं।

अर्चावतार इसी का निदर्शन है। जब चेतन का धारक है और चेतन जड में

कार्य सामर्थ्य प्रदान करते हैं। किसी भी वस्तु में शक्ति निस्सीम और अनन्त भरी जा सकती है। शंकर ने ब्रह्मसूत्र प्रकृति १.४.२३ पर टीका में कहा है-- नामरूपकर्म प्रपञ्चस्यैकप्रसवत्वात् अर्थात् नाम रूप कर्म एक ही स्थान से उत्पन्न हैं।

अर्चावतार

ऐसा प्राय: विश्वास किया जाता है कि प्रथम अर्चावतार भगवान वेङ्कटेश्वर का ही है।

मौसल पर्व के पांचवे अध्याय में अर्चावतार की एक कथा दी है। भगवान श्रीकृष्ण जब मानव देह का परित्याग करने लगे तो ब्रह्मा को अपना निज रूप दिखाया। चतुर्भुज। सूर्य मण्डल को भेद कर दिव्य तेज वैकुण्ठ में पहुंचा। वहां पर यह तेज पाषाणमय हो गया और मूर्ति रूप से ब्रह्मर्षियों के सन्मुख उपस्थित हुआ। प्रतिज्ञा की कि इसी देह से पृथ्वी पर अवतरित होऊंगा। बाह्यरूप से देखने पर निष्प्राण और प्रस्तरमय पर अन्दर से करुणासागर एवं दया के समुद्र। सम्पूर्ण सामर्थ्य से युत उसी रूप से पृथ्वी पर वास करेंगे।

क्रम तथा संख्या - मत्स्य कूर्म वराह नारसिंह वामन राम राम राम कृष्ण और कल्किन्। विमानार्चनकल्प में प्रादुर्भाव और आविर्भाव इस प्रकार दो भेद हैं।

आराधन दो प्रकार का है। अमूर्त और समूर्त। अमूर्त अग्नि में आहुति प्रदान करना है। प्रतिमाराधन को समूर्त आराधन कहते हैं। यह समूर्ताराधन अमूर्ताराधन से श्रेष्ठ है। क्यों कि यजमान के न होने पर भी अविघ्न रूप से चलता है। अर्थात् यज्ञ एक यजमान के रहने तक अल्पकालिक रूप से चलता है पर मन्दिर में दर्शन तो यजमान के मरने के बाद भी सैकडों साल तक चलता ही रहता है। अत: समूर्ताराधन ही श्रेष्ठ है। विष्णु ही प्रधान है। वही पुरुष है। स एव स्रष्टा पाता हर्ता अखिलस्य।

प्रतीक की अमूर्तता प्रतिमा में परिवर्तित होकर उसे अधिक सम्मूर्तित ही नहीं करती वरन् उसे अधिक सेन्द्रिय भी बनाती है।

यदा यदा हि धर्मस्य *गी.४.७.*

... ...

तदात्मानं सृजाम्यहम्।

यहां सृजामि पद अत्यन्त अर्थ पूर्ण है। आत्मानं सृजामि।

संभवाम्यत्ममायया ४.६. सम्भवामि यानी माया द्वारा रूपान्तरित होना।

वेदों में भी एको देवों नित्यलीलानुरक्तो भक्तो व्यापी हृद्यान्तरात्मा।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन
इदानीमस्मि संवृतः सचेताः प्रकृतिं गता।। गी.८.५१.
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः गी.८.५०.
अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। गी.९.११.
अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मा वस्थितः सदा
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेर्चाविडम्बनम् । भा.३.२९.२१.

अवतारों की संख्या

भागवत १.३.२६ में कहा है कि अवतारों की संख्या नहीं है फिर भी २५ गिनाये हैं -- १.कुमार २. नारद ३. वराह ४. मत्स्य ५. यज्ञ ६. नरनारायण ७. कपिल ८. दत्तात्रेय ९. हयशीर्ष १०.हंस ११. ध्रुवप्रिय १२.ऋषभ १३. पृथु १४. नृसिंह १५. कूर्म १६. धन्वन्तरि १७. मोहिनी १८. वामन १९. परशुराम २०. राम २१. व्यास २२. बलराम २३. कृष्ण २४. बुद्ध २५. कल्किन् ये सब लीलावतार है। क्यों कि ये सब ब्रह्मा के एक दिन में ही उत्पन्न हुए हैं अत: इन्हें कल्पावतार भी कहते हैं।

मन्वन्तरावतार :--

मन्वन्तरावतार १४ है -- १. यज्ञ २. विभु ३. सत्य सेन ४. हरि . ५. वैकुण्ठ ६. अजित ७. वामन ८. सार्वभौम ९. ऋषभ १०.विष्वक्सेन ११. धर्मसेतु १२. सुधामा १३. योगेश्वर १४. बृहद्भानु यज्ञ और वामन लीलावतार हैं। बाकी मन्वन्तरावतार हैं। इन्हीं को वैभवावतार भी कहते हैं।

शक्यावेशावतार १. कपिल २. ऋषभ ३. अनन्त ४. ब्रह्मा ५. चतु:सन ६. नारद ७. पृथु ८. परशुराम।

धर्मज्ञानेन चानेन सुप्रयुक्तेन कर्मणा
अहिंसा धर्मयुक्तेन प्रीयते हरिरीश्वरः।।
एक व्यूहविभागो वा क्वचिद्विव्यूहसंज्ञितः
त्रिव्यूहश्चापि संख्यातश्चतुर्व्यूहश्च दृश्यते
हरिरेव च क्षेत्रज्ञो निर्ममो निष्फलस्तथा
जीवश्च सर्वभूतेषु पञ्चभूतगुणातिगः
अकर्ता चैव कर्ता च कार्यं कारणमेव च
यच्छेति तथा राजन् क्रीडते हरिरव्ययः।
सांख्यतुल्यो हि भूपाल धर्म एकान्तसंज्ञितः

नारायणात्मको मोक्षस्ततो याति परांगतिम्
सोनिरुद्ध इति ख्यातस्तत प्रधानं प्रचक्षते
तदव्यक्तमिति ज्ञेयं त्रिगुणं नृपसत्तम
आदित्यरन्ध्रगात्राश्च अदृश्याः केनचित् क्वचित्
परमाण्वात्मभूतास्ते तं देवं प्रविशन्त्युत
तस्मादपि विनिर्मुक्ता अनिरुद्धतनौ स्थिताः
मनोभूतास्ततोभूयः प्रद्युम्नं प्रविशन्त्युत
प्रद्युम्नाच्चापि निर्मुक्तो जीवः संकर्षणं ततः
विशन्ति विप्रप्रवराः सांख्ययोगाश्च तैः सह
ततस्त्रैगुण्यहीनास्ते परमात्मानमञ्जसा
प्रविशन्ति द्विजश्रेष्ठा क्षेत्रज्ञं त्रिगुणात्मकम्
पृथ्वीवायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्
सर्ववासं वासुदेवं क्षेत्रज्ञं विद्धि तत्त्वतः
ते समेत्य महात्मानः शरीरमिति सञ्ज्ञिताः
तदा विशत्यन्तरात्मा ह्यदृश्यो लघुविक्रमः
उत्पन्न एव भवति शरीरं चेष्टयन्प्रभुः
स जीवः परिसंख्यातः शेषः संकर्षणः प्रभुः
तस्मात्सनत्कुमारत्वं लभते यः स्वकर्मणा
यस्मिंश्च सर्वभूतानि प्रलयं यान्ति संक्षये
स मनः सर्वभूतानां प्रद्युम्नः परिकथ्यते
तस्मात्प्रसूतो यः कर्ता कार्यं कारणमेव च
सोनिरुद्धो य ईशानो व्यक्तिसात्वतकर्मसु
यस्मात्सर्वं सम्भवति जगत्स्थावरजंगमम्
स वासुदेवो भगवान् क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः
श्रेयः स एव राजेन्द्र जीवः संकर्षणः प्रभुः
संकर्षणाच्च प्रद्युम्नो मनोभूतः स उच्यते
प्रद्युम्नाद्योनिरुद्धस्तु सोहंकारो महेश्वरः
अतो भूयो जगत्सर्वं करिष्यामीति विद्यया
आत्ममूर्तिश्चतुर्थी सासृजच्छेषमव्ययम्
स हि संकर्षणः प्रोक्तः प्रद्युम्नं सोपि अजीजनत्
प्रद्युम्नादनिरुद्धोहं सर्गो मम पुनः पुनः ॥ महाभारत में मोक्षधर्मपर्व.

भागवत में ११.२७.४५.

स्तवैरुच्चावचैस्तोत्रै पौराणै: प्राकृतैरपि।

यहां पर प्राकृतस्तोत्रों का अर्थ शायद दिव्यप्रबन्धों से हो जो तामिल भाषाबद्ध हैं।

पृथ्वी पर स्थित अन्य जीवों की तुलना में रामकृष्णावतार मानव के अधिक समीप हैं। देखने में कार्यकलापों मे। जन्म और अन्तर्धान में। अत: मानव के लिए यह स्वाभाविक और सरल है कि मानवाकृति में स्थित अवतार के आचरणों का अनुकरण किया जाय। उनको ईश्वरीय या अतिमानव समझ कर अनुकरणीय समझा जाय और उन पर आचरण साग्रह किया जाय। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र का एकस्त्रीव्रत, पितृवाक्य परिपालन के लिए राज्य त्याग, भरत के प्रति भ्रातृभाव, राज्याभिषेक से आनन्दातिरेक या वनवास से दु:ख 'न मम्ले वनवासदु:खत:' समदु:ख सुख की आदर्श स्थिति का परिपालन करते हैं । शरणागत की रक्षा।

श्रीकृष्ण तो पूर्णावतार हैं। षोडशकलापूर्ण। धर्म संस्थापनाय सम्भवामि युगे युगे। भ्रामयन सर्वभूतानि चक्रारूढानि मायया। अहं बीज प्रद: । पिता यह संसार मेरा है ये सारे जीव मेरे बच्चे हैं। इनको सच्चे मार्ग पर चलाना मेरा कर्तव्य है। जब धर्म की ग्लानि होती है समाज की व्यवस्था शिथिल होती है तो परमपिता के रूप में बच्चों के हित के लिए मुझे परमेश्वर को परमात्मा के रूप में उतरना पडता है यह परमेश्वर का जगन्नियन्ता जगदीश्वर इस संसार में इस संसार के जीवों के प्रति दया कारुण्य है। अवतार होते हुए भी परिपूर्ण परमेश्वर है। जगद्रक्षा का भार अवतार लेने के लिए प्रेरित करता है।

सामान्य जन को भी सही रास्ते पर चलाना परमेश्वर का कर्म है। भक्तों के लिए तो उनका नाम ही भक्तवत्सल है। भक्ति सम्बन्ध से बन्धे हैं। योगक्षेमं वहाम्यहं प्रतिज्ञा ही है। एक बार बस 'तवास्मीति याचते' 'सकृदेव प्रपन्नाय' 'एतद्व्रतं मम' भक्त के लिए सुलभ है पर शरणागत और प्रपन्न होना चाहिए। मीराने 'मेरे तो गिरधर गोपाल' और कुछ नहीं - ध्रुव आये थे राज्य मांगने पर भगवान के सामने आने पर भक्ति के सिवाय और कुछ न मांग सके। प्रह्लाद ने निश्चल भक्ति जन्मनिजन्मनि मांगा। और गोपीजनवल्लभ की गोपियों के प्रति, राधा रानी के प्रति परस्पर सम्बन्ध भारतीय साहित्य और भक्ति वाङ्मय का अपूर्व अवदान है। तुलसीदास जी कहा है-- लोभी को जिस प्रकार धन (दाम) प्रिय है कामी को जिस प्रकार कामिनी प्रिय है उसी प्रकार मुझे श्रीराम

प्रिय हों।

रामानुजाचार्य ने कहा है -- जिस प्रकार कामुक कामिनी के मालिन्य को नजर आन्दाज कर देता है उसी प्रकार भगवान भी भक्त के दोषों को नहीं देखते।

यही है सुख निरातिशय सुख जिसके सामने और सब सुख फीके पड जाते हैं सारहीन हो जाते हैं। इच्छा की पराकाष्ठा काम।

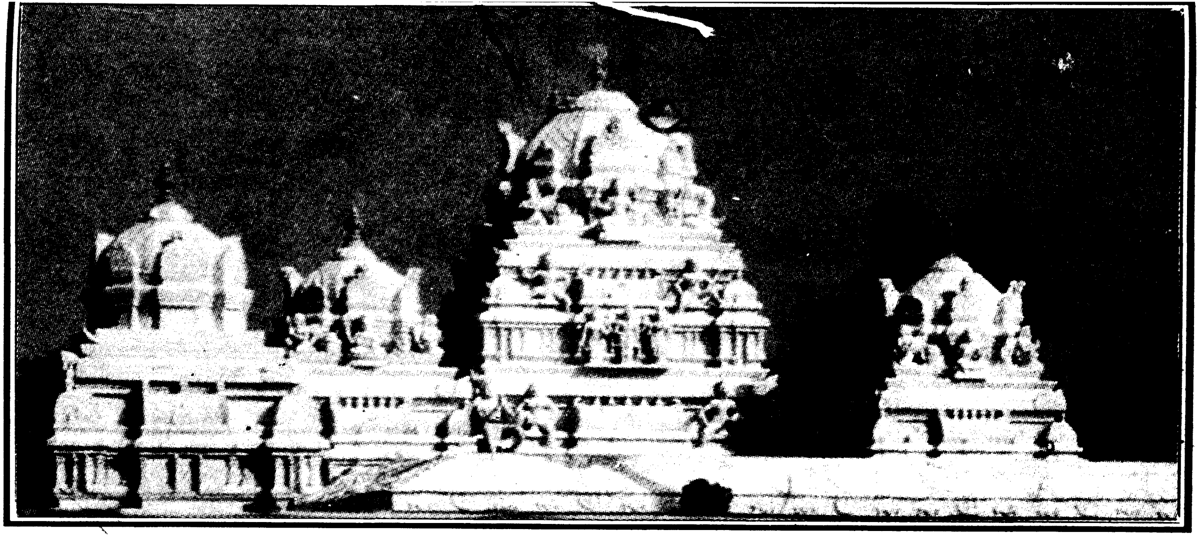
राधा रानी ने कहा विवाहमन्त्रों को पढ कर जानवर की तरह बांध देना प्रेम नहीं हैं। माता पिता द्वारा दूसरे (अज्ञात) पुरुष के पास हांक देना प्रेम नहीं है। जो साक्षात् अपरोक्ष किसी माध्यम के बिना - मन्त्र -विवाह संस्कार - माता पिता - समाज बन्धन आत्मा से आत्मा का मिलन है वही सर्वोपरि प्रेम हैं। इच्छाओं की इच्छा काम का काम। इसीलिए भगवान के नामों में मन्मथमन्मथ: जो काम देव के भी कामदेव हैं काम की सर्वोपरि पराकाष्ठा - जिसके सामने और सारे काम स्वयं अपसरित हो जाते हैं।

यह आत्मा आत्मा का मिलन आत्मा परमात्मा का प्रेम स्वयंसिद्ध और स्वत: प्रमाण है वेदवचन के समान विवाह संस्कार से या रजिष्ट्रार आफिस में प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं।

मूर्ति या अर्चा एक अवतार है। पर वैखानसों की दष्टि में अर्चा एक और प्राकट्य नहीं है। अर्थात् सर्वशक्तिमान प्रभु का एक और स्वरूप नहीं है। वही सर्वशक्तिमान का बिम्ब है।

अन्यत्र अवतार बाद में अवतार को साक्षात् प्रभु का अपर पर्याय नहीं मानते। अनन्त शक्तिमान के अवतार ग्रहण कर लेने के बाद भी मूलशक्ति उतनी ही अनन्त बनी रहती है और उसमें कोई कभी नहीं आती।

अवतारं करिष्यामि प्रिया लक्ष्या समन्वित: १२ आनन्दसंहिता अध्याय ४.
ते परव्यूह विभवान्तर्यामिणमेव वा ४.१०
पर -व्यूह - विभव - अन्तर्यामी
लोके विहर्तुमिच्छा मे वर्तते पद्मसम्भव
तत: स्व सृष्टिर्जगतामविच्छन्ना प्रवर्तते - १३.
धर्म संस्थापनार्थाय वेदशास्त्रार्थसिद्धये-९.
अर्चावताररूपेण लोकेस्मिंश्चतुरानन - १२.



श्री भू समेत वेंकटेश्वर (श्री बालाजी) मन्दिर

नैमिषारण्य - 261402, सीतापुर जिला, उ. प्र.